हिन्दी के नाट्यरूपांतरों की संवेदना और संरचना - एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

HINDI KE NATYAROOPANTARON KI SAMVEDANA AUR SANRACHANA - EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY
in
HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

RESHMI RAVEENDRAN
रश्मि रवीन्द्रन

Prof. (Dr) K. AJITHA
Head & Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science and Technology
Kochi-682 022

JULY 2018

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"HINDI KE NATYAROOPANTARON KI SAMVEDANA AUR SANRACHANA - EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** is the outcome of the original work done by me, and that the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship, or any other title or recognition from any University / Institutiton.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22.

RESHMI RAVEENDRAN
Research Scholar

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"HINDI KE NATYAROOPANTARON KI SAMVEDANA AUR SANRACHANA - EK VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** is a bonafide record of research work carried by **RESHMI RAVEENDRAN** under my supervision for Ph.D (Doctor Of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi-22

Dr. K. AJITHA
Supervising Teacher

पुरोवाक्

पुरोवाक्

नाटक, साहित्य की विशिष्टतम विधा है। रंगमंच सापेक्ष होने के कारण इसमें संप्रेषणीयता अधिक है। इससे इसका महत्व अन्य विधाओं की तुलना में विशिष्ट हो जाता है। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाटक मानव के भावों, अनुभूतियों एवं जीवन अवस्थाओं की अनुकृति होने के साथ-साथ प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है। इसलिए परिवर्तित मानव जीवन और उसकी विचारधाराओं को पकड़ना, उसे इंगित करना नाटक का मूल सरोकार है। नाटक अनुभूति और संप्रेषण, दोनों धरातल पर समाजोन्मुखी है।

आस्वादन की दृष्टि से साहित्य की अन्य विधाएँ जहाँ व्यक्तिगत होती है, वहाँ नाटक एक सामूहिक कला के रूप में सामूहिक उपयोग के लिए खडा हो जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात विकास की कई मंजिलें पार करता हुआ हिन्दी नाटक आगे की ओर अग्रसर हो रहा है। समकालीन हिन्दी रंगमंच अनेक दृष्टियों, प्रविधियों और शैलियों से संपृक्त है। नाटक को हल्के मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर एक जीवंत माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास इस काल में हुआ। संप्रेषण क्षमता की दृष्टि से सबसे सशक्त विधा होने के नाते साहित्य की अधिकतर विधाएँ नाटक रूप में ढलती जा रही है। कथा साहित्य या कविता का पाठक घटनाओं और चरित्रों का प्रत्यक्षदर्शी नहीं होता बल्कि वह शब्दों के ज़रिए कथ्य को आत्मसात करता है। किन्तु नाटक का प्रेक्षक अपनी आँखों के सामने सब कुछ घटते हुए देखता है। वह घटनाओं और चरित्रों से निजी संबंध स्थापित कर लेता है। इस सत्य से वाकिफ होने के कारण नाटककार या नाट्य निर्देशक हमेशा दर्शकों के सम्मुख ऐसा कुछ नवीन प्रयोग लाने की कोशिश करते हैं जो दर्शकों को आकर्षित करें और उसे प्रेक्षागृह तक बार-बार आने को बाध्य करें। इसका परिचायक है नाट्यरूपान्तर। दरअसल

नाट्यरूपान्तर या नाट्यरूपांतरण मूल रचना से वांछित संदेश को प्रसारित करने में सक्षम है। यह एक ऐसा रूप है जिसमें श्रव्य जगत से ग्रहण किए गए तत्वों को दृश्य जगत में बदल दिया जाता है। रूपान्तरकारों ने इसमें कथ्यगत, शिल्पगत और रंगमंचीय इन तीनों स्तरों पर सार्थक प्रयोग किए हैं। समकालीन जीवन के तनावों, दबावों और जटिल मानवीय संबंधों को प्रस्तुत करने में नाट्यरूपान्तर सफल निकलता है। इस प्रकार समाज व्यवस्था के नियमन, परिवर्तन एवं निर्माण में नाट्यरूपान्तर का विशेष योगदान रहता है। इसमें हमारे दैनंदिन जीवन की आवश्यकताओं, मूल्यों, आस्थाओं का चित्रण सफलता से हो रहा है। इस नाट्य प्रयोग के द्वारा समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच की उपलब्धियों पर विस्तृत और व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करने का एक छोटा-सा प्रयास मैंने अपने शोध प्रबंध "हिन्दी के नाट्यरूपान्तरों की संवेदना और संरचना : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" शीर्षक के माध्यम से किया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए कुछ चुने हुए नाट्यरूपान्तरों को ही आधार बनाया है। नाट्यरूपांतरित रचनाएँ तो बहुत हैं किन्तु सबके नाट्यरूपान्तर प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। इस दृष्टि से हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यासों, कहानियों और कविताओं को ही मैंने अपने अध्ययन के अंतर्गत रखा है।

अध्ययन की सुविधा के लिए शोध विषय को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है-

पहला अध्याय : नाट्यरूपान्तर : अवधारणा एवं स्वरूप

दूसरा अध्याय : हिन्दी के नाट्यरूपान्तर : एक सामान्य परिचय

तीसरा अध्याय : कहानी का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

चौथा अध्याय : उपन्यास का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

पाँचवाँ अध्याय : कविता का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

पहला अध्याय 'नाट्यरूपान्तर : अवधारणा एवं स्वरूप' में समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच पर दृष्टि डाली गई है। साथ-ही-साथ समकालीन हिन्दी नाटक के विभिन्न रूप जैसे लोक नाटक, नुक्कड़ नाटक, व्यंग्य नाटक, हास्य नाटक, बाल नाटक, रेडियो नाटक, दलित नाटक, अनूदित एवं रूपान्तरित नाटक आदि पर विचार किया गया है। इसमें नाट्यरूपान्तर की अवधारणा, उसके स्वरूप, उसकी परिभाषा, प्रासंगिकता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

दूसरे अध्याय में हिन्दी के नाट्यरूपान्तर का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें सबसे पहले समकालीन हिन्दी रंगमंच की प्रयोगशीलता पर चर्चा की गई है। फिर कहानी, उपन्यास और कविता के रंगमंच पर विचार किया गया है।

तीसरा अध्याय 'कहानी का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग' में सबसे पहले प्रेमचन्द की कहानियों के नाट्यरूपान्तर पर विचार किया गया है। प्रेमचन्द की कहानियाँ इतनी लोकप्रिय है कि जिन पर फिल्में बनी, जिनके नाट्यरूपान्तरों का प्रदर्शन हुआ। नाटक जैसे माध्यम इसे अधिक लोगों तक पहूँचाने का कार्य कर रहा है। फिर भीष्मसाहनी, स्वयंप्रकाश, उदयप्रकाश की कहानियों के नाट्यरूपान्तर पर भी प्रकाश डाला गया है।

चौथे अध्याय में फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', प्रेमचन्द का 'गोदान', यशपाल का 'दिव्या', अमृतलाल नागर का 'सुहाग के नूपुर', जगदीश चन्द्र का 'कभी न छोड़ें खेत', प्रभाखेतान का 'छिन्नमस्ता' आदि उपन्यासों के नाट्यरूपांतर पर विस्तृत रूप से विचार करने की कोशिश की गई है। उनके कथ्य एवं शिल्प पक्ष पर भी विचार किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय में जयशंकर प्रसाद का 'कामायनी', प्रेमशंकर रघुवंशी की कविता 'देखो साँप : तक्षक नाग' और मैथिलीशरण गुप्त की 'नहुष' इन तीनों कविता के नाट्यरूपान्तर पर सूक्ष्म ढंग से विचार करने की कोशिश की गई है।

अंत में इस शोध कार्य से निकले निष्कर्ष को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्षा प्रोफेसर डॉ. के. अजिता जी के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है। उनके स्नेहपूर्ण निर्देशन तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के लिए शाब्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके मैं मुक्त होना नहीं चाहती। मेरी प्रार्थना यही है कि उनके आशीर्वाद हमेशा मेरा साथ रहे।

मेरे शोध कार्य के विषय विशेषज्ञ प्रोफेसर डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। उन्होंने पग-पग पर मेरे इस शोध कार्य को सही दिशा की ओर ले आने में सहयोग दिया।

विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हमेशा मेरे साथ रहे हैं।

पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। कार्यालयी सुविधाएँ प्रदान करके मेरी सहायता करनेवाले हिन्दी विभाग के सभी कर्मचारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञता अदा करती हूँ।

मैं अपने परिवारवालों, माता-पिता, मेरे पति और बच्ची के प्रति भी अपना प्यार व्यक्त करती हूँ कि जिनके सहयोग, प्रार्थना एवं प्रेरणा की वजह से ही यह शोधकार्य संपन्न हुआ है।

आत्मीय मित्रों गीतु, सरिगा, कृष्णा, सुजिता, सजना, जीना, सिन्जु के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनकी प्यार एवं सहयोग सदैव उत्साह देता रहा।

मैं उन सभी विद्वान लेखकों के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके ग्रन्थों से इस विषय के प्रतिपादन में मुझे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में सहायता मिली है।

एक बार फिर सबके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए मैं यह शोध प्रबंध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ। इसकी त्रुटियों एवं खामियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय

रश्मि रवीन्द्रन

शोध छात्रा

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन-682022

तारीख :

विषय प्रवेश

पृष्ठ संख्या

पुरोवाक्

पहला अध्याय 1-57

नाट्यरूपान्तर - अवधारणा एवं स्वरूप

1.1 नाटक की व्युत्पत्ति

1.2 नाटक की परिभाषा

1.3 नाटक का विकास

1.3.1 भारतेन्दु युग

1.3.2 प्रसाद युग

1.3.3 प्रसादोत्तर युग

1.3.4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच

1.4 समकालीन हिन्दी रंगमंच

1.5 समकालीन हिन्दी नाटक के विभिन्न रूप

1.5.1 लोक नाट्य

1.5.2 नुक्कड नाटक

1.5.3 गीति नाट्य

1.5.4 प्रतीक नाटक

1.5.5 मिथकीय नाटक

1.5.6 यथार्थवादी सामाजिक नाटक

1.5.7 संवादविहीन नाटक

1.5.8 हास्य नाटक

1.5.9 जीवनीपरक नाटक
1.5.10 नाटक के भीतर नाटक
1.5.11 आशु नाटक
1.5.12 वृत्त नाटक (डाक्युमेंटरी प्ले)
1.5.13 पार्श्व नाटक
1.5.14 बीज नाटक
1.5.15 एक नाटक (मोनोलोग)
1.5.16 उद्देश्यपरक नाटक
1.5.17 छाया नाटक
1.5.18 स्वतंत्र नाटक
1.5.19 सिने नाटक
1.5.20 सडक नाटक
1.5.21 नृत्य नाट्य या बालै
1.5.22 संगीत नाटक (ऑपेरा)
1.5.23 अकविहीन नाटक
1.5.24 असंगत नाट्य परंपरा (एब्सर्ड नाटक)
1.5.25 महिला नाटक
1.5.26 दलित नाटक
1.5.27 आदिवासी नाटक
1.5.28 व्यंग्य नाटक
1.5.29 फैंटेसी
1.5.30 बाल नाटक
1.5.31 लघु नाटक
1.5.32 रेडियो नाटक
1.5.33 अनूदित-रूपान्तरित नाटक

1.6 रूपान्तरण

1.7 नाट्यरूपान्तर अथवा नाट्यरूपान्तरण

1.8 नाट्यरूपान्तरण का विकास

1.9 नाटक में काल, स्थान और कार्य की अन्विति

1.9.1 काल संकलन (Unity of time)

1.9.2 स्थान संकलन (Unity of place)

1.9.3 कार्य संकलन (Unity of Action)

1.10 मौलिकता का सवाल

1.11 नाट्यरूपान्तरण की प्रासंगिकता

1.12 हिन्दी के प्रमुख नाट्यरूपान्तरकार

1.12.1 बेगम कुदसिया जैदी

1.12.2 देवेन्द्रराज अंकुर

1.12.3 अमिताभ श्रीवास्तव

1.12.4 गिरीश रस्तोगी

1.12.5 प्रतिभा अग्रवाल

1.12.6 नादिरा ज़हीर बब्बर

1.12.7 चित्रा मुद्गल

1.12.8 उषा गांगुली

1.12.9 अरुण पांडेय

1.12.10 मृणाल पांडे

1.12.11 मीरा कांत

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 58-110

हिन्दी के नाट्यरूपान्तर : एक सामान्य परिचय

2.1 समकालीन हिन्दी रंगमंच की प्रयोगशीलता

2.2 कहानी का रंगमंच

2.3 कहानी के रंगमंच का इतिहास

2.4 कहानी के रंगमंच की विशेषताएँ

2.5 अभिनेता की भूमिका

2.6 प्रमुख कहानियाँ और उसके नाट्यरूपान्तर

- 2.6.1 तीन एकान्त - देवेन्द्रगज अंकुर
- 2.6.2 पीले पत्तों का तीसरा दिन - देवेन्द्रराज अंकुर
- 2.6.3 पंचलाइट, अरथी और जीव खो गया - ब.व. कारंत
- 2.6.4 खच्चर और रसप्रिया - संजीव सहाय
- 2.6.5 दूसरी दुनिया, कव्वे और कालापानी - राजिन्दरनाथ
- 2.6.6 गदर से पहले के दिन - एकत्र
- 2.6.7 चन्द्रमासिंह उर्फ चमकू - भानु भारती
- 2.6.8 खोजी - विजयदान देथा
- 2.6.9 फितरती चोर / चरणदास चोर - हबीब तनवीर
- 2.6.10 बंजारा टोला - किरन चंद्र शर्मा
- 2.6.11 मोटेराम का सत्याग्रह - सफदर हाश्मी
- 2.6.12 मायाजाल - हरपिन्दर भाटिया
- 2.6.13 रुदाली - उषा गांगुली

2.7 उपन्यास और नाटक

2.8 उपन्यास का रंगमंच

2.9 प्रमुख उपन्यास और उसके नाट्यरूपान्तर

- 2.9.1 बेगम का तकिया - रंजीव कपूर
- 2.9.2 मुख्यमंत्री - रंजीत कपूर
- 2.9.3 तमाशा - रामकुमार भ्रमर
- 2.9.4 मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

2.9.5 डार से बिछुड़ी - देवेन्द्रराज अंकुर
2.9.6 उसका बचपन - मणिका मोहिनी
2.9.7 गली आगे मुडती है - हनु यादव
2.9.8 अग्नि गर्भ - नूर जहीर
2.9.9 हज़ार चौरासी की माँ- महाश्वेता देवी
2.9.10 श्री श्री गणेश महिमा - रामेश्वर प्रेम
2.9.11 चार अध्याय - शंभू मित्र
2.9.12 काजर की कोठरी - मृणाल पाण्डे
2.9.13 मंदाक्रान्ता - मैत्रेयी पुष्पा
2.9.14 स्पार्टकस - बादल सरकार
2.9.15 टुट्टू - विनोद शर्मा
2.9.16 ये आदमी ये चूहे - देवेन्द्रराज अंकुर
2.10 कविता का रंगमंच
2.11 कविता मंचन : प्रमुख विशेषताएँ
2.12 कविता और अभिनेता
2.13 कविता और उसका नाट्यरूपान्तर
2.13.1 बीसलदेव रासो - प्रभाकर क्षोत्रीय
2.13.2 दर्द आएगा दबे पांव - शीला भाटिया
2.13.3 तेरे मेरे लेख - शीला भाटिया
2.13.4 अरण्य - सत्यदेव दूबे
2.13.5 हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी - हेमा सहाय
2.13.6 अब तक क्या किया - अनिल चौधरी
2.13.7 नन्हें कंधे नन्हें पैर - अशोक भौमी
2.13.8 मगध - गिरीश रस्तोगी
2.13.9 अंधेरे में - विजय सोनी
2.13.10 इतिहास तुम्हें कहाँ ले गया कन्हैया - नादिरा ज़हीर बब्बर

2.14 नाटक का नाट्यालेख
2.14.1 कितना कुछ एक साथ - गिरीश रस्तोगी
2.14.2 एक घूँट - गिरीश रस्तोगी
निष्कर्ष
तीसरा अध्याय 111-253
कहानी का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग
3.1 प्रेमचन्द की कहानियों के नाट्यरूपान्तर
3.1.1 पंच परमेश्वर
3.1.2 पंच परमेश्वर - नाट्यरूपान्तर
3.1.3 सवा सेर गेहूँ
3.1.4 सवा सेर गेहूँ - नाट्यरूपान्तर
3.1.5 सद्गति
3.1.6 सद्गति - नाट्यरूपान्तर
3.1.7 गुल्ली डंडा
3.1.8 गुल्ली डंडा - नाट्यरूपान्तर
3.1.9 जुलूस
3.1.10 जुलूस - नाट्यरूपान्तर
3.1.11 दूध का दाम
3.1.12 दूध का दाम - नाट्यरूपान्तर
3.1.13 बेटोंवाली विधवा
3.1.14 बेटोंवाली विधवा - नाट्यरूपान्तर
3.1.15 बूढ़ी काकी
3.1.16 बूढ़ी काकी - नाट्यरूपान्तर
3.1.17 मंत्र
3.1.18 मंत्र - नाट्यरूपान्तर

3.1.19 ईदगाह
3.1.20 ईदगाह - नाट्यरूपान्तर
3.1.21 विध्वंस
3.1.22 विध्वंस - नाट्यरूपान्तर
3.1.23 यह मेरी मातृभूमि है
3.1.24 यह मेरी मातृभूमि है - नाट्यरूपान्तर
3.2 भीष्म साहनी की कहानियों के नाट्यरूपान्तर
3.2.1 झुटपुटा
3.2.2 झुटपुटा - नाट्यरूपान्तर
3.2.3 चीफ की दावत
3.2.4 दावत - नाट्यरूपान्तर
3.2.5 झूमर
3.2.6 झूमर - नाट्यरूपान्तर
3.2.7 खून का रिश्ता
3.2.8 खून का रिश्ता - नाट्यरूपान्तर
3.2.9 कंठहार
3.2.10 कंठहार - नाट्यरूपान्तर
3.2.11 निमित्त
3.2.12 निमित्त - नाट्यरूपान्तर
3.2.13 सागमीट
3.2.14 सागमीट - नाट्यरूपान्तर
3.2.15 मकबरा शाह शेर अली
3.2.16 मकबरा शाह शेर अली - नाट्यरूपान्तर
3.3 बाल भगवान - स्वदेश दीपक
3.4 नाटक बाल भगवान - नाट्यरूपान्तर

3.5 और अंत में प्रार्थना - उदय प्रकाश
3.6 और अंत में प्रार्थना - नाट्यरूपान्तर
निष्कर्ष

चौथा अध्याय 254-347
उपन्यास का रंगमंच - संवेदना एवं प्रयोग

4.1 गोदान - प्रेमचन्द
4.2 गोदान का नाट्यरूपान्तर 'होरी'
4.3 गोदान का नाट्यरूपान्तर 'गोदान'
4.4 बाणभट्ट की आत्मकथा - हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
4.5 बाणभट्ट की आत्मकथा - नाट्यरूपान्तर
4.6 दिव्या - यशपाल
4.7 पुनरपि दिव्या - दिव्या का नाट्यरूपान्तर
4.8 सुहाग के नूपुर - अमृतलाल नागर
4.9 सुहाग के नूपुर - नाट्यरूपान्तर
4.10 महाभोज - मन्नू भंडारी
4.11 महाभोज - नाट्यरूपान्तर
4.12 रागदरबारी - श्रीलाल शुक्ल
4.13 रंगनाथ की वापसी - रागदरबारी का नाट्यरूपांतर
4.14 मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु
4.15 मैला आँचल नाट्यरूपान्तर
4.16 कभी न छोडें खेत - जगदीशचन्द्र
4.17 कभी न छोडें खेत - नाट्यरूपान्तर
4.18 छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान
4.19 छिन्नमस्ता - नाट्यरूपान्तर
निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय 348-396

कविता का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

5.1 कामायनी - जयशंकर प्रसाद

5.2 कामायनी का नाट्यरूपान्तर - कामायनी रूपक

5.3 नहुष - मैथिलीशरण गुप्त

5.4 नहुष - नाट्यरूपान्तर

5.5 देखो साँप : तक्षक नाग - प्रेमशंकर रघुवंशी

5.6 देखो साँप : तक्षक नाग - नाट्यरूपान्तर

निष्कर्ष

उपसंहार 397-404

परिशिष्ट 405-406

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 407-423

पहला अध्याय

नाट्यरूपान्तर - अवधारणा एवं स्वरूप

पहला अध्याय

नाट्यरूपान्तर - अवधारणा एवं स्वरूप

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य के दृश्य और श्रव्य दो महत्वपूर्ण रूप हैं। इसमें दृश्य के अंतर्गत नाटक आता है। रंगमंच नाटक का प्राणतत्व है। रंगमंच पर अभिनय के द्वारा प्रस्तुत करने के लिए लिखित गद्य-पद्य मिश्रित रचना को नाटक कहा जाता है। नाटक साहित्य की सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली विधा है। नाटक की खूबी इस बात में है कि सामाजिक उसे देखकर अधिक से अधिक आनंद प्राप्त कर सकते हैं। नाटक में सामाजिक आचरण की सहज अभिव्यक्ति पाई जाती है इसलिए नाटक और समाज का अभिन्न संबंध माना जाता है। नाटक और समाज के गहरे संबंध को ध्यान में रखकर ही नाटक देखनेवाले दर्शकों को 'सामाजिक' की पारिभाषिक संज्ञा दी गई है। नाटक हमारे यथार्थ जीवन से अधिक निकट है। इसमें सामाजिक मूल्यों की परख साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक सही एवं व्यापक धरातल पर की जा सकती है। इसकी और एक खासियत यह है कि इसका आस्वादन दर्शक एक साथ बैठकर करते हैं। इसलिए ही साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति अधिक सजीवता से उभरकर आती है। नाटककार का अव्वल दायित्व भी यही है कि वह जीवन के विभिन्न यथार्थ को अधिकाधिक प्रखर रूप में प्रस्तुत करें। यही चेतना और भावना उसे समाज के निकट संपर्क में लाती है। वैसे तो समस्त साहित्य का आधार समाज है, परंतु नाट्य विधा में जिस प्रकार समाज को छूने की और उसे जागृत करने की

शक्ति मौजूद है वह अतुलनीय है। वेद, इतिहास, पुराण, सभ्यता व संस्कृति सब कुछ नाटक के द्वारा हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता रहता है। इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा वह बहुचर्चित एवं लोकप्रिय है।

1.1 नाटक की व्युत्पत्ति

नाटक शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद दिखाई देता है। फिर भी कुछ विद्वानों ने नाटक शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर अपना मत प्रकट किया है। सामान्यतः नाटक शब्द की व्युत्पत्ति 'नट्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है - सात्विक भावों का प्रदर्शन। दूसरे अर्थ में नाटक नट की विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति है। 'नट' से संबंधित होने के कारण इसे नाटक कहलाता है। पाणिनी के अनुसार - 'नाटक' या 'नाट्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'नट' धातु से हुई है। इस धातु का अर्थ है अभिनय करना। नाट्य दर्पणकार रामचन्द्र ने नाटक शब्द को 'नाट्य' से उत्पन्न माना है किन्तु यह मत सर्वमान्य न हो सका। नाटक शब्द की उत्पत्ति दशरूपक के अनुसार 'नट्' धातु से मानी गई है। यथा-

"नाट्यमिति च नट अवस्यन्दने इति नटे।।"[1] 'नट अवस्यन्दने' कहकर दशरूपककार धनंजय ने बताया है कि अवस्यन्दने का अर्थ सात्विक अभिनय से है और वह नृत्य से भिन्न है।

भारतीय नाट्य मीमांसकों में भरतमुनि का नाम सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ है। भरत के अनुसार नाटक की व्युत्पत्ति का मूलाधार वेद है। उनका कहना है कि देवराज इन्द्र ने वेदों के रचयिता ब्रह्मा से जनसाधारण के मनोरंजनार्थ एक ग्रंथ रचना करने की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पंचमवेद के रूप में नाटक की रचना की।

---

1. धनंजय - दशरूपक, टीकाकार - डॉ. भोलाशंकर व्यास - पृ. 5

नाटक की उत्पत्ति के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के बीच में भी काफी मतभेद है। कुछ विद्वान नाटक का उद्‌भव धार्मिक कर्मकांडों से प्रेरित मानते हैं तो कुछ लौकिक तथा सामाजिक कार्यकलापों से। प्रो. हिलोब्रां तथा प्रो. स्टनकोना नाटक की व्युत्पत्ति लौकिक एवं सामाजिक उत्सवों से मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय नाटकों की व्युत्पत्ति के मूल में 'इन्द्रध्वज' महोत्सव है। डॉ. रिज़बे के अनुसार नाटक का उदय मृत वीरों की पूजा से हुआ है। उनके मत में प्राचीनकाल में मृत आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए गीत, नाटक आदि का आयोजन हुआ।

पिशेल महोदय नाटक की व्युत्पत्ति कठपुतलियों के खेल से मानते हैं। नाटककार जयशंकर प्रसाद इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "कठपुतलियों से नाटक प्रारंभ होने की कल्पना का आधार 'सूत्रधार' शब्द है, किन्तु सूत्र के लाक्षणिक अर्थ का प्रयोग सूत्रधार और सूत्रात्मा जैसे शब्दों से मानना चाहिए। जिसमें अनेक वस्तुएं ग्रथित हो और जो सूक्ष्मता से सब में व्याप्त हो, उसे सूत्र कहते हैं। कथावस्तु और नाटकीय प्रयोजन के सब उपादानों को जो ठीक-ठीक संचालित करता हो, वह सूत्रधार है। वह आजकल के डायरेक्टर की तरह होता था। संभव है कि पटाक्षेप और यवनिका आदि के सूत्र भी उसके हाथों में रहते थे।"[1] मोनियर विलियम्स तथा बेवर ने 'नट' धातु को नृत का प्राकृत रूप माना है।

1.2 नाटक की परिभाषा

नाटक की परिभाषा को लेकर भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने अपना-अपना मत प्रकट किया है। भरतमुनि अपने 'नाट्यशास्त्र' में नाटक की परिभाषा इस तरह देते हैं-

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 57

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न स विधा न सा कला नासो योगो न

तर्त्कम नाट्या स्मिस पन्न दृश्यते नाट्यशास्त्री भरत।।"[1]

अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विधा, कला, योग अथवा काम नहीं जिसका दर्शन नाटक में न कराया जाता हो।

हिन्दी नाटक का व्यवस्थित रूप भारतेन्दु से ही प्रारंभ होता है। 'नाटक' नामक निबंध में उन्होंने नाटक के अर्थ एवं परिभाषा पर विचार किया है। उनकी दृष्टि में "नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की प्रक्रिया। नट वह है जो विधा के प्रभाव से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप में फेर या स्वयं दृष्टिरोचन के अर्थ फिरे। दृश्य काव्य ही संज्ञा रूपक है। रूपक में नाटक ही सबसे मुख्य है। इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं।"[2] वे देश की उन्नति के लिए नाट्य चिन्तन को बढावा देने की सुझाव देते हैं।

हिन्दी नाटक के सबसे बडे आलोचक डॉ. दशरथ ओझा ने नाटक की परिभाषा पर विचार करते हुए कहा हैं कि - "जब लोगों की क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण होकर किया जाए तो वह नाटक कहलाता है।"[3] उनके अनुसार भारतीय संस्कृति के एकीकरण का श्रेय भारतीय नाटक को ही प्राप्त है।

नेमिचन्द जैन के अनुसार "अपनी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से नाटक वह संवादमूलक कथा है जिसे अभिनेता रंगमंच पर नाट्य व्यापार के रूप में दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुत करते हैं।"[4] उनके अनुसार नाटक दर्शक वर्ग तक पहूँचने से ही सक्षम होता है।

---

1. भरतमुनी - नाट्यशास्त्र 1/116
2. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - पृ.सं. 36
3. वही - पृ.सं. 36
4. नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - पृ.सं. 37

पश्चिम में नाटक का प्रादुर्भाव पहले यूनान में हुआ। यूरोप की नाट्य समीक्षा के प्रथम आचार्य अरस्तु माने जाते हैं। भारतीय नाट्य साहित्य में जो स्थान आचार्य भरतमुनि का है वही पश्चिमी नाट्य जगत में अरस्तू को प्राप्त है। अरस्तू ने नाटक को ट्रेजेड़ी (tragedy) कहकर स्वीकार किया और उसे जीवन के व्यापारों का अनुकरण माना। उनके शब्दों में "A tragedy, then is the imitation of an action, that is serious and also as having magnitude complete in itself, in language with pleasurable accessories each kind brought in seperately in the parts of the work, in a dramatic not in a narrative form, with incidents arousing pity and fear where with to accomplish its catharsis of such emotions"[1] ट्रेजेडी इस व्यापार विशेष का अनुकरण है, जिसमें गंभीरता और पूर्णता हो, जिसकी भाषा प्रत्येक प्रकार के कलात्मक अलंकारों से सुसज्जित हो, और जिसमें अनेक विभाषाएँ पाई जाती हो, जिसकी शैली वर्णनात्मक न होकर दृश्यात्मक हो, जो करुणा और भय का प्रदर्शन करके इन मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके।

प्रसिद्ध पाश्चात्य नाट्य समालोचक निकल (Allardyce Nicoll) ने नाटक की एक नवीन परिभाषा प्रस्तुत की। उन्होंने कहा, "नाटक जीवन संबन्धी विचारधाराओं को अभिव्यक्त करने की ऐसी कला है जिसमें अभिनेताओं के भाषणों और क्रिया-कलापों के माध्यम से वह अभिव्यक्ति अत्यधिक शक्तिशाली बनकर दर्शकों को आह्लादित करती है।"[2] नाटक के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखी गई निकल की यह मान्यता सर्वसापेक्ष्य प्रतीत होती है।

---

1. Aristotle - On the art of poetry - P. 35
2. रामाश्रय रत्नेरा - हिन्दी नाटकों में नैतिक चेतना का विकास - पृ.सं 21

1.3 नाटक का विकास

साहित्य के क्षेत्र में नाट्य कला को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। नाटक केवल साहित्यिक आलेख नहीं है, बल्कि दृश्य तत्व से युक्त एक समन्वित कला है। प्रसिद्ध आलोचक एवं रंगशिल्पी नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में "नाट्यकला सृजनात्मक अभिव्यक्ति का वह रूप है जिसमें मुख्यतः किसी संवादमूलक आलेख या कथा को (जिसे हम नाटक कहते हैं) अभिनेताओं द्वारा अन्य रंगशिल्पियों की सहायता से किसी रंगमंच पर दर्शक समूह के सामने प्रदर्शित किया जाता है।"[1] अर्थात् नाट्यकला प्रभावात्मकता, व्यापकता एवं प्रसार की दृष्टि से साहित्य का सशक्त रूप है।

नाटक के आदि स्वरूप का उल्लेख भरत के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। बाद में संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति हुई। संस्कृत नाटक की परंपरा ईसा से पचास वर्ष पूर्व अश्वघोष से प्रारंभ हुई थी। नाटक के क्षेत्र में उन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग किया है। अश्वघोष ने संस्कृत की जिस नाट्य परंपरा की स्थापना की उसका उत्कर्ष कालिदास के नाटकों में हुआ है। उन्होंने 'विक्रमोर्वशीय', 'मालविकाग्निमित्र', 'मेघदूत' तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' जैसे विश्व प्रसिद्ध नाटकों की रचना की है। कालिदास के परवर्ती काल में शूद्रक का 'मृच्छकटिक' सर्वश्रेष्ठ नाटकों में एक है। 'उत्तररामचरितम्' के रचयिता भवभूति को भारतीय आचार्यों ने कालिदास के अनन्तर दूसरा स्थान दिया है। भवभूति के बाद संस्कृत नाटकों में ह्रासोन्मुखता परिलक्षित होती है। किन्तु लोकनाटक की परंपरा जीवित रही। 17वीं और 18वीं शताब्दी में कुछ पद्यबद्ध नाटकों की रचना हुई। इन नाटकों में रामायण,

---

1. नेमिचन्द्र जैन - रंगदर्शन - पृ.सं 13

महाभारत, हनुमन्ननाटक, चंडीचरित्र, प्रबोध चन्द्रोदय आदि प्रमुख हैं। इसके बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों द्वारा आधुनिक नाट्य जगत को संपन्न बनाया।

1.3.1 भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य में नाटक का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेन्दु काल से ही हुआ। भारतेन्दु युग में नाटक का विकास द्रुतगति से हुआ और विद्वानों ने इस युग को हिन्दी नाट्य साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा है। भारतेन्दु युगीन नाटकों का मूल उद्देश्य पाश्चात्य संस्कृति के समक्ष भारतीय संस्कृति की महत्ता सिद्ध करना, भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जगाना तथा सामाजिक कुरीतियों व बुराईयों से अवगत कराना है। इस युग के सबसे प्रमुख नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हैं। उनके नाटकों का सर्वप्रथम लक्ष्य जनता की रुचि का परिष्कार करना रहा। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के शब्दों में "यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूँढें जिसने नाटकशास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्य कला पर सैद्धान्तिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद किया हो, जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक और मौलिक नाटकों की रचना की हो और जिसने नाटकों की रचना ही नहीं, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेलकर भी दिखाया हो - उन सब विशेषताओं से संपन्न नाटककार हिन्दी में ही नहीं, समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो चार मिलेंगे और उन सबमें भारतेन्दु का स्थान सबसे ऊँचा होगा।"[1] भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से नवजागरण का शंख गूँजकर देश और समाज का हित संपादन करना प्रारंभ किया।

---

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 605

1.3.2 प्रसाद युग

प्रसादजी के आगमन से नाटक के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। प्रसादजी ने कई ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। लेकिन उनके नाटकों का पात्र ऐतिहासिक होते हुए भी समस्याओं की दृष्टि से वर्तमान है। उनके नाटक न तो दुःखान्त हैं, और न ही सुखान्त बल्कि प्रसादान्त है। "उनके नाटकों का अंत ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना से होता है कि जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है किन्तु स्वयं उपभोक्ता न बनकर प्रतिनायक को ही लौटा देता है। इस प्रकार के विचित्र अन्त को प्रसादान्त की संज्ञा दी गई है।"[1] जयशंकर प्रसाद तथा उनके समकालीन नाटककारों ने अतीत की समृद्ध चेतना को आधार बनाकर देश का गौरवपूर्ण रूप प्रस्तुत किया। परिवेश की निराशाओं को समझकर अपने नाटकों में आशा की किरण को जगाया। इस प्रकार प्रसाद युगीन नाटक आधुनिक नाटककार के लिए एक नया ज़मीन तैयार की है।

1.3.3 प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाम से दो धाराएँ नाटक के क्षेत्र में उभर आयीं। आदर्श और भावनात्मकता की अपेक्षा यथार्थ और बौद्धिकता पर बल प्रसादोत्तर युग की प्रमुख विशेषता रही। इस युग के संबद्ध में डॉ. शान्ति मालिक का कहना है "इस काल में अनेकानेक प्रवृत्तियाँ यथा-मानवतावादी, बुद्धिवादी, प्रतीकवादी, सुधारवादी, समाजवादी, यथार्थवादी, व्यक्तिवादी तथा अनेक वाद जैसे यौनवाद, आत्माभिव्यंजनावाद, रूपविधानवाद, प्रकृतिवाद एवं प्रभाववाद आदि प्रस्फुटित हुए।"[2] इस युग के नाटककारों में

---

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 608
2. डॉ. शान्ति मालिक - हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - पृ.सं. 197

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश आदि प्रमुख हैं। इन नाटककारों ने युगीन समस्याओं को अपने नाटकों को ज़रिए साक्षात्कार किया।

1.3.4 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच

स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी रंगमंच ने अपना एक नया रूप हासिल कर लिया। इस युग में कुछ नये लेखकों ने नाट्य रचना की नयी दृष्टि, नयी वस्तु, एवं नये शिल्प का प्रयोग करते हुए नूतन परंपराओं का प्रवर्तन किया है। रंगमंच की आवश्यकता के अनुरूप नाटक का नया ढाँचा रूपायित किया। नाटक में समाज की सभी बातों को, व्यक्ति की सभी पहलुओं को व्यक्त करने की कोशिश की गई है। सातवें दशक के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच में बुनियादी परिवर्तन शुरू हुआ। आज नाटक रंगमंच और जीवन से समान रूप से जुडा हुआ है। वह वर्तमान युग की सभी प्रकार की संवेदनाओं को प्रखरता के साथ व्यक्त कर रहा है। आज का हिन्दी नाटक और रंगमंच अपने लिए नयी संभावनाएँ एवं नई दिशाएँ खोजने में प्रयत्नरत हैं।

1.4 समकालीन हिन्दी रंगमंच

प्रत्येक साहित्यिक विधा की एक विशिष्ट प्रकृति होती है और यह प्रकृति ही उसका स्वरूप निर्धारित करती है। नाटक एक कलात्मक, संवादात्मक और सामूहिक कला है। यह समाज और सामाजिकता का माध्यम है और समकालीन साहित्य की महत्वपूर्ण कड़ी है। हिन्दी नाटक और रंगमंच आज समकालीन जीवन की अभिव्यक्ति का एक सशक्त और महत्वपूर्ण कला माध्यम बन गया है। समकालीन हिन्दी रंगमंच अनेक दृष्टियों, प्रविधियों और शैलियों से संपृक्त है। नाटक को हल्के मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर

एक जीवन्त माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी इस काल में हुआ। पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में अनेक प्रकार के नाट्य प्रयोग हुए हैं। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र जी का कथन महत्वपूर्ण हैं - "हिन्दी नाटक का सातवां-आठवां दशक प्रयोगधर्मी नाट्य परंपरा की दृष्टि से पूरे हिन्दी नाटक के विकास में एक नया अध्याय जोड़ता है। नये-पुराने हिन्दी नाटकों का जो महत्व मिला है उसके मूल में हिन्दी रंगमंच का सही दिशा में विकास है। अब हिन्दी रंगमंच विदेशी नाटकों, शैलियों का मुहताज़ नहीं है। उसकी एक रंग परंपरा और रंग दृष्टि विकसित हुई है।"[1] अब हिन्दी नाटककार के पास वे हथियार उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग करके रचनाकार सचमुच सार्थक नाटक का सृजन कर सकें।

समकालीन रंग चेतना का वास्तविक आभास, जगदीश चन्द्र माथुर का 'कोणार्क', मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन', धर्मवीर भारती का 'अंधा युग', लक्ष्मीनारायण लाल का 'मादा कैक्टस', 'रातरानी' जैसी रचनाओं से हुआ है जिससे एक नवीन रंगचेतना का उदय हुआ। साथ ही साथ इब्राहिम अलकाजी, ब.व. कारन्त, महेश आनंद, भानु भारती, ब्रजमोहन शाह, एम.के. रैना, अमिताभ श्रीवास्तव, देवेन्द्रराज अंकुर, सत्यदेव दूबे, श्यामानन्द जालन जैसे अनुभवी और कल्पनाशील निर्देशकों का सहयोग भी प्राप्त हुआ। समकालीन हिन्दी नाटक के विकास में इनके योगदान को महत्व देते हुए नेमिचन्द्र जैन ने कहा है - "समकालीन हिन्दी नाटकों की प्रगति में अनेक प्रभावशाली और कल्पनाशील निर्देशकों का बड़ा योगदान है। बहुत बार निर्देशकों ने ही उपलब्ध नाटकों की रंगमंचीय और कलात्मक संभावना को पहचाना और फिर अपने प्रदर्शनों द्वारा उसे दूसरों के आगे उद्‌घाटित किया। हिन्दी भाषी क्षेत्र में दर्शकों, नियमित रूप से नाटक खेलनेवाली सक्षम

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.सं. 752

मंडलियों, अर्थात पर्याप्त अनुभवी या प्रशिक्षित अभिनेताओं की अनुपस्थिति के बावजूद इन साहसिक निर्देशकों की लगन और कलात्मक प्रयासों ने ही हिन्दी नाटक को भारतीय रंग परिदृश्य में उनका सही दर्जा दिलाया है।"[1] इसके अलावा अनेक ऐसे प्रादेशिक केन्द्र भी खुले हैं जिससे हिन्दी रंगमंच सक्रिय बना है। नेमिचन्द जैन के अनुसार - "हिन्दी रंगमंच के सारे ज़रूरी उपादान इन्हीं केन्द्रों में हैं - जीवन्त भाषा, लोक जीवन का आचार-विचार, संगीत और नृत्य, नाट्य पद्धतियाँ और समुदाय की जडों से लिपटी हुई पुराणकथाएँ, मिथक, संस्कार, जिनका सर्वजनात्मक समावेश ही हिन्दी भाषी समाज के जीवन और मानस को गहराई से झकझोर सकता है, उसके समकालीन अनुभव को उसके आदिम संस्कारों से जोड सकता है और इस प्रकार सार्थक, प्रासंगिक और उत्तेजक रंगकार्य संभव बना सकता है।"[2] सच बात यह है कि नाटक जो है पूर्ण रूप से रंगमंच सापेक्ष हो गया और रंगमंच साहित्यिक गुण से अभिभूत भी हो गया। समकालीन नाटककार ऐसे अनुभवों और विचारों को प्रस्तुत करता है जो आज के लोगों का है, आम आदमी की रोज़मर्रा की जिन्दगी के निकट का है।

1.5 समकालीन हिन्दी नाटकों के विभिन्न रूप

समकालीन हिन्दी रंगमंच अपनी आवश्यकता के अनुसार परंपरा और आधुनिकता से नवीन प्रेरणाएँ ग्रहण करता हुआ अपनी पहचान बना रहा है। इसमें कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों में नया विचार और नया स्वरूप उभर रहा है। समकालीन नाटककारों ने आज के जीवन के तनावों, दबावों और जटिल मानवीय बोध को प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न रूप और तेवर अख्तियार किए हैं। अधिकांश नाटकों में एक ऐसे नाट्य रूप की तलाश

---

1. नेमिचन्द्र जैन - समकालीन भारतीय साहित्य - (सं) प्रभाकर क्षोत्रीय, अंक 41 - पृ.सं. 170
2. नेमिचन्द्र जैन - समकालीन भारतीय साहित्य - प्रभाकर क्षोत्रीय, अंक 41 - पृ.सं. 171

दिखाई पडती है जो समकालीन संदर्भ के जटिल और सघन अनुभव को तीव्रता के साथ व्यक्त कर सके। इसके परिणाम स्वरूप कुछ महत्वपूर्ण नाट्य रूप हमारे सामने आए हैं। इसका संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत हैं-

1.5.1 लोक नाट्य

लोक नाट्य लोक के मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है। लोक मंच लोक जीवन और लोक संस्कृति का दर्पण है। लोक जीवन के सहज संस्कार लोक नाट्यों के सहज स्रोत है। लोक रूढ़ियों तथा विश्वास इन नाट्यों को सफलता प्रदान करते हैं। लोक नाट्य का महत्वपूर्ण अंग उसकी कथा है। इसकी कथा धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक या ऐतिहासिक कोई भी हो सकती है। नौटंकी, स्वांग, भगत, रामलीला, रासलीला, अकिया, नाचा, तमाशा, जश्न आदि लोकनाट्य की महत्वपूर्ण शैलियाँ है। सन् 1960 के बाद कई नाटककारों ने लोकनाट्य शैलियों का प्रयोग किया है। इसमें डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', मणि मधुकर का 'दुलारी बाई', मुद्राराक्षस का 'आला अफसर', सक्सेना का 'बकरी', अशोक मिश्र का 'बर्ज ढिंढोर उर्फ खून का रंग', हबीब तनवीर का 'चरनदास चोर', 'शंकरशेष का 'पोस्टर', कुसुम कुमार का 'रावणलीला' आदि उल्लेखनीय हैं।

1.5.2 नुक्कड़ नाटक

नुक्कड़ नाटक समकालीन हिन्दी नाटक का नवीनतम सोपान है। यह मूल रूप से मजमा, नट, मदारी, तमाशा जैसे लोकनाट्य रूपों से विकसित है। इसे सड़क नाटक, चौराहा नाटक, पथ नाटक आदि नामों से भी जाना जाता है। नुक्कड़ नाटक की जडें हमारे यहाँ पहले से ही मौजूद हैं। इसका संबंध आदिम जाति और समाज से है। नुक्कड़ नाटक में मंच की किसी विशेष साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं पडती है। इसे गली, मुहल्ले,

चौराहे, पार्क व किसी खुले स्थान पर बहुत सुविधा से अभिनीत किया जा सकता है। नाटक को रंगमंच की सीमाओं से निकालकर नुक्कड़ तक पहूँचाने का महत्वपूर्ण कार्य ही नुक्कड़ नाटक करता है। नुक्कड़ नाटकों में किसी भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक समस्या को नाट्य वस्तु के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। "नुक्कड़ नाटक का संबंध स्वभावतः राजनीतिक - सामाजिक आर्थिक स्थितियों से, आम आदमी के प्रति अन्याय और अत्याचार करनेवाली जन-विरोधी शक्तियों के घृणित रूप और कृत्यों से, उन्हें भेदनेवाली अटूट इच्छा से जुड़ता गया। तात्कालिक प्रश्न उसका अंग होते गये।"[1] नुक्कड़ नाटक का शिल्प बेहद लचीला होता है। इसके कथ्य, भाषा, दृश्य, अभिनय आदि में बदलाव अपेक्षित होता है। शंकर शेष का 'पोस्टर', शरद जोशी का 'अंधों का हाथी', गुरुशरण सिंह का 'इंकलाब ज़िंदाबाद', रमेश उपाध्याय का 'गिरगिट', सफदर हाश्मी के 'हल्लाबोल', 'राजा का बाजा', 'मशीन', 'अपहरण भाई चारे का', कुसुम कुमार का 'सुनो शेफाली', असगर वजाहत का 'इन्ना की आवाज़', रामेश्वर प्रेम का 'राजा नंगा है', मुद्राराक्षस का तेंदुआ आदि नुक्कड़ नाटक के क्षेत्र में प्रमुख हैं।

1.5.3 गीति नाट्य

गीति नाट्य काव्य और नाटक का सम्मिश्रण है। इसका उद्भव "आधुनिक प्रकृतिवादी अति यथार्थवादिता, समस्या एवं बौद्धिकता प्रधान गद्य नाटकों की निर्जीव शुष्कता और नीरसता, गद्य के माध्यम से मानव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की अपूर्णता तथा लिरिकल पोएट्री की प्रतिक्रिया में हुआ है।"[2] आधुनिक नाट्यालोचकों ने गीतिनाट्य

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 143
2. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 619

को नाट्यात्मक कविता, नाटकीय कविता, नाट्य गीति, पद्यनाटक, काव्य रूपक एवं काव्य नाटक आदि संज्ञाओं से अभिहित किया है। हिन्दी में गीति नाट्य परंपरा का आरंभ जयशंकर प्रसाद के 'करुणालय' से हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक काव्य नाटकों के सृजन हुए जिसमें धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' सर्वाधिक चर्चित काव्य नाटक रहा है। बाद में रामधारी सिंह दिनकर का 'उर्वशी', लक्ष्मीनारायण भारद्वाज का 'प्रतिश्रुति', विनोद रस्तोगी का 'सूतपुत्र', भारतभूषण का 'अग्निलीक', कुंथा जैन का 'बाहुबली', दुष्यन्त कुमार का 'एक कंठ विषपायी', प्रमोद तिवारी का 'पुरुष', प्रभातकुमार भट्टाचार्य का 'काठमहल' आदि नाटक भी चर्चित रहे हैं।

1.5.4 प्रतीक नाटक

प्राचीन भारतीय साहित्य में गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में प्रतीकों की एक लंबी परंपरा रही है। जब कोई रचनाकार अपने विचारों को सीधे पाठकों या दर्शकों तक व्यक्त करने में असुविधा अनुभव करता है तब वह अपनी अनुभूति को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोशिश करते हैं। हिन्दी साहित्य के कई विधाओं में प्रतीकों का प्रयोग हो रहा है। हिन्दी नाट्य साहित्य में भी इस प्रतीक शैली को लेकर अनेक नाटक सामने आए हैं। जिसमें प्रसाद का 'कामना', सुमित्रानंदन पंत का 'ज्योत्सना', मोहन राकेश का 'आधे-अधूरे', लक्ष्मीनारायण लाल के 'रक्तकमल', 'सूखा सरोवर', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', जगदीशचन्द्र माथुर का 'पहला राजा', ब्रजमोहनशाह का 'त्रिशंकु', अज्ञेय का 'उत्तर प्रियदर्शी', सुरेन्द्र वर्मा का 'द्रौपदी', 'सूर्य की अंतिम किरण से लेकर सूर्य की पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग', नरेन्द्र कोहली की 'शंबूक की हाया' आदि प्रमुख है। समकालीन हिन्दी नाटक में यह प्रतीक शैली ने एक भिन्न रूप धारण कर लिया

है। जिसमें मूल रूप से पशु-प्रतीकों के माध्यम से नाट्य वस्तु की व्यंजना की गयी है। पशु प्रतीकों के माध्यम से लिखे गए नाटकों में सकसोना का 'बकरी', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतरमुर्ग', रमेश बक्षी का 'तीसरा हाथी', मुद्राराक्षस का 'तिलचट्टा', 'तेंदुआ', प्रियदर्शी प्रकाश का 'सभ्य साँप', शरद जोशी का 'एक था गधा उर्फ अलदाद खाँ', नरेन्द्र मोहन का 'सींगधारी' आदि उल्लेखनीय हैं।

1.5.5 मिथकीय नाटक

मिथकीय नाटकों में पौराणिक - ऐतिहासिक कथा को आधुनिक संदर्भ के अनुकूल निरुपित किया गया है। नाटककारों ने अतीत के पुनरुद्धान के लिए इतिहास-पुराण को न चुनकर समसामयिक यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति के लिए ऐतिहासिक एवं पौराणिक स्थितियों को चुन लिया। अर्थ के गहरे स्तर को संप्रेषित करने के लिए मिथकीय कथाओं व पात्रों का उल्लेख आवश्यक है। पहला राजा, एक कंठ विषपायी, कोणार्क, एक और द्रोणाचार्य, अरे! मायावी सरोवर, कोमल गांधार, सूर्यमुख, कलंकी, कथा एक कंस की, आठवाँ सर्ग, पहला विद्रोही, देहांतर, माधवी आदि हिन्दी की प्रमुख मिथकीय रचनाएँ हैं।

1.5.6 यथार्थवादी - सामाजिक नाटक

यथार्थवाद 19वीं शताब्दी के अंत में आया रंगमंच आन्दोलन है। "ये ऐसे कलाकारों द्वारा खेले जाते हैं जो दृश्यवाली के सम्मुख अभिनय करते हैं। स्वाभाविक ढंग से संवाद बोलते हुए चलते हैं। मुक्त होकर यथार्थ समेटो।.... जिसे बोलने नहीं दिया जा रहा तुम उसे बुलवाओ और चुनौतिपूर्ण ढंग में उसे अभिव्यक्त करो।"[1] आज के हिन्दी नाटक

---

1. डॉ. लीना बी.एल - मिथकीय नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 20

यथार्थवादी पथ पर अग्रसर है। हिन्दी में यथार्थवादी नाट्य शिल्प की शुरुआत डॉ. लक्ष्मीनारायण मिश्र की देन है। यथार्थवादी नाटक सामाजिक समस्याओं के तथ्यों, सत्यों को विश्लेषित कर बौद्धिक समाधान में रुचि प्रकट करते हैं। समकालीन नाटककारों ने इस लीक से हटकर न केवल हिन्दी नाट्य साहित्य को नई ज़मीन दी बल्कि सामाजिक समस्याओं की कुरूपता के बेरंग जीवन को उसी रूप में प्रस्तुत किया। बकरी, लडाई, अब गरीबी हटाओ, हानूश, काठमहल, एक कदम ओर जैसे नाटकों से यथार्थवादी धारा संपन्न हुई है।

1.5.7 संवाद विहीन नाटक

संवाद विहीन नाटकों के प्रदर्शन को मौन रंगमंच कहा जाता है। मौन रंगमंच आन्दोलन को श्री. जे. बर्नार्ड ने सन् 1920 में स्थापित किया। इसमें शारीरिक हरकतों, हाव-भाव एवं चेहरे की अभिव्यक्ति से एक भी संवाद किए बिना प्रदर्शन किया जाता है। अंग्रेज़ी में इसे मईम कहते हैं। नाटकीय स्थिति, परिवेश और पात्र मौन के द्वारा बोल सकते हैं। यह आर्ट फिल्म से सादृश्य रखता है। हिन्दी के प्रयोगशील नाटकों में यह नया प्रयोग आलोक शर्मा के चेहरों का जंगल (1980) नाटक है। यह हिन्दी के प्रथम संवादविहीन नाटक है। मोहन राकेश ने 'छतरियाँ' में संवादहीनता दिखाने के लिए उच्चरित भाषा के बदले शारीरिक भाषा के प्रयोग किए हैं।

1.5.8 हास्य नाटक

नाटकों में हास्य का विशेष स्थान है। स्वातंत्र्योत्तर काल में हास्य नाटक का विकास हुआ। डॉ. रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, विनोद रस्तोगी, राजेन्द्र कुमार शर्मा

आदि इस काल के प्रमुख हास्य नाटककार रहे। नाटक में हास्य लोककल्याणकारी त्रुटियों का निवारण क्षमता रखनेवाले तत्व बन जाते हैं। "सन् 1960ई. के बाद हास्य की नयी शैलियाँ, संवेदनाएँ, हास्य-व्यंग्य की नयी मुद्राएँ, नवीन विषयों का चुनाव एवं हास्य विधान की नवीन तकनीक प्रौढता प्राप्त करने लगी। चिरंजीत, दयाप्रकाश सिंहा, जी.पी. श्रीवास्तव, बद्रीनाथ भट्ट, शंकर शेष, भगवतीचरण वर्मा, संतोष नारायण नौटियाल, अमृतराय, अमृतलाल नागर, डॉ. चन्द्रा आदि ने हास्य साहित्य में वृद्धि लायी।"[1] शुतुमुर्ग, चोर निकल के भागा, दिल्ली ऊँचा सुनती है, मुआवजा, सिंहासन खाली है, अपने कर कमलों से, संस्कार को नमस्कार, अमृतपुत्र, कोर्ट मार्शल, पागलघर, तालों में बंद प्रजातंत्र, द्रौपदी, आदि हास्य शैली के नाटक है। हास्य सृष्टि के लिए एबसर्ड शैली, उपहासात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली, कामडी एवं मज़ाकिया जैसी नयी शैलियों के उपयोग होने लगे। यह नाटक अपने प्रस्तुतीकरण में केवल हंसाता नहीं करता बल्कि सोचने के लिए विवश करता है। समाज के मैल के लिए हास्य साबुन सिद्ध होता है।

1.5.9 जीवनीपरक नाटक

जीवनी को आधार बनाकर लिखे नाटक को जीवनीपरक नाटक कहा गया है। जीवनी का स्थान इतिहास के अंतर्गत है अतः यह एक तरह से जीवनीपरक ऐतिहासिक नाटक होते हैं। जीवनी नाटक में सुसंबंध घटनाओं का अभाव होता है। नाटककार जीवनी की किन्हीं घटनाओं को प्रधानता देकर नाटक को गतिशील बनाने का प्रयत्न करता है। कबिरा खड़ा बाज़ार में, इकतारे की आँख, अभंग गाथा, माखनलाल चतुर्वेदी एक झलक,

---

1. डॉ. लीना बी.एल - मिथकीय नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 21

संत तुलसीदास, अग्निशिखा, अपराजेय निराला आदि उल्लेख्य रचनाएँ हैं। जीवनीपरक नाटक एक ऐसा नाटक है जिसमें वास्तविक चरित्रों का आना स्वाभाविक है। अतः बडी सावधानी से चयन करने की एक विधा है - जीवनी नाटक, जो समाज में अपनी सार्थकता प्रदर्शित करती हैं।

1.5.10 नाटक के भीतर नाटक

नए नाटकों के रचना शिल्प की एक विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में नाट्य वस्तु के रचना विधान के अंदर नाटक या समानान्तर नाटक की योजना कर शिल्प में दोहरापन लाया गया है। 1960 के बाद लिखे गए ऐसे नाटकों में 'रक्तकमल', 'चतुर्भुज राक्षस', 'राम की लडाई', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'फंदी', 'आज नहीं कल', 'रस गंधर्व' आदि नाटक के भीतर नाटक वाले नाट्य शिल्प प्रयोग हैं। 'रक्तकमल' में एक ओर उदात्त नाटक है, 'फंदी' में नाटक के बीच में नाटक का शिल्प, 'एक सत्य हरिश्चंद्र में' नाटक की मूल कथा में हरिश्चंद्र की समानान्तर कथा है, 'दीवार' में नायक और निर्देशक का नाटक, 'एक और द्रोणाचार्य' में अरविन्द और द्रोणाचार्य का नाटक, 'नारद मोह' में आधुनिक जीवन का नाटक और 'रामलीला' तथा 'आज नहीं कल' में नाटक के भीतर नाटक साथ-साथ चलता है। शिल्प विधान का यह दुहरापन नए नाटकों की निजी उपलब्धि है।

1.5.11 आशु नाटक

आशु नाटक समकालीन परिस्थितियों से उद्भूत नयी नाट्य रचना शिल्प है। यह बहुत ही कम समय व कम रिहर्सल से तैयार किए जानेवाले छोटे नाटक है। इसे 'इंस्टेंट प्ले' भी कहते हैं। इस नाट्य प्रदर्शन के लिए कोई पूर्व तैयारी की ज़रूरत नहीं है। तत् अवसर

पर ही इसको ग्राह्य ढंग से संयोजित करके प्रस्तुत कर सकते हैं। ऐसे आशु नाटकों की प्रस्तुति के लिए आगरा के इप्टा नाट्य संस्था ने एक पूरावक्ति सांस्कृतिक दल बनाया था। किसान, मज़दूर व समाज के अन्य श्रमिक वर्गों के संगठनों के निमंत्रण पर लगातार नाटक करते आए हैं। सामान सदा बंधा ही रहता है। तत् संबंधी प्रदेशों के लोगों से मिलकर उनकी पूरी समस्याओं के बारे में जानकारी लेकर ऐसे नाटकों को प्रस्तुत करता है। फिर सभी प्रवीण कलाकार बैठकर नाटक का मोटा खाका तय कर लेते हैं। 1989 में लिखित राधाकृष्ण सहाय का 'खेल जारी खेल जारी' एक आशु नाटक है। ऐसे नाटकों का नामकरण तत् क्षण ही की जाती है। बोधगम्यता, सामूहिक अवबोध की सृष्टि, समयलाभ, शैक्षिक उद्देश्य, अन्याय के विरुद्ध बुलन्द आवाज़ देना आदि आशु नाटक की विशेषताएँ हैं।

1.5.12 वृत्त नाटक (डाक्टुमेंटरी प्ले)

वृत्त नाटक को तथ्य आधृत नाटक भी कहते हैं। "वृत्त नाटककार पत्रकारिता के तकनीक विधियाँ लेख बद्ध स्रोतों पर निर्भर करते हुए तत्कालीन इतिहास के स्थानापन्न रूप हाज़िल कर लेते हैं।"[1] यह केवल तथ्य पर आधारित नाटक होता है। यह नाटक शिक्षा एवं मनोरंजन उपयोगी तथ्यपरक सामग्री को रूप देता है और उनकी समीक्षा करता है। ललित सहगल का 'हत्या एक आकार की' (1968) मूलतः विचार प्रधान नाटक है। इसमें लेखक ने गाँधिजी की हत्या का षड्यंत्र करनेवाले हत्यारों के माध्यम से एक अपराधी के मनोविज्ञान को प्रस्तुत किया है। दयाप्रकाश सिन्हा का 'इतिहास चक्र' वृत्त नाटक है जिसमें एक-एक शब्द इतिहास के कठोर अविभाज्य तथ्यों पर आधारित है। यह नाटक इतिहास के कटु सत्यों का साक्षात्कार करता है। मुद्राराक्षस का 'योअर्स फेथफुली' एक वृत्त नाटक नहीं है,

---

1. डॉ. लीना बी.एल - मिथकीय नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 25

फिर भी एक डाक्युमेंटरी की तरह सरकारी भ्रष्ट यांत्रिक माहौल के तथ्य को प्रस्तुत करता है। बृजमोहन शाह का 'युद्धमन' तो तकनीकी दृष्टि से डाक्युमेंटरी शिल्प से नाटक शुरु होता है एवं इसमें रेडियो, रंगमंच और सिनेमा का मिश्रण है।

1.5.13 पार्श्व नाटक

हिन्दी नाट्य क्षेत्र में यह एक नितान्त नवीन प्रयोग है जो मौलिक एवं विशिष्ट है। इसमें संवाद से ज्यादा संकेतों का प्रयोग है लेकिन मूक नाटक नहीं। इसमें अभिनेता की अभिनय क्षमता और अनिवार्य स्थिति से कहीं ज्यादा बडी भूमिका है नेपथ्य की। इसमें मंच पर पात्रों द्वारा न संवाद बोले जाते हैं न स्थितियाँ दिखायी जाती है। सभी स्थितियों की सूचना नेपथ्य से आनेवाली विभिन्न ध्वनियों से और नेपथ्य से कही जानेवाली उक्तियों से होती है। सारे संघर्ष, द्वन्द्व, संत्रास, परिवर्तन आदि नेपथ्य की ध्वनियों, उक्तियों, नारी भाषणों और विविध प्रकार के स्वरों से साकार होता है। 'छतरियां' मोहन राकेश के पार्श्व नाटक का सक्षम उदाहरण है। "इस नाटक की प्रथम विशेषता भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं, कुछ भी नहीं।.... जीवन को छलता हुआ, जीवन से छला गया। कैसे जिऊं, कब तक जिऊं उगे कुकुरमुत्ते-सा?"[1] मोहन राकेस का नाटक 'छतरियां' कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टि से नया प्रयोग है।

1.5.14 बीज नाटक

मोहन राकेश के छोटे नाटक बीज नाटक के नाम से धर्मयुग में प्रकाशित हुए हैं। 'शायद' एवं 'हंः' उनके दो बीज नाटक है जिनमें भाषा, कथ्य, शिल्प का अधिक प्रौढ़ रूप

1. डॉ. लीना बी.एल - मिथकीय नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 26

देखने को मिलते हैं। समकालीन संत्रास को अपने लघुत्तम रूप में समेटने की शक्ति बीज नाटक में है। भाषा और संवाद में लघुता, कसावट और रेखांकन की प्रवृत्ति इसमें ज्यादा है। राकेश जी द्वारा शुरू किए ये नवीन प्रयोग का अंत भी उन्हीं के साथ ही हुआ है।

1.5.15 एक नाटक (मानोलोग)

एक नाटक में एक ही पात्र के एकालाप और अभिनय मुद्राओं का आश्रय लिया जाता है। एक ही पात्र बोलकर अपना विचार व्यक्त करते हैं और दूसरे पात्रों की भावना को भी अपने में व्यक्त करते हैं। समकालीन संदर्भ में इस विधा का अधिक प्रस्फुटन निर्मल वर्मा के नाटक 'तीन एकांत' के ज़रिए हुआ। पूरा नाटक अभिनय मुद्रा पर आश्रित है। 'रामबाण', 'सांप और वर', 'रुपया तुम्हें खा गया' आदि मोनोलोग शैली के नाटक हैं। विष्णु प्रभाकर ने चार रेडियो स्वगत नाट्यों की रचना की है। राकेश जी स्वगत को रंगमंच युक्त मानते हैं। 'आषाढ का एक दिन' में मल्लिका के स्वगत और कालिदास के एकालाप प्रभावशाली है। इस एकालाप शैली के नाटकों में निहित कथा तीव्र प्रभाव, चित्रमय भाषा आदि नहीं होनी चाहिए।

1.5.16 उद्देश्यपरक नाटक

उद्देश्यपरक नाटकों का लक्ष्य जीवन की किसी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना है। मानसिक तनाव या समस्याओं से एक स्थायी मुक्ति प्रदान करना ऐसे नाटकों का लक्ष्य रहा। इसका उद्देश्य ही तत्काल सुझाव देना या सुझाव को उजागर करना है। इसमें मुख्यतः साधारण पात्रों, संवादों का इस्तेमाल करता है। श्री विनोद शर्मा का 'खेल घर', डॉ. शंकर शेष का 'बाढ का पानी' एवं 'चंदन के दीप' उद्देश्य परक रचनाएँ है। समकालीन लगभग सभी नाटक तो उद्देश्यपरक ही है।

1.5.17 छाया नाटक

छाया नाटक को शाडो नाटक भी कहते हैं। एक महीन श्वेत पर्दे के पीछे लैंप या बिजली का प्रकाश फेंककर पुतलियों या कागज़ काटकर बनी आकृतियों से शाडो नाटक खेला जा सकता है। वर्तमान युग में छाया नाटकों में कठपुतलियाँ और आकृतियों की जगह आदमियों को रखा जाता है। छाया नाटक में कठपुतलियों के माध्यम से राम कथा और महाभारत से संबद्ध नाट्य का प्रभावशाली प्रदर्शन होता है।

1.5.18 स्वतंत्र नाटक

कुछ ऐसे नाटक होते हैं जो किसी भी वर्ग में समाहित होने से इनकार करते हैं। उन्हें स्वतंत्र नाटक कहते हैं। शैली की दृष्टि से यह एक नवीन मौलिक नाट्य शिल्प है। कर्तव्य, विकास, भाग्यचक्र, धूप छाँह आदि स्वतंत्र नाटक हैं।

1.5.19 सिने नाटक

चित्रपट पर सफलता स्थापित करने योग्य नाटकों को सिने नाटक कहा जाता है। सिनेमा के कुछ मनोरंजक साधनों को नाट्य कलेवर में सन्निवेश करके सिने नाटक को रूप दिया जाता है। सिने नाटकों में नाटकीयता के अधिक बोलबाला के बदले हर भाग में थोडे फिल्मी अंश रहना चाहिए। सिने नाटक तो नाटक का एक भिन्न रूप है। अनूदित नाटक 'आँसू', 'बन गए फूल' आदि हिन्दी में फिल्म के रूप में बन चुके हैं। सिने नाटकों को सफलता के लिए मूल नाटककार को चित्रपट निर्माताओं के साथ समझौता करना पडता है - "स्वतंत्र चित्रालेख प्रस्तुत करना लेखक के सम्मान के अनुकूल नहीं हो सकता।.... लेखक फिल्म निर्माताओं की दया का मुहताज बना रहेगा और धीरे-धीरे उनके स्वतंत्र

व्यक्तित्व का ह्रास हो जायेगा।"[1] ऐसा समझौता नाट्य साहित्य के लिए बाधा बनेगा। अतः इसे एक भिन्न कला रूप में स्वीकार करना ही उचित है। 'घरौंदा', 'दूरियाँ', 'पोस्टर', 'खजुराहो की शिल्पी' जैसे शेष जी के नाटकों पर फिल्में बनी है। फिल्मी पटकथा लेखन में डॉ. शेष को कई पुरस्कार भी मिले।

1.5.20 सडक नाटक

व्यवस्था के विरुद्ध लडने के लिए एक हथियार के रूप में सडक नाटक का प्रयोग किया जा सकता है। सडक नाटक गुरिल्ला युद्ध का साहित्यिक रूप है। सडक नाटक में समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की समस्याओं को उभारने की कोशिश की गयी है। श्री. विभुकुमार हिन्दी के प्रमुख सडक नाटककार है। गैर राजनीतिक विषयों एवं युवा पीढ़ी की समस्याओं को लेकर लिखे गए विशिष्ट सडक नाटक है - 'तमाशा', 'अभिमन्यु सडक पर', 'चाटवाला', 'अपरिभाषित' आदि। सामान्य जनता को जागृत करने का समर्थ माध्यम है सडक नाटक।

1.5.21 नृत्य नाट्य या बालै

नृत्य नाट्य में संपूर्ण नाटकीय कथा को नृत्य अभिनय या मूल संकेतों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। हमारे देश में नृत्य नाट्य या बालै जैसे कला-रूप का विकास आधुनिक यथार्थ की अनुभूति से संबद्ध हुए बिना समुचित नहीं हो सकता। नृत्य नाट्य के विकास के लिए हमारे देश में पर्याप्त साधन और आधार मौजूद है। उदयशंकर भट्ट भारतीय नृत्य-नाट्य का सबसे बडा सृष्टा है। भट्ट जी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता 'सामान्य क्षति'

---

1. डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - पृ.सं. 122

पर आधारित नृत्य नाट्य प्रस्तुत किया। नृत्य नाट्य के विकास, प्रयोग, प्रचार एवं प्रसार में अनेक नाट्य संस्थाओं का योगदान रहा है। त्रिवेणी कला संगम ने मणिपूरि नृत्य नाट्य 'हूँ पांवी' सिंहजीत सिंह के निर्देशन में प्रस्तुत किया। लिटिल बैले ट्रूप ने पैरिस के अंतर्राष्ट्रीय उत्सव में रामायण नृत्य नाट्य की प्रस्तुति की। भारतीय कला केन्द्र द्वारा सीतायन, भैरवी आदि नृत्यनाट्य प्रस्तुत किए। रूपमती, वाजबहापुर आदि नृत्य नाट्य भी प्रस्तुत किए।

1.5.22 संगीत नाटक (ऑपेरा)

यह नाट्य रूप पश्चिम से प्रभावित है। इसमें नाटक की भावाभिव्यक्ति, पात्रों का संघर्ष आदि केवल संगीत के माध्यम से प्रस्तुत होता है। संगीतकार लोक-धुनों के भंडार को अपनी कल्पना का स्पर्श देकर प्रयोग करते हैं। ऑपेरा के संबद्ध में नेमिचन्द जैन का विचार है "हम यथार्थवादी रंगमंच की स्थापना में उलझ रहे हैं कि अपने देश के परंपरागत संगीत प्रधान रंगमंच पर ध्यान नहीं अत रंगमंच की कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पायी।.... किन्तु अब इस दिशा में काफी प्रयास किए जा रहे हैं।"[1] अरेबियन नाईट्स की सुप्रसिद्ध कथा पर आधारित अलीबाबा (मोहित चटर्जी), सांत्वना निगम, एक सत्य हरिश्चन्द्र आदि संगीत नाटक है। यह अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वर एवं ताल का सहयोग लेता है।

1.5.23 अंकविहीन नाटक

अंकविहीन नाटकों में नाटक को अंकों में विभाजित नहीं किया जाता। संपूर्ण नाटक को एक ही दृश्य में दिखाया जाता है। इसमें अंक-दृश्य योजना का सामान्य रूप से तिरस्कार किया गया है। और इसमें साधारण व्यक्ति को नायक-नायिका का पद पर

---

1. नेमिचन्द्र जैन - दृश्य अदृश्य - पृ.सं. 124

प्रतिष्ठित किया गया। युद्ध, प्रेम, हत्या आदि का प्रयोग उन्मुक्त रूप से किए जाने लगे। 'दुलारी बाई', 'योअर्स फेथफुली', 'आज नहीं कल', 'अंधेरे के राही' आदि अंक विहीन नाटक है।

1.5.24 असंगत नाट्य परंपरा (एबसर्ड नाटक)

एबसर्ड नाटक का उद्भव पश्चिमी साहित्य से हुआ है। सैमुअल बैकेट के 'वेटिंग फोर गोदो' से एबसर्ड थिएटर का आरंभ होता है। भय, निराशा, कुंठा आदि व्यक्त करने के कारण इसमें नकारात्मक रूप अधिक है। "एबसर्ड एवं पारंपरिक नाटक के मुहावरे में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ पारंपरिक नाटक बाह्य विश्व का वस्तुनिष्ठ चित्रण करने का प्रयास करता था वही एबसर्ड नाट्य मनोदशाओं के रूपकों को मंच पर पेश करने की कोशिश करते हैं।"[1] हिन्दी रंगमंच पर असंगत नाटकों का अभिनय प्रदर्शन इलाहाबाद की नाट्य संस्था 'प्रयाण रंगमंग' से प्रारंभ हुआ। हिन्दी में असंगत नाटक संख्या में अधिक नहीं है। 'तीन अपाहिज', 'लोटन', 'कूडे का पीपा', 'ऊँची-नीची टाँगों का जाँघिया', 'तिलचट्टा', 'तेंदुआ', 'रसगंधर्व', 'देवयानी का कहना है', 'तीसरा हाथी', 'वामाचार', 'चारपाई', 'अजातघर', 'दर्पण', 'सूर्यमुख', 'कलकी', 'मिस्टर अभिमन्यु' आदि में एबसर्ड शैली के दर्शन होते हैं।

1.5.25 महिला नाटक

हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में महिला रचनाकारों तथा रंगकर्मियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नाट्य लेखन, अनुवाद, रूपान्तरण, नाट्यालोचन, अभिनय, निर्देशन, प्रकाशयोजना, संगीत योजना, नेपथ्य तथा नाट्य प्रशिक्षण में उन्होंने अपनी प्रतिभा

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 79

का परिचय दिया है। नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में आज महिला रचनाकारों ने मात्र अपनी उपस्थिति ही दर्ज नहीं करायी है बल्कि अपनी क्षमता को भी साबित करने में सफलता पायी है। महिलाओं ने वस्तु स्रोत के आधार पर ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक तथा राजनीतिक कथा की रचना की है। इन्होंने विभिन्न सामाजिक संवेदनाओं का अंकन नाटक में किया है। मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, शांति मेहरात्रा, गिरीश रस्तोगी, मीराकांत, नादिरा ज़हीर बब्बर, कुसुम कुमार, मृणाल पाण्डे आदि ने पूर्णांकी नाटकों की रचना की है। मंजुला गुप्ता, कुंथा जैन, सरोज बिसारिया आदि के गीती नाट्य तथा मृदुला बिहारी, ममता कालिया, संध्या जैन आदि के रेडियो नाटक चर्चित रहे हैं। सावित्री शंका, विमला लूथरा, शांति मेहरात्रा, कमालिनी मेहता आदि ने एकांकी विधा की श्रीवृद्धि की है। कुसुम कुमार, मीराकांत तथा त्रिपुरारी शर्मा ने नुक्कड नाटक के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

1.5.26 दलित नाटक

'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ है - दलन किया हुआ। इसके तहत वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसको सभी प्रकार के मानवाधिकारों से वंचित करके हाशियेकृत किया गया था। हिन्दी साहित्य में दलित जीवन पर आधारित अनेक नाटक लिख चुके हैं। श्रीमाताप्रसाद जी के 'धर्म के नाम धोखा', 'अछूत का बेटा', 'वीरांगना झलकारी बाई', 'प्रतिशोध', 'अन्तहीन बेडियाँ', 'धर्म परिवर्तन', एन.आर. सागर के 'मार्ग का कांटा', 'अंतिम अवरोध', मोहनदास नैमिशराय का 'अदालतनामा', सूरजपाल चौहान के 'सच कहनेवाला शूद्र है', 'छू नहीं सकता', सुशीला टाकभौरे के 'नंगा सत्य', 'रंग और व्यंग्य', ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'दे चेहरे' आदि महत्वपूर्ण दलित नाटक हैं।

1.5.27 आदिवासी नाटक

आदिवासी एक ऐसी विशिष्ट जनजाति है जो अन्य समुदायों की अपेक्षा पिछडी हुई एवं उपेक्षित है। 'भारतीय संस्कृति कोश' में आदिवासी शब्द की परिभाषा इस प्रकार है कि "नगर संस्कृति से दूर रहनेवाले मूलनिवासी एवं आर्य और द्रविड़ इन दो मानव समाज को छोड़कर उनसे भी पूर्व भारत या अन्य विदेश से भारत के पर्वत-पहाड़ियों, जंगलों में रहनेवाले वन्यजाति को आदिवासी कहा जाता है।"[1] अर्थात आदिवासी जंगल के मूल निवासी हैं जो प्रकृति से मिलजुलकर जीवन बिताते हैं। आदिवासी साहित्य आदिवासियों ने स्वयं भी लिखा है और उन लोगों ने भी लिखा है जिन्होंने इनके जीवन को करीब से देखा है, महसूस किया है। 1980 तक आते-आते हिन्दी नाट्य साहित्य में आदिवासी जीवन पर केन्द्रित रचनाएँ नज़र आने लगी है। उसमें आदिवासी तथा गैर आदिवासी लेखकों द्वारा रचित नाटक सम्मिलित हैं। आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे गए नाटक में सुनील कुमार 'सुमन' का 'एक बार फिर', घनस्याम सिंह भारी 'ग्यासा' का 'मोर्चा मनगढ़', रोज केरकट्टा का 'नुझडर डांड' आदि प्रमुख है। गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखे गए नाटक में हबीब तनवीर का 'हिरमा की अमर कहानी', शंकर शेष का 'पोस्टर', विभुकुमार का 'हवाओं का विद्रोह' आदि प्रमुख हैं।

1.5.28 व्यंग्य नाटक

स्वातंत्र्योत्तर काल में एक स्वतंत्र विधा के रूप में व्यंग्य का आविर्भाव हुआ। साहित्य के सभी क्षेत्रों में व्यंग्य एक शाश्वत तत्व है। समकालीन नाटककारों ने जीवन की

---

1. महादेव शास्त्री जोशी (सं) - भारतीय सांस्कृतिक कोश, खण्ड-1 - पृ.सं. 428

विसंगतियों तथा टूटते-बिखरते नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा अपनाया। साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में फैले विद्रूपताओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास भी व्यंग्य नाटक में निहित हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के 'पंच पुरुष', 'रक्तकमल', 'अब्दुल्ला दीवाना', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', 'सक्सेना का 'बकरी', 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ', 'मणि मधुकर का 'खोला पोलमपुर', 'बुलबुल सराय', कुसुम कुमार का 'ओम क्रांति-क्रांति', गिरीश रस्तोगी का 'रंगनाथ की वापसी' आदि व्यंग्य नाटकों की श्रेणी में उल्लेखनीय हैं।

1.5.29 फैटेंसी

नाटक में कल्पना तत्व का प्रयोग रहता है, जिसे फैटेंसी शैली का नाम दिया जाता हैं। डॉ. दशरथ ओझा ने "फैटेंसी को भाव नाट्य की संज्ञा"[1] दी है। लक्ष्मीनारायण लाल के 'व्यक्तिगत', 'मिस्टर अभिमन्यु', सुरेन्द्र कुमार तिवारी का 'एक और राजा', रामकुमार भ्रमर का 'भस्मासुर', मणि मधुकर का 'रस गंधर्व', 'बुलबुल सराय' आदि नाटकों में यह फैटेंसी तत्व दिखाई पडते हैं।

1.5.30 बाल नाटक

बच्चे कैसा साहित्य पसंद करते हैं उन्हें अधिक क्या पढ़ना अच्छा लगेगा आदि को ध्यान में रखकर बाल साहित्य का आविर्भाव हुआ है। बाल नाटक का लक्ष्य बच्चों के जीवन और समस्याओं को उसकी यथार्थता के साथ प्रस्तुत करना हैं। साथ ही बालकों को समसामयिक परिस्थितियों और बदलती सामाजिक स्थितियों पर आधारित विषयों का

---

1. डॉ. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास - पृ.सं. 385

परिचय देने का उद्देश्य भी बाल नाटक में निहित है। बाल नाटकों को अधिक विकसित करने में 'पराग' जैसी पात्रिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण है। कमलेश्वर के 'जेब खर्च', 'पिटारा', 'पैसों का पेड़', 'सच्ची दोस्ती', मस्तराम कपूर का 'बच्चों के नाटक', महेन्द्र भटनागर का 'बच्चों के रूपक', हबबि तनवीर का 'पंचरंगी' (संकलन), आत्मानंद के 'परी लोक', 'स्वर्ण कमल', 'खिलौनों के देश', 'मासूम', सुशील साधना का 'जयविजय', प्रेम प्रकाश बंदा का 'बीर स्काउट' आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

1.5.31 लघु नाटक

लघु नाटक एक नया शिल्प प्रयोग है। यह एकांकी से बड़ा तथा पूर्णांकी नाटकों से छोटा होता है। यह एक ऐसा प्रयोग है जिसमें देश में व्याप्त विसंगतियों व समस्याओं को कम समय में दर्शकों तक पहूँचाने का कार्य करता है। इसमें चरित्र योजना, घटना विन्यास, संवाद योजना आदि में काफी गंभीरता, सघनता एवं संगठन पायी जाती है। समकालीन संदर्भ में अनेक लघु नाटक हमारे सामने आए है जैसे - 'यक्ष प्रश्न', 'उत्तर उर्वशी', 'ओह अमेरिका', 'टूटते परिवेश', 'सगुन पंछी', 'आवाज़ आज नहीं कल', 'शंबूक की हत्या', 'एक और अजनबी', 'अब्दुल्ला दीवाना', 'घरौंदा', 'पैर तले की ज़मीन', 'दौपदी' आदि।

1.5.32 रेडियो नाटक

आज के इस इलक्ट्रोनिक युग में रेडियो जैसे संचार माध्यमों की लोकप्रियता सर्वविदित हैं। आज की सभ्यता में रेडियो मनोरंजन और जनसंपर्क का सर्वाधिक सुलभ माध्यम है। रेडियो माध्यम के ज़रिए आजकल अनेक साहित्यिक रचनाओं का प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। रेडियो में अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के नाटकों का प्रसारण होती रहती

है। चतुरसेन शास्त्री का 'राधाकृष्ण' प्रथम हिन्दी रेडियो नाटक है। सन साठ के बाद हिन्दी नाट्य साहित्य में शैली, शिल्प एवं कथ्य के आधार पर नवीन प्रयोग हुए, रेडियो नाटक पर भी इसका असर पडा। कई नगरों में रेडियो के केन्द्र खुलने के कारण अनेक नाटककार इस ओर प्रवृत्त हुए है। ओमप्रकाश शर्मा का 'अणु की अणुमा', रेवती शरण शर्मा का 'आरजू ही आरजू', गोपालदास का 'उनका भाई', मुद्राराक्षस का 'काला आदमी', 'काले सूरज की शवयात्रा', दयाप्रकाश सिन्हा का 'इतिहास चक्र', मृदुला गर्ग का 'एक ओर अजनबी' आदि नाटकों का रेडियो पर सफल प्रसारण हो चुके थे।

1.5.33 अनूदित-रूपान्तरित नाटक

नाटक का अनुवाद या रूपांतर एक दुष्कर कार्य है। क्योंकि नाटक का वास्तविक माध्यम रंगमंच है जो आलेख में भाषा के आवरण के भीतर छिपा रहता है। बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम भाषाओं के साथ-साथ फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज़ी, रूसी आदि विदेशी भाषाओं की श्रेष्ठतम कृतियों के अनुवाद हिन्दी नाटक और रंगमंच को नयी दिशा प्रदान किया। जैसे हेनरिक इब्सन के नाटक 'एन एनिमि ऑफ द पीपुल' का रूपांतर 'जनशत्रु', बर्तोल्त ब्रेख्त के 'मदर करेज' का अनुवाद 'दिलेर मां', श्रीकृष्ण चटर्जी के 'निषाद', प्रतिभा अग्रवाल ने वादल सरकार के बंगला नाटकों 'एवं इन्द्रजीत', 'बाकी इतिहास', 'सारी रात' आदि नाटकों का सफल अनुवाद भी कर चुके हैं। समकालीन रंगमंच की सबसे बडी देन यह है कि उसने भाषाई दीवारों को सच्चे अर्थों में तोडा है और हिन्दी रंगमंच पर विभिन्न भाषाओं के नाटकों को स्वीकारा जा चुका है। अनुवाद से ज्यादा आज रूपान्तरण की प्रक्रिया हिन्दी नाटक को नई मंजिले प्रदान करने में सक्रिय है। रूपान्तरण माने नाट्यरूपान्तरण और इसका विशद विवेचन-विश्लेषण ही मेरे इस शोध प्रबंध का मेरुदण्ड है।

1.6 रूपान्तरण

किसी एक रूप को दूसरे रूप में अन्तरित करना रूपान्तरण कहलाता है। यह किसी भी माध्यम से घटित किया जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में किसी एक साहित्यिक रूप को दूसरे साहित्यिक रूप में अन्तरण करना साहित्य का रूपान्तरण कहलाता है। “इसमें मूल सामग्री संक्षिप्त या विस्तृत, सरल या कठिन रूप में परिवर्तित (अर्थात् कहानी से नाटक, नाटक से कहानी आदि) होकर आती हैं। पात्रों के नाम, देशकाल या वातावरण आदि में परिवर्तन किये भी जाते हैं और नहीं भी।”[1] भारत में रूपान्तरण की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन रहती है। रामायण और महाभारत की कथाओं को नाट्य के रूप में अभिनय करते हुए प्रस्तुत किया जाता था। क्योंकि इस समय पढ़ना-लिखना हर कोई नहीं जानते थे। फिर भी रामायण तथा महाभारत की कथा सबको मालूम थी। “भारतीय परिप्रेक्ष्य में इतिहास और पुराणों के लेखन के बाद उनमें जो कथाएँ मिलती हैं उनके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता महसूस की गई, चाहे वह धार्मिक कारणों से ही क्यों न हो। इस आवश्यकता के कारण कहानी अथवा आख्यान के रूप में मिलनेवाली वस्तु को अनेक माध्यमों के द्वारा रूपायित करने की परंपरा का श्रीगणेश हो जाता है।”[2] जिन कथाओं का रूपान्तरण हुआ वे इस प्रकार हैं-

- पौराणिक आख्यानों का रूपान्तरण
- भक्ति साहित्य से लीलाओं का रूपान्तरण

(रामायण तथा महाभारत से)

---

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी - अनुवाद विज्ञान - पृ.सं. 26
2. डॉ. करण सिंह ऊटवाल - कहानी का रंगमंच और नाट्यरूपान्तरण - पृ.सं. 22

- लोक साहित्य के रूप में
- अन्य कथा रूप, लोक साहित्य रूप आदि।
- नवीन आविष्कारों के साथ (रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा) रूपान्तरण।

ये सभी रूपान्तरण मात्र हिन्दी में नहीं अपितु अन्य विभिन्न भाषाओं में हुए हैं। नाटक की व्यापकता के कारण ही साहित्य की अधिकतर विधाएँ नाटक रूप में ढ़ली है। लोक जीवन में नाटक का महत्व आज भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। साहित्य की सभी विधाओं को अपने में समेटने की क्षमता नाटक में निहित है। चाहे वेदों में निहित संदर्भ हो, चाहे आधुनिक काल के गद्य की अन्य विधाओं का साहित्य हो सभी को नाटक के रूप में ढाला जा सकता है। इसी के परिणाम है नाट्य रूपान्तर या नाट्यरूपान्तरण (Dramatisation)।

1.7 नाट्यरूपान्तर अथवा नाट्यरूपान्तरण

समकालीन दौर में नाट्य साहित्य के विभिन्न रूप हो गए हैं। बदलते परिवेश, परिवर्तित मूल्य एवं सभ्यता तथा संस्कृति के निरंतर विकास के कारण यह हो रहा है। इसके अतिरिक्त समय की मांग एवं युग की आवश्यकतानुसार भी नाट्य साहित्य के रूप में परिवर्तन आते हैं। ऐसा एक नवीन नाट्य रूप है नाट्यरूपान्तर। नाट्यरूपान्तर उतना ही प्राचीन है जितना कि साहित्य। लेकिन उसकी वास्तविक पहचान समकालीन संदर्भ में ही शुरू हुई है। दरअसल नाट्यरूपान्तरण साहित्य को और उसके द्वारा वांछित संदेश को प्रसार करने में सक्षम हैं। हिन्दी रंगमंच के आरंभिक दौर में जहाँ काव्य पाठ, कहानी के नाट्यपाठ आदि को महत्व दिया गया, वहीं रंगादोलन के आगमन में मुख्यतः कहानी और उपन्यासों के क्षेत्र में नाट्यांतरों की भीड़ आने लगी। प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं नाट्यनिर्देशिका डॉ. गिरीश रस्तोगी के अनुसार "नाट्यरूपान्तर न गौण वस्तु है, न द्वितीय-तृतीय स्तर की

चीज़। वह भी सृजन है - एक मौलिक कृति का पुनसृजन, इसलिए इसका तात्पर्य किसी बनी-बनायी रचना को केवल इस्तेमाल करना नहीं है - उस रचना में अन्तर्निहित दूरगामी संभावनाओं और कला एवं साहित्य के विलक्षण संबन्ध सूत्रों को तलाशना, पिरोना और नवीन सौन्दर्य बोध के साथ बडे समूह तक संप्रेषित करना है।"[1] अर्थात नाट्यरूपान्तर किसी दूसरी विधा की रचना को नाट्य रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। यह प्रयास कहानी, कविता, उपन्यास तथा कभी-कभी नाटक के साथ भी किया जाता है और यह पुनसृजन की नयी पद्धति है। "विषय वस्तु की जीवन्तता व्यक्ति को ज़्यादा आकर्षित करती है। किसी रचना को पढ़कर अथवा सुनकर ही मानकर कल्पना के ताने-बाने बुनने लगता है। उसके मानस पटल पर दृश्य घटनाएँ तथा पात्र जी उठते हैं। वह उनसे तारतम्य कर लेता हैं। उनसे नैकट्य की कल्पना कर कुछ समय के लिए उन्हीं के सुख-दुःख में रम जाता है। यदि उसी रचना को किसी भी माध्यम द्वारा जीवन्त रूप से देख ले तो जिस सुख की अनुभूति होगी वह अव्यक्त अवर्णनीय होगी। यही कार्य नाट्यरूपान्तरण के ज़रिए हुआ।"[2] यह एक ऐसा रूप है जिसमें श्रव्य जगत से ग्रहण किए तत्वों को दृश्य में बदल देते हैं। इस अनोखी साहित्य सर्जना से जन मानस आन्दोलित हो उठा।

किसी भी कृति को कहानी, उपन्यास या कविता को संवादबद्ध कर देना नाट्यरूपान्तर नहीं है। क्योंकि नाट्यरूपान्तरकार मूल कृति को मंचीयता के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करके कांट-छांटकर, शब्दों के स्थान पर रंग भाषा का उपयोग करके मंच पर प्रस्तुत करते हैं। कभी-कभी स्थिति को दर्शकों तक संप्रेषित करने के लिए नये ढंग से पूरे दृश्य या कथ्य को सोचकर बदलना भी पडता है।

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना - पृ.सं. 31
2. डॉ. यी.सी. गुप्ता - मीडिया लेखन और प्रिंट पत्रकारिता - पृ.सं. 67

छठें-सातवें दशक में कथा साहित्य रंगमंच का अभिन्न अंग बन गया। कथा साहित्य के नाट्यरूपान्तर और मंचनों को लेकर मुख्यतः दो प्रकार की स्थितियाँ उजागर हुई है एक उपन्यास या कहानी का सीधे-सीधे नाट्यरूपान्तरण अर्थात् "यह कोशिश कि यह रचना ज्यों की त्यों मंच पर पहूँचे अन्यथा उस विधा के साथ अन्याय होगा; दूसरा, उस कृति को मंच की एक नयी रचना के रूप में प्रस्तुत करना, नाट्यान्तरित करना। अर्थात् वह एक संपूर्ण स्वतंत्र रचना लगे।"[1] कथासाहित्य रंगमंच के माध्यम से भिन्न प्रकार के, हर आयु के, हर वर्ग के लोगों तक पहूँचता है। मंचन से पहले वे उस साहित्य से परिचित नहीं होते, लेकिन मंचन के बाद उन्हें बार-बार खोजकर पढना चाहते हैं।

1.8 नाट्यरूपान्तर का विकास

समकालीन दौर में साहित्य और कलाओं से जितनी अपेक्षाएँ बढ़ जाती है उतना ही उन पर नये सिरे से सोचने-विचारने और चिन्तन करने की क्षमता भी बढ जाती है। रंगकर्म की तीव्र गति, प्रयोगशीलता और उत्साह ने नवीन कृतियों, नवीन संभावनाओं की तलाश की। विभिन्न देशी-विदेशी कृतियों के अनुवाद और उनके नाट्यरूपान्तरों का सहारा लिया है। इसके संबद्ध में डॉ. जयदेव तनेजा का कथन है कि "जिस प्रकार जीवित प्राणी में आत्मा तथा देह का संबंध अभिन्न और अविभाज्य है, ठीक उसी प्रकार किसी भी जीवन्त रचना को बिना उसे हानि पहूँचाए, तोड़ा या बदला नहीं जा सकता। प्रत्येक रचना एक जैविक इकाई की तह गैस्टाल्ट में ही प्राणवान रहती है। फिर भी रचनाशील प्रतिभा हमेशा कुछ न कुछ नया करने की आतुरता में नित नवीन प्रयोगों की ओर उन्मुख होती रहती है। यही कारण है कि चार्वाकवादियों के देहान्तर की तरह हमारे रंगकर्मियों ने भी अन्य विधाओं

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 113

से नाट्यरूपान्तर के अनेक सफल-असफल प्रयास किए हैं।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार समय के बीतने पर समाज तथा परिस्थितियाँ बदल जाती है उसी प्रकार समाज का यह बदलाव संपूर्ण साहित्य और कलाओं में प्रत्यक्षतः प्रकट होने लगता है। प्रत्येक युग के साहित्यकार समाज, साहित्य और कलाओं में पिछले रूप से कुछ भिन्न होकर नयेपन को तलाशती रहती हैं। उनकी यह तलाश नाट्यरूपान्तरण जैसे नवीन पद्धति पर आकर खड़ी हो गयी।

रूपान्तरण की प्रक्रिया अनेक दशक पहले ही शुरू हुई थी। बंगला, मराठी, संस्कृत, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, गुजराती तथा विदेशी भाषाओं की प्रसिद्ध कृतियों के रूपान्तर एवं उनका रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण भी किया गया। इसके प्रभाव के तहत् आकर हिन्दी साहित्य के अनेक रंगकर्मी इस प्रवृत्ति की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को रंगमंच के अनुसार रूपान्तरित किया। समकालीन संदर्भ में इस कला को एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठा दी गयी है।

हर एक साहित्यिक विधा और हर एक कला का अपना एक निश्चित स्वरूप, शिल्प व सौन्दर्य होती हैं। यह भेद होने पर भी इन सारी विधाओं में कहीं न कहीं एक संबन्ध सूत्र रहता है जो एक दूसरे से परस्पर संबन्ध स्थापित करता है चाहे वह कहानी में हो, उपन्यास में हो या काव्य में। सातवें-आठवें दशक में हमारा हिन्दी रंगमंच संघर्ष और रचनात्मकता के उत्कर्ष पर था। नाटक और रंगमंच को लेकर नाटककार एवं निर्देशक के सामने अनेक चुनौतियाँ थीं और वे नये कला-बोध को तलाशते रहे थे। इसी तलाश ने अंत

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - साक्षात्कार - प्रो. तिभुवननाथ शुक्ल (सं), अंक 164, दिसंबर 2001 - पृ.सं. 80

में एक सक्रिय-संघर्षशील मनोवृत्ति एवं मौलिक रचनात्मक, जिज्ञासा के साथ नाट्यरूपान्तर को जन्म दिया। अर्थात हिन्दी में मौलिक नाटकों की कमी और हिन्दी रंगमंच के संघर्ष, सक्रियता, नवोत्साह को पूरा और जीवन्त करने के लिए गहरी रचनात्मक आकुलता के साथ नाट्यरूपान्तरों का आविर्भाव हुआ है।

वैसे तो पृथक-पृथक माध्यमों द्वारा साहित्यिक विधाओं के प्रस्तुतीकरण करने की प्रणाली है। आकाशवाणी, दूरदर्शन जैसे जनसंचार माध्यमों में अनेक कहानियों व उपन्यासों की प्रस्तुतीकरण प्रणाली प्रचलित हैं। आकाशवाणी के लिए नाट्यरूपान्तरण करने से पूर्व रेडियो की तकनीक को भी समझना ज़रूरी है। क्योंकि रेड़ियो अनिवार्य रूप से शब्द और ध्वनि का साधन है। रेडियो नाटक की संरचना के लिए कुछ प्रमुख तत्वों पर विशेष रूप से ध्यान देना पडता है; "वे है - कसी हुई कथावस्तु, संवाद, ध्वनि प्रभाव और संगीत। विषय वस्तु का चयन करते वक्त इस बात का विशेष ध्यान रहे कि उसमें नाटकीय प्रसंग हो, उसका कैनवास इतना बडा न हो कि उसे एक विशेष समय में समेटा न जा सके। कथा वस्तु में मर्मस्पर्शी प्रसंग हो और कथा प्रभावोत्पादक हो, वह लोगों की पसंद हो और उसमें बिना किसी ज़रूरत का विस्तार न हो।"[1] रंगमंच तथा दूरदर्शन आदि में रंग सज्जा, दृश्य बदलाव द्वारा नाटक को विस्तार दिया जाता है। साथ ही रंगमंच के तकनीकी पहलुओं एवं नाटकीय तत्वों की संपूर्ण जानकारी भी लेखक को होनी चाहिए।

समकालीन हिन्दी रंगमंच पर कहानी, कविता, उपन्यास, फिल्मालेख इत्यादि के नाट्यरूपान्तर गाहे-ब-गाहे पेश किया जाते रहे हैं, जो हिन्दी रंगमंच को विकसित एवं समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपन्यास को नाट्यान्तरित करना मूलतः अतीत को

---

1. डॉ. यू.सी. गुप्ता - मीडिया लेखन और प्रिंट पत्रकारिता - पृ.सं. 68

वर्तमान में और पाठ्य को दृश्य में परिवर्तित करने की कठिन प्रक्रिया है। डॉ. गिरीश रस्तोगी के अनुसार उपन्यास के नाट्यरूपान्तर करते समय नाट्यरूपान्तरकार को तिहरे दायित्व से जूझना पडता है - "एक उपन्यास की मूल आत्मा, लेखक के व्यक्तित्व, दृष्टिकोण तथा स्तर की रक्षा; दूसरे उस मूल आत्मा को नाट्य विधा का संश्लिष्ट, स्वाभाविक और उपन्यास के अनुकूल स्वरूप प्रदान करना; तीसरे नाट्य रूपान्तर करते समय दर्शक, अभिनेता आदि का ध्यान रखते हुए रंगमंच की सीमाओं, संभावनाओं, शर्तें, आवश्यकताओं आदि सभी के प्रति पूर्णतः सतर्क रहना।"[1] महाराष्ट्र के प्रसिद्ध लोक नाट्य रूप 'तमाशा' के कलाकारों के मंच और मंच के पीछे की जिन्दगी की विडंबना को मर्मस्पर्शी ढंग से प्रदर्शित करनेवाले रामकुमार भ्रमर के उपन्यास 'कांचघर' को स्वयं कथाकार ने ही 'तमाशा' शीर्षक से नाट्यांतरित किया। शिपपालगंज के बहाने सारे देश में फैली मौकापरस्ती, मक्कारी, चालाकी, मूल्यहीनता और बेईमानी का सच्ची तस्वीर को हास्य-व्यंग्य के अंदाज़ में पेश करते श्रीलाल शुक्ल के बहुचर्चित उपन्यास 'राग दरबारी' को गिरीश रस्तोगी ने 'रंगनाथ की वापसी' नाम से रंगमंचीय सूझ-बूझ के साथ रूपान्तरित किया। पंजाब के सिक्ख जाटों के दो परिवारों के बीच ज़र (औरत) और ज़मीन को लेकर चली आती पुश्तैनी दुश्मनी पर आधारित जगदीशचन्द्र के उपन्यास 'कभी न छोडे खेत' को विख्यात रंगकर्मी एम.के. रैना एवं अमिताभ श्रीवास्तव ने उसी नाम से नाट्यांतरित किया। प्रकाशित न होने के बावजूद केवल मंचन से ही व्यापक स्तर पर चर्चित हो जानेवाले रूपान्तरों में ब्रजमोहन शाह कृत कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' तथा रंजीत कपूर कृत चाणक्य सेन के 'मुख्यमंत्रि' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह बात सच है कि समकालीन

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंग परिकल्पना - पृ.सं. 38

रंगमंच ने संकलन त्रय और यथार्थवादी दृश्य-बंध की पारस्परिक कठिन सीमाओं से मुक्ति पाकर उपन्यासों के मंचावतार के रास्ते को आसान बना दिया है। इस प्रकार देखे तो आज हमारा हिन्दी रंगमंच अनेक देशी-विदेशी उपन्यासों के नाट्यरूपान्तरण प्रस्तुत करने में सफल स्थापित हो रहा है।

उपन्यास के समान 'कहानी का रंगमंच' भी आज बहुत सक्रिय है। कहानी का रंगमंच जैसी विधा ने कहानी को देखने के तत्व से जोड़कर बिल्कुल एक नए रंगानुभव को जन्म दिया। कहानियों का एक बहुत विशाल रचना जगत है जिसने रंगमंच को प्रेरित किया। पिछले तीस सालों से एक विधा के रूप में 'कहानी का रंगमंच' काफी प्रसिद्धि पा चुकी है। कहानी का रंगमंच से तात्पर्य कहानियों के नाट्यरूपान्तर तैयार करके उन्हें मंच पर प्रस्तुत करना नहीं; बल्कि कहानी को कहानी के ही रूप में मंच पर प्रस्तुत करने से हैं। कहानी का रंगमंच के विषय में निर्मल वर्मा ने कहा है "उन कहानियों को मंच पर लाने की समस्या नहीं है, जिन्हें निर्देशक अथवा रूपान्तरकार अपने ढंग से परिवर्तित-परिवर्धित करके नाट्य रूप दे देता है। कहानी जैसी लिखी है जैसी ही मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न सर्जनात्मक चुनौतियों से भरा है।"[1] नवोदित नाट्य निर्देशक देवेन्द्रराज अंकुर ने इस क्षेत्र में सक्रिय कार्य किया है। उनकी दृष्टि में कहानी का रंगमंच कुछ इस प्रकार हैं कि "मंच प्रस्तुति के दौरान एक निर्देशक के नाते यह बात शुरू से ही मेरे सामने साफ थी कि मुझे कहानियों के 'नाटकीय रूपान्तरण' की ओर नहीं बढ़ना वरन् कहानी के अपने मूल 'फार्म' में निहित कथ्य, शब्द और दृश्य को ही मंच पर स्थापित करना है। कहानी को सुनते हुए अथवा उससे भी आगे बढ़ते हुए श्रोता अथवा पाठक के सामने जो एक पूरा दृश्य जगत बनता चलता

---

1. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता - पृ.सं. 177

है, उसे मंच पर कैसे प्रस्तुत किया जाये।"[1] कहानी का रंगमंच अपने आप में एक सफल प्रयोग है। अंकुर जी से शुरू हुए इस नाट्य रूप में उनके किये निर्मल वर्मा के 'तीन एकान्त', कृष्ण बलदेव वैद की 'उसका बचपन' जैसी जटिल रचनाएँ भी बखूबी चर्चित रही हैं। प्रेमचन्द जी सैकडों कहानियों जैसे बडे भाई साहब, कफन, ईदगाह, सवा सेर गेहूँ, सद्‌गति आदि, कामतानाथ की 'संक्रमण', परसाई जी की 'इन्स्पेक्टर मातादीन चाँद पर', 'हम बिहार से चुनाव लड रहे हैं', विजयदान देथा की 'बडा भाँड़ तो बड़ा भाँड़', शर्मीला बोहरा की 'बूढ़ा चाँद', सत्यजित रे की 'असमंजस बाबू' और दारिया' फो की 'एक अकेली औरत' आदि कहानियों का मंचन भी काफी मक्बूल हुई हैं। यह संसार इतना बडा है कि कई सारी कहानियाँ मंचित हो चुकी है।

नाटक को काव्य भी कहा जाता था - 'काव्येषु नाटकम्‌ रम्यम्‌'। इसी का विकास आज कविता का रंगमंच के रूप में हुआ है। कहानी और उपन्यास के रंगमंच से सर्वथा भिन्न विधा कविता का रंगमंच है। समकालीन रंगमंच में सर्जनात्मक उल्लास एवं रंग-संभावनाओं के साथ कविता और रंगमंच का संबंध सामने आया। जो मुख्यतः दो रूपों में प्रकट होने लगा - एक कविता के नाटकीय पाठ के रूप में, दूसरे रंगमंच पर कविताओं की प्रस्तुति के रूप में। कविता रंगमंच का, रंग भाषा का, अभिनय का विस्तार करती है। "कविता के रंगमंच से तात्पर्य न तो मंच पर कविताओं के स्वर और मुद्राओं के साथ पाठ से है और न उस पर आधारित स्वतंत्र नाट्य रूपान्तर की प्रस्तुति से हैं। इसमें किसी कविता या कुछ कविताओं को मिलाकर विशिष्ट पार्श्व ध्वनियों, पात्रों की गतियों, मुद्राओं और उनके समूहों के द्वारा कविता में निहित आशयों को रंगमंचीय भाषा में मूर्त करने का

---

1. डॉ. करण सिंह ऊटवाल - कहानी का रंगमंच और नाट्यरूपान्तरण - पृ.सं. 67

प्रयास किया जाता है।"[1] नाटक में काव्य का प्रयोग किसी न किसी रूप में हमेशा ही होता रहा है। धूमिल, मैथिलीशरण गुप्त, भवानीप्रसाद मिश्र, मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती आदि प्रमुख कवियों की कविताओं का सफल मंचन हो चुका है।

नाट्यरूपान्तर की अगली कड़ी है आत्मकथा व जीवनीपरक कृतियों पर बने नाटकों का सिलसिला। जिसमें रणधीर द्वारा निर्देशित शरणकुमार लिंबाले जी की आत्मकथा 'अक्करमाशी' प्रमुख है। इसके अलावा मराठी की ही आत्मकथा उठाईगीर (उचल्या) पर अनामिका हक्सर की प्रस्तुति भी सराहनीय है। एम.एफ. हुसैन की जीवनी पर आधारित नादिरा बब्बर का नाटक 'पेन्सिल से ब्रश तक' भी पर्याप्त चर्चित रहा है। इस विधा में दो साहित्यकारों के जीवन पर आधारित प्रस्तुतियाँ मानक सिद्ध हुई है - विद्यापति के जीवन पर उषाकिरण खान लिखित संजय उपाध्याय निर्देशित 'उगना रे मोर मताय गेला' और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के जीवन पर प्रसन्ना लिखित - निर्देशित 'अनन्त राहे', संजय का 'नीलकण्ठ निराला' आदि। परन्तु सबसे बाज़ी मार लेनेवाला नाटक हुआ है 'बंगम अख्तर'। उनकी शिष्या गायिका नर्तकी रीटा गांगुली ने इसका मंचन किया है। अरुण पाण्डेय ने लोक कवि ईसुरी पर नाटक तैयार किया और उनके जीवन तथा काव्य को नाट्यमय ढंग से प्रस्तुत किया। इस श्रृंखला में सुरेन्द्र शर्मा द्वारा काफका के जीवन पर तैयार किया नाटक भी उल्लेख्य है। इसके अलावा गायक शेखर सेन ने कबीरदास, सूरदास और तुलसीदास के बाद विवेकानन्द पर संगीतमय एकल शोज़ किये। "साज़ के साथ बैठकर गाने से अलग मंच पर उस कवि की वेशभूषा में खडे हो गये। साज़ एक किनारे रख दिया गया और कविताओं के गायन के बीच-बीच में संवाद की तरह से जीवन बताने लगे। न नाटक का

---

1. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोजनधर्मिता - पृ.सं. 181

सोचा, न संगीत का। दोनों का एक-दूसरे के लिए इस्तेमाल किया और हिट हो गये। कलात्मक द्वन्द्व में पड़ते, तो टापते न! नहीं तो लाखों क्या, करोडों कमाया....। यह है पक्का इक्कीसवीं सदी का रंगमंच।"[1] काव्य के अलावा नाटकों के नाट्य रूपान्तर पर भी आज नवीन उपक्रम किये जा रहे हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी रंगमंच पर कहानी, उपन्यास तथा कविता आदि बहुविधा रूपान्तरों की भरमार रही है। आगामी अध्यायों में इस पर विस्तृत रूप से चर्चा की जाएगी।

1.9 नाटक में काल, स्थान और कार्य की अन्विति

नाटक में काल, स्थान तथा कार्य (संकलन त्रय) की एकता पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अरस्तू ने अपनी पुस्तक 'काव्यशास्त्र' में यूनानी नाट्य परंपरा के अध्ययन व विश्लेषण के संदर्भ में नाटक की संरचना में काल, स्थान और कार्य की अन्विति का उल्लेख किया था। देवेन्द्रराज अंकुर जी के शब्दों में "अपने सीधे अर्थों में हम इन तीनों अन्वितियों को इस रूप में परिभाषित करते आए हैं कि नाटक में मात्र एक दिन अर्थात् 24 घंटे में घटित होनेवाली घटनाओं का समावेश किया जाना चाहिए, पूरे नाटक में उसका घटनास्थल एक ही स्थान में केन्द्रित होना चाहिए और नाटक का सारा कार्य व्यापार एक ही कहानी के इर्द-गिर्द बुना जाना चाहिए।"[2] पश्चिम में यदि अरस्तू ने यह काम किया तो लगभग उसके समानान्तर हमारे यहाँ भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' के माध्यम से इस पर विचार किया है। भरत ने देशकाल की व्यवस्था पर स्वतंत्र रूप से विचार नहीं किया है। "भरत ने कथावस्तु के अंकों में विभाजन के संदर्भ में नाटक में देशकाल की

---

1. गोविन्द चातक - हिन्दी नाटक इतिहास के सोपान - पृ.सं. 72
2. देवेन्द्रराज अंकुर - पढते सुनते देखते - पृ.सं. 22

व्यवस्था पर विचार किया है। उनका स्पष्ट कथन है कि एक अंक में, एक ही दृश्य की योजना होनी चाहिए; और उसमें केवल एक दिन का घटना क्रम प्रदर्शित करना चाहिए। यदि एक अंक में, दिवसावसान पर निर्दिष्ट कार्य संपन्न नहीं होता तो किसी अर्थोपक्षेपक की अवधारणा कर देनी चाहिए और उसके द्वारा बचे हुए घटनाक्रम की जानकारी करा देनी चाहिए।"[1] इसमें कोई संदेह नहीं कि लगभग सभी नाटक इन तीनों अन्वितियों का निर्वाह करते रहते हैं

1.9.1 काल संकलन (Unity of time)

नाटक की दृष्टि से देखा जाए तो वहाँ काल से हमारा साक्षात्कार कई रूपों में होता है। सबसे दिलचस्प बात यह है कि नाटक की घटनाएँ और कथानक किसी भी काल से संबद्ध क्यों न हो, वह हमेशा वर्तमान में घटित होता है। इतना ही नहीं यह बात भी ध्यान देने लायक है कि बेशक नाटक वर्तमान काल में घटित हो रहा है तब भी उसमें भूतकाल और भविष्य एक साथ गूँथे हुए रहते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति से किसी भी काल और काल की विशेष स्थिति को रंगमंच पर दिखाना असंभव नहीं है।

1.9.2 स्थान संकलन (Unity of place)

संकलन त्रय सिद्धान्त का दूसरा महत्वपूर्ण अंग है स्थान संकलन। स्पेस यानी कि स्थान के कई रूप नाटक में देखे जा सकते हैं। "एक तो रंगमंच का अपना भूगोल - विंग्स, बॉर्डर, लाइट यानी भवन का अपना स्थापत्य। फिर परिवेश का स्पेस - नाटक जहाँ घटित हो रहा है। उस परिवेश में अभिनेता का अपना स्पेस जिसमें वह खास-खास क्षणों में उसी

---

1. डॉ. विश्वनाथ मिश्र - नाटक का रंग विधान - पृ.सं. 112

परिवेश में विशेष स्थानों में जाता है। इन सबके साथ-साथ दर्शक की कल्पना में उसका अपना स्पेस होता है।"[1] आधुनिक यथार्थवादी नाटकों में भी जहाँ कथानक पूरी तरह से एक स्थान पर कैद रहता है, वहाँ उसमें रहते हुए भी उसके बाहर जाने की संभावनाएँ हमेशा बनी रहती हैं। इस प्रकार स्थान या स्पेस के भी नए-नए आयाम खुलने लगते हैं।

1.8.3 कार्य संकलन (Unity of action)

नाटककार को नाटक में शुरू से अंत तक एक ही कार्य प्रस्तुत करनी चाहिए। अर्थात नाटक में ऐसी कोई भी घटना समाहित न की जाय जो प्रमुख घटना से संबंध न रखती हो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि नाटक में प्रासंगिक कथाओं का समावेश ही न किया जाय। एक ही नाटक में बहुत सारी कथाएँ और प्रसंग साथ-साथ चलते रहते हैं वे सब मिलकर अंततः मुख्य कथा धारा को ही आगे बढाती है। यदि नाटक में प्रासंगिक कथाएं समय-समय पर न आये तो नाटक में वैविध्यहीनता आ जाती है जिससे दर्शक ऊब जाते हैं। अन्य दो तत्वों की तुलना में कार्य संकलन के निर्वहण से नाटक की गति और प्रभावात्मकता अधिक बढ जाती है।

नाटक की संरचना में काल (Time), स्थान (Place) और कार्य (Action) की अन्विति सबसे महत्वपूर्ण है। यही नाटक को अन्य विधाओं से भिन्न बनाता है। इसलिए नाट्यरूपान्तर करते समय रूपान्तरकार को नाटक की इन तीनों अन्वितियों पर गहरी समझ होना ज़रूरी है। इसी के आधार पर मूल कृति की संवेदना को आरंभ से अंत तक सुरक्षित रखते हुए रूपान्तरकार को रूपान्तरण करना पडता है। इस दृष्टि से नाट्यरूपांतर

---

1. देवेन्द्रराज अंकुर - पढ़ते सुनते देखने - पृ.सं. 23

एक जटिल एवं मौलिक रचना प्रक्रिया है जो गंभीर दायित्व, चिंतन एवं कल्पना का परिणाम है।

1.10 मौलिकता का सवाल

समकालीन हिन्दी रंगमंच में नाट्यरूपान्तर पूरी तीव्रता के साथ उभरकर सामने आया है। लेकिन आजकल रूपान्तरण की प्रक्रिया को लेकर अनेक बहसें उठने लगी है। अथवा कहानी, उपन्यास और कविता के नाट्यान्तरों एवं उनके प्रयोगों व प्रदर्शनों के संदर्भ में दर्शकों, आलोचकों और रंगकर्मियों के मस्तिष्क में अनेक प्रश्न और प्रतिक्रियाएँ उठ खड़ी हुई है। साथ ही मूलकृति के रचनाकार तथा बाहरी हस्तक्षेप को लेकर भी अनेक सवाल उठे। प्रायः कथाकार के सामने समस्या अपनी रचना की मौलिकता में किसी अन्य को अनाधिकार प्रवेश न करने देने की है। क्योंकि अपनी रचना को किसी दूसरे द्वारा नये ढंग से प्रस्तुत करना रूपान्तरकार के लिए स्वीकार्य नहीं है। कभी-कभी रचनाकार को यह भी लगता है कि उसकी रचना को रूपान्तरित करके दूसरा व्यक्ति अधिक प्रसिद्धि पा जाता है। उनकी राय में स्वयं कहानीकार या उपन्यासकार ही अपनी रचना का अच्छा रूपान्तरण कर सकता है - दूसरा नहीं। क्योंकि वही अपना रचना को बेहतर और गहराई से समझ सकता है। किसी-किसी लेखक के साथ यह सही हो सकता है लेकिन हमेशा यह संभव नहीं है।

वास्तव में सवाल केवल नाटक बना लेने का नहीं, वरन् किसी भी रचना को नयी 'सृष्टि' के रूप में प्रस्तुत करने का है। इसलिए रूपान्तर करते समय रूपान्तरकार को कथाकार के कथ्य को, उसकी मूल संवेदना को आरंभ से अंत तक सुरक्षित रखना है। रंगमंच की शर्तें, निरन्तरता, आवश्यकता, संप्रेषणता आदि को ध्यान में रखकर रूपान्तरण करना पडता है। रूपान्तरण करते समय कुछ स्थल या दृश्य छोडना पडता है, कहीं कुछ

जोडना भी पडता है। "चाहे संकेत, चाहे व्यंजनाएँ अथवा शब्द, वाक्य या दृश्य भी (चाहे वह शाब्दिक हो, रंग भाषा द्वारा बुना गया) तो वह उस रचना को नष्ट करने के लिए नहीं - उसकी जीवन्त शक्ति को और ऊर्जा देने के लिए।"[1] उस पर हमारी या किसी की भी सहमति-असहमति होना स्वाभाविक है। लेकिन किसी भी रचना पर निरर्थक हस्तक्षेप और व्यर्थ की काट-छाँट आपत्तिजनक है। ऐसा करने से उस रचना की मौलिकता नष्ट हो सकती है।

यह तो सच है कि जो चीजे लिखने में बहुत सुन्दर है, ज़रूरी नहीं है कि प्रस्तुति में वे उसी तरह सुन्दर लगे। प्रेमचन्द जी का 'गोदान', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी की 'उसने कहा था' पर फिल्मे बनायी लेकिन असफल हुए। उनमें उन महत्वपूर्ण रचनाओं की आत्मा और जीवन-स्पन्दन को, दृश्यात्मकता को संवेदनात्मक ढंग से छुआ ही नहीं गया था। किन्तु भीष्म साहनी जी के 'तमस' तथा 'बसन्ती' उपन्यास पर एक सुन्दर धारावाहिक बनाया गया था। उसके पीछे उपन्यासकार - रूपान्तरकार एवं निर्देशक की आपसी समझदारी और संवेदनशीलता थी। इसलिए वह प्रयास सफल निकला। इस प्रकार देखें तो नाट्यरूपान्तर एक सफल सार्थक पद्धति है। रूपान्तरकार कृति को अपनी कल्पनाशीलता से आज के युग से, समय से, वर्तमान चेतना से जोड़कर एक भिन्न संकेत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इससे मूल रचना अधिक प्रभावशाली एवं सार्थक बन सकने में सक्षम हो जाती हैं। इस प्रकार देखें तो रूपान्तर की मौलिकता पर बहस करना निरर्थक हैं।

1.11 नाट्यरूपान्तर की प्रासंगिकता

समाज और साहित्य का घनिष्ठ संबन्ध है। समाज का प्रतिबिंब साहित्य में परिलक्षित होता है। नाटक एक ऐसी साहित्यक विधा है जिसमें सामाजिक जीवन को पूर्ण

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंग परिकल्पना - पृ.सं. 33

रूप से प्रभावित और प्रतिफलित करने की क्षमता है। दृश्य काव्य होने के कारण भावों और विचारों को सामाजिकों तक प्रेषणीय बनाने में नाटक सफल है। विभिन्न देशकाल के व्यक्तियों तथा परिस्थितियों की अवधारणा जितनी अच्छी तरह नाटक में की जा सकती है, साहित्य के किसी अन्य विधा में उतनी अच्छी तरह नहीं की जा सकती। लेकिन शक्तिशाली और व्यापक इलक्ट्रोनिक मीडिया के भयंकर आक्रमण ने नये नाटक और रंगमंच के सामने अनेक चुनौतियाँ उपस्थित कर दी हैं। परन्तु इस प्राचीनतम एवं प्रखर अभिव्यक्ति माध्यम ने नया रूप पाकर इस वर्तमान संकट को दूर किया है और नित नवीन एवं प्रभावशाली रूप पाकर अधिकाधिक प्रेषकों व पाठकों को अपने जादू से बाँध रखने में सफल भी हुआ है।

आज का युग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का है। आज के दिग्भ्रमित जीवन, मीडिया के आक्रमण और अप संस्कृति के चंगुल में फँसकर व्यस्त एवं यांत्रिक बनता आ रहा है। इस दौर में मानव को कुछ करने का समय नहीं है, कुछ पढने या पढाने का मौका नहीं मिलता है। नाटक मानव की इन खामियों को दूर करने के लिए सदा सक्षम है। "जब किसी देश या जाति की चेतना संक्रान्तिकाल से गुज़रती होती है, विचारधाराओं, मूल्यों या परंपराओं की टकराहटें तीखी होती हैं, तब नाट्य चेतना का एक नवोन्मेष होता है - चाहे वह हूणों से आक्रान्त कालिदास का भारत हो, चाहे पूर्व से प्रथम बार भरपूर टकराता हुआ शेक्सपियर का इंग्लैंड हो, चाहे युद्धोत्तर विघटन से ग्रस्त सार्त्र का फ्रांस हो।"[1] वह दर्शक को एक नये अनुभव लोक में ले जाता है। नाटक एक या दो घंटे तक सीमित रहनेवाला दृश्य-श्रव्य माध्यम हैं। व्यस्त मानव को नाट्य कला अपने समकालीन परिवेश में होनेवाले खोखलेपन के प्रति विचारवान बना देता है।

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - आधुनिक भारतीय रंगलोक - पृ.सं. 144

नाट्यरूपान्तरण की सफलता इस बात में है कि उसने रंगमंच के ज़रिए कहानी, उपन्यास, कविता आदि मंचेतर विधाओं को भी मंचन योग्य बना दिया है। जीवन के विराट तथा बहुरंगी चित्र प्रस्तुत करने में रूपान्तरण हमेशा विजयी निकलता है। "नाट्यरूपान्तर - चाहे वह उपन्यास का हो, चाहे कहानी, कविता का - को हम सहसा नकार नहीं सकते। अगर वह नितान्त मौलिक रचना नहीं है तो वह नितान्त गौण वस्तु भी नहीं है। वह भी 'रचना' है और उसकी भी अपनी शर्तें हैं।"[1] इस प्रकार देखें तो नाट्यरूपान्तरण साहित्य की सभी विधाओं को आम जनता तक पहूँचाने का एक बेहतरीन तरीका है, जो साहित्य के प्रसार में सक्षम हैं। साथ ही इसने नाट्य साहित्य को गतिमयता एवं लोकप्रियता प्रदान की है तथा प्रयोग-धर्मिता के नये द्वार खोले हैं।

1.12 हिन्दी के प्रमुख नाट्यरूपान्तरकार

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाता है कि नाटक के क्षेत्र में आज मौलिक नाटककार के साथ-साथ नाट्यरूपान्तरकार का भी अहम् भूमिका है। इन्होंने मौलिक नाट्य लेखन के साथ-साथ नाट्यरूपान्तरण तथा विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं से नाट्यानुवाद भी प्रस्तुत किए हैं। नाट्यरूपान्तरणों में बहुचर्चित उपन्यास, कहानी, कविता आदि को नाट्यरूप प्रदान दिया गया है। नाट्येतर साहित्य को इस प्रकार नाट्य रूप देने में अनेक नाट्यरूपान्तरकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जैसे देवेन्द्रराज अंकुर, प्रतिभा अग्रवाल, कुदसिया जैदी, गिरीश रस्तोगी, अमिताभ श्रीवास्तव, उषा गांगुली, नादिरा बब्बर आदि।

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंग परिकल्पना (भूमिका) - पृ.सं. 3

1.12.1 बेगम कुदसिया जैदी

कुदसिया जैदी का जन्म 23 दिसंबर 1924 में दिल्ली में हुआ। कुदसिया जैदी ने छात्रावस्था के दौरान ही लिखना शुरू किया। बच्चों के लिए उपयुक्त किताबों की कमी को दूर करने के लिए उन्होंने कलम उठाई और इमतियाज अलीताज की कहानियों पर 'चाचा छक्कन के कारनामे' नाम से नाट्य श्रृंखला की रचना की, जो बहुत लोकप्रिय हुई। धीरे-धीरे वह रंग जगत से अधिक जुडती गयी। सन् 1955 में उन्होंने दिल्ली में हिन्दुस्तानी थियेटर कंपनी की स्थापना की है। इस नाट्य दल के लिए उन्होंने कई नाटकों का अनुवाद और रूपान्तरण किया। सबसे पहले 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' को 'शकुन्तला' नाम से रूपान्तरित किया। बाद में शूद्रक के 'मृच्छकटिकम्' का उर्दू रूपान्तर 'मिट्टी की गाड़ी' नाम से किया। उनके नाटकों की सूची में मुद्राराक्षस और उत्तररामचरितम् के रूपान्तर भी शामिल है। उन्होंने एक ओर संस्कृत नाटकों के सहज रूपांतरों से रंग-जगत को समृद्ध किया, तो दूसरी ओर विदेशी नाटकों के अनुवाद से मंचीय नाटकों के अभाव की पूर्ति भी कर रहीं थी। उन्होंने बर्नार्ड शॉ के 'पिगमेलियन' को 'आजर का ख्वाब्' शीर्षक से और इब्सन के 'द डॉल्स हाउस' को 'गुडिया घर' शर्षक से अनूदित किया। इस प्रकार देखें तो कुदसिया जैदी का हिन्दी नाट्य जगत में महत्वपूर्ण योगदान है।

1.12.2 देवेन्द्रराज अंकुर

अंकुर जी का जन्म सन् 1948 में हरियाणा में हुआ। वे एक सफल रंगकर्मी थे, साथ ही 'कहानी का रंगमंच' नामक रंगप्रयोग के प्रणेता भी। अंकुर जी ने 1975 में निर्मल वर्मा की तीन कहानियों (धूप का एक टुकडा, डेढ़ इंच ऊपर, वीकएंड) को 'तीन एकांत' नाम से प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने अब तक देश-विदेश में लगभग चार

सौ कहानियाँ प्रस्तुत की हैं। जिसमें तीन एकांत (1975) और खानाबदोश (1993) जैसी प्रस्तुतियाँ आज भी यादगार हैं। कहानी के अलावा उन्होंने कई उपन्यासों का प्रदर्शन भी किया, जिनमें से महाभोज (1984), अनारो (1985), ऐ लड़की (1998) आदि काफी चर्चित हैं। हिन्दी के अलावा उर्दू, अंग्रेज़ी, ओडिया, कन्नड़, कुमाऊँनी, पंजाबी, बांगला, तमिल, मलयालम और तेलुगु आदि भाषाओं में इन्हीं भाषाओं की कहानियों और नाटकों को प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने रंगानुभवों को पहला रंग (1999), रंग कोलाज़ (2000), दर्शन-प्रदर्शन (2002), अंतरंग बहिरंग (2004) और रंगमंच का सौन्दर्य शास्त्र (2006) आदि पुस्तकों में समाहित किया है। साथ ही उनको मध्यप्रदेश सरकार का कालिदास सम्मान (2005), केन्द्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार (2003), साहित्य कला परिषद् (2002), हिन्दी अकादमी, दिल्ली (1999) और नेशनल प्रेस ऑफ इंडिया (1995) आदि के सम्मान भी प्राप्त हैं।

1.12.3 अमिताभ श्रीवास्तव

अमिताभ जी का जन्म 12 जुलाई सन् 1945 जबलपुर में हुआ। वे एक सफल अभिनेता, निर्देशक एवं रूपान्तरकार थे। वे हमेशा अनुवाद एवं रूपांतर में लगे रहे हैं। अमाल अल्लाना, देवेन्द्रराज अंकुर, एम.के. रैना, रजीत कपूर, सुभाष उद्गात, राजेन्द्र गुप्ता आदि निर्देशकों की प्रस्तुतियों में वे भाग लेते रहे हैं। उन्होंने मोलियर का 'द मौक डाक्टर', डोरियो फो का 'एक और दुर्घटना' तथा 'खाली जेबें बढ़ते दाम', ब्रेख्त का, तथा शेक्सपियर का 'द टेम्पेस्ट' आदि तेरह रूपान्तर किए हैं। कुछ रूपान्तर स्वतंत्र रूप से और कुछ एम.के. रैना तथा सुशील सिन्हा आदि के साथ मिलकर उन्होंने किया। एम. के रैना के साथ किए रूपान्तर में जगदीशचन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'कभी न छोडें खेत' का

नाट्यरूपान्तर सर्वाधिक चर्चित रहा है। इसके अलावा हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के जीवन पर आधारित नाटक 'सुभद्रा' को सन् 2005 में रैना जी ने अपनी संस्था प्रयोग की ओर से मंचित किया।

1.12.4 गिरीश रस्तोगी

प्रो. गिरीश रस्तोगी समकालीन हिन्दी साहित्य के प्रख्यात रंगकर्मी, निर्देशक, नाट्यालोचक एवं लेखिका है। उनका जन्म 12 जुलाई 1935 में बदायूँ में हुआ था। साहित्य चिन्तन, रंग-दृष्टि और रचनात्मक संवेदना का संतुलन उनकी मौलिकता है। एक रंगकर्मी होने के नाते उनकी नाट्य समीक्षा में रंगमंचीय परिवेश का समावेश हुआ है। लगभग एक दशक के अभिनय और रंगमंच अनुभव के बाद 1968 में गिरीश जी ने गोरखपुर में 'रूपान्तर' नाट्य मंच की स्थापना की। तभी से उनके रंगकर्म का वास्तविक प्रारंभ हुआ। "पूर्वांचल की संस्कृति और मनोभूमि नवीनता स्वीकार नहीं करती, जबकि नाट्यकर्म एक सतत गतिशील या नित्य नूतन कर्म है। गिरीश रस्तोगी को संभवतः पहला द्वन्द्व यही झेलना पड़ा होगा।"[1] साधनों का अभाव और नाटकों के प्रति उदासीनता के माहौल में कोई गंभीर रंगमंच का संचालन कठिन था। फिर भी गिरीश जी ने पूरे साहस और उत्साह के साथ एक पिछडे क्षेत्र में नाट्य चेतना का निर्माण किया। गिरीश जी के रंगकर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है बहुचर्चित उपन्यासों का नाट्यांतर एवं उनकी सफल प्रस्तुति। जैसे 'रागदरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (हज़ारीप्रसाद द्विवेदी), 'एक चिथडा सुख' (निर्मल वर्मा), 'छिन्नमस्ता' (प्रभा खेतान) आदि के नाट्यान्तर एवं

---

1. रामचन्द्र तिवारी - रंगमंच की संपूर्णता - एकांत श्रीवास्तव (सं) वागर्थ - अंक 50, 1999 - पृ.सं. 30

सफल मंचन करने का प्रयास उन्होंने किया। साथ ही 'परमात्मा का कुत्ता', 'परिन्दे', 'और अंत में प्रार्थना' जैसी कहानियों और 'नहुष' जैसे कविताओं का मंचन भी इसमें शामिल है। 'असुरक्षित' (1982), 'अपने हाथ बिकानी' (1989), 'मुझे मत मारो', आरंभ तथा अन्य रेडियो नाटक' आदि उनके मौलिक नाटक की कोटि में आते हैं। इसके अलावा उन्होंने 'हिन्दी कहानी : सिद्धान्त और विवेचन', 'आधुनिक हिन्दी नाटक', 'समकालीन हिन्दी नाटक की संघर्ष चेतना', 'नाटक तथा रंग परिकल्पना', 'रंगभाषा', 'बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच' जैसे अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों की सृष्टि भी की है। उनको 1990 के 'महादेवी वर्मा पुरस्कार', 1994 में 'सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार', 2004 में 'कलाभूषण सम्मान', 2006 में 'नागरिक सम्मान' तथा 'अवन्तीभाई सम्मान' भी प्राप्त हुए हैं।

1.12.5 प्रतिभा अग्रवाल

प्रतिभा अग्रवाल का जन्म 10 अगस्त सन् 1930 में वाराणसी में हुआ था। हिन्दी साहित्य जगत में कोशकार, जीवनीकार, लेखिका, संपादक, अभिनेत्री, निर्देशिका, अनुवादक, नाट्यरूपान्तरकार, गवेषक तथा संगठक के रूप में प्रतिभा जी का अपना विशिष्ट स्थान है। साहित्य एवं रंग गतिविधियों से लगाव उनको विरासत में मिला। बचपन से ही अभिनय के प्रति बडा लगाव था। सन् 1955 में 'अनामिका' की स्थापना हुई और उसी के संगठन-संचालन में सक्रिय रही तथा उसी के तत्वावधान में उन्होंने अभिनय किया। प्रतिभा जी की रचनाधर्मिता का एक महत्वपूर्ण कड़ी है नाटकों का अनुवाद एवं नाट्यरूपान्तर। उन्होंने बांगला, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेज़ी भाषाओं से अनुवाद-रूपान्तर किए हैं। जिसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'घरे बाहरे' का नाट्यांतर 'घर और बाहर', अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का नाट्यांतर 'नगरवधू', प्रेमचन्द की अमर कृति 'गोदान' का नाट्यांतर 'गोदान', फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' का नाट्यांतर 'मैला

आँचल', शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'देना-पावना', एस.एल. भैरप्पा का 'वंशवृक्ष' आदि प्रमुख हैं। उन्होंने भारतीय रंगकोश खंड 1 एवं 2 के संपादन भी किया और इसके अलावा 'हबीब तनवीर : एक रंग व्यक्तित्व', 'प्यारे हरिश्चंद्रजू', 'कहानी मदन बाबू की', 'मोहन राकेश' आदि ग्रन्थों का लेखन व संपादन भी किया है। इन्हें मध्य प्रदेश साहित्य परिषद् का 'पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी पुरस्कार', अनुवाद कार्य के लिए उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, भारतीय अनुवाद परिषद् नई दिल्ली द्वारा भी पुरस्कार प्राप्त हैं।

1.12.6 नादिरा ज़हीर बब्बर

नादिरा बब्बर का जन्म 20 जनवरी सन् 1948 में लखनऊ में हुआ था। एक सफल अभिनेत्री, निर्देशक, अनुवादक, रूपान्तरकार तथा मौलिक नाटककार के रूप में बब्बर जी ने रंग जगत में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। सन् 1981 में मुंबई में 'एकजुट' नामक दल की स्थापना की। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि "नाटक सोद्देश्य हो, प्रस्तुति चुस्त और अनुशासित हो तथा अभिनय सशक्त हो तो हर तरह की जनता को बाँधा जा सकता है और अच्छे नाटकों को दर्शकों के बड़े समुदाय तक पहूँचाया जा सकता है।"[1] उन्होंने 'एकजुट' की स्थापना के साथ अनेक देशी-विदेशी नाटकों का निर्देशन किया। इसके अलावा 'दिन ही तो है', 'सकुबाई', 'सुमन और सना', 'जैसी आपकी मर्ज़ी', 'ओपरेशन क्लाउडबस्टर्स' आदि नाटकों की रचना की। साथ ही साथ जावेद सिद्धिकी का 'बेगमजान', सुरेन्द्र गुलाटी का 'शबारा अनारकली' तथा धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया' को मिलाकर लिखे गए नाटक 'इतिहास तुम्हें ले गया कन्हैया' आदि का निर्देशन भी किया है। उन्हें अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए हैं - केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, महिला शिरोमणि पुरस्कार, यशभारती पुरस्कार आदि।

---

1. प्रतिभा अग्रवाल (सं) - भारतीय रंगकोश खंड-2, रंग व्यक्तित्व

1.12.7 चित्रा मुद्‌गल

चित्रा मुद्‌गल का जन्म 10 दिसंबर 1944 को उन्नाव में हुआ। साहित्य के प्रति उनके मन में गहरी रुचि थी। कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में उन्होंने साहित्य सृजन किया है। भारतीय जन-जीवन के कुशल कथाशिल्पी प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियों के नाट्यरूपान्तर चित्राजी ने प्रस्तुत किया है। एक ज़मीन अपनी, ऑवाँ जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास का सृजन भी उन्होंने किया है। उनको रेणु सम्मान, इन्दुशर्मा स्मृति पुरस्कार आदि से सम्मानित किया गया है।

1.12.8 उषा गांगुली

उषा गांगुली का जन्म 20 अगस्त सन् 1945 को जोधपुर, राजस्थान में हुआ था। वे एक सफल अभिनेत्री, रूपान्तरकार एवं परिकल्पक के रूप में साहित्य जगत में शोभित हैं। साथ ही उन्होंने संगीत एवं भरतनाट्यम की शिक्षा भी प्राप्त की है। सन् 1970 से लेकर उन्होंने बहुत सारे नाटकों में मुख्य भूमिकाओं में अभिनय किया जिनमें मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' में मल्लिका, शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य' में कृपी, शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में वसंतसेना विशेष उल्लेखनीय हैं। नाटक को आम दर्शक तक पहूँचाने की भावना से उषा गांगुली ने सन् 1976 में 'रंगकर्मी' नाट्य संस्था की स्थापना की। सन् 1984 में उन्होंने मन्नू भंडारी के नाटक 'महाभोज' का निर्देशन किया और करीब तीस पात्रोंवाले इस नाटक को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत करके उन्होंने अपने निर्देशकीय क्षमता को प्रतिष्ठित किया। इसके अलावा महाश्वेता देवी की कहानी 'रुदाली' (1993), बटौल्ट ब्रेख्त की 'हिम्मतमाई' (1998), शफात खान की 'शोभायात्रा' (2000), स्वरचित 'अंतर्यात्रा' (2002) तथा काशीनाथ सिंह की कहानी 'पांडे कुमति तोहे लागी' पर

आधारित नाटक 'काशीनामा' (2003) को प्रस्तुत किया। उन्हें अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं - जैसे, पश्चिम बंग सरकार का पुरस्कार (1981-82), क्रिटिक सर्कल ऑफ इंडिया अवार्ड (1982), तथा केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार (1998) आदि। इस प्रकार देखें तो एक कर्मठ एवं सशक्त रंग व्यक्तित्व के रूप में उषा गांगुली जी पूरे रंगकर्म में व रंग जगत में सुपरिचित हैं। रंगकर्म के प्रायः सभी पक्षों को प्रायः उन्होंने अपनी संवेदनशीलता से समृद्ध किया है।

1.12.9 अरुण पाण्डेय

पाण्डेय जी का जन्म सन् 1955 में बनारस में हुआ। अब तक उन्होंने तीस से अधिक नाटकों में अभिनय और 24 नाटकों का निर्देशन किया है। मध्य प्रदेश में बीस और पोर्ट ब्लेयर में एक नाट्य शिविर का संचालन भी उन्होंने किया है। उन्होंने ब.व. कारन्त, अलखनंदन, बंसी कौल, आलोपी वर्मा, आलोक चटर्जी जैसे प्रमुख हस्ताक्षरों के साथ कार्य किया। स्वः हरिशंकर परसाई की कहानियों के रूपान्तरण करने में उन्हें विशेष रुचि थी। इसके अलावा विजयदान देथा, अमृतराय, मुक्तिबोध, उदयप्रकाश जैसे प्रमुख कहानीकारों की कहानियों का रूपान्तरण भी वे कर चुके हैं। 'ईसुरी', 'भोले भडया', 'तुम निर्भय ज्यों सूर्य गगन में', 'मैं नर्क से बोल रहा हूँ', 'निठल्ले की डायरी', 'आखिर अब तक', 'चक्रव्यूह' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं।

1.12.10 मृणाल पाण्डे

26 फरवरी सन् 1946, टीकामगढ़ मध्य प्रदेश में मृणाल पाण्डे का जन्म हुआ। सुपरिचित उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार एवं पत्रकार मृणाल पाण्डे को साहित्य सृजन की प्रेरणा अपनी माँ कथाकार शिवानी से स्वाभाविक रूप में मिली है। आपके कई

कहानी संग्रह तथा उपन्यास प्रकाशित हैं। साथ ही उन्होंने पाँच नाटक एवं एक उपन्यास का नाट्यरूपान्तर भी किया है। 'मौजूदा हालत को देखते हुए', 'आदमी जो मछुआरा नहीं बना', 'जो राम रचि राखा', 'चोर निकल के भागा', 'मुक्तिकथा' आदि उनके महत्वपूर्ण नाटक हैं। 'जो रामरचि राखा' को स्वयं मृणाल जी ने अंग्रेज़ी में 'दैड व्हिच राम हैड आरडेन्ड' नाम से अनूदित किया। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'काजर की कोठरी' का उन्होंने इसी नाम से नाट्यरूपान्तर भी किया। इसके अलावा वामा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, हिन्दुस्तान दैनिक, कादंबिनी जैसी पत्रिकाओं के संपादक के रूप में भी वे अपनी कार्य क्षमता का परिचय दिया।

1.12.11 मीराकान्त

मीराकान्त का जन्म सन् 1958 में श्रीनगर में हुआ। लगभग दो दशक से उन्होंने निरन्तर साहित्य सृजन में सक्रिय हैं। 'हाइफन', 'कागज़ी बुर्ज' और 'गली दुल्हनवाली' आदि कहानी संग्रह; 'तत-किम्', 'उर्फ हिटलर' और 'एक कोई था कहीं नहीं सा' आदि उपन्यास; 'तुम क्या निर्वस्त्र करोगे मुझे?', 'ध से धूल कब साफ होगी' जैसी लंबी कविताओं का सृजन उन्होंने किया है। उनकी नाट्यकृतियाँ है - 'ईहामृग', 'कन्धे पर बैठा था शाप', 'नेपथ्य राग', 'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर', 'बहती व्यथा', 'सती सर', 'हुमा को उड़ जाने दो', 'अंत हाज़िर हो' आदि। इसके अलावा उन्होंने बहुचर्चित तथा अनेक भाषाओं में अनूदित यशपाल कृत 'दिव्या' उपन्यास को 'पुनरपि दिव्या' नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। साथ ही साथ 'तीन अकेले साथ-साथ' नाम से अपनी तीन कहानियों का एक एकल नाटक संग्रह का सृजन भी उन्होंने किया है। मीराकान्त जी को अनेक पुरस्कार भी प्राप्त हुए है - मोहन राकेश सम्मान, सेठ गोविन्द दास सम्मान, दिल्ली के साहित्यकार सम्मान आदि।

आज हिन्दी नाटक और रंगमंच पर नए नाटकों व प्रयोगों की आवश्यकता का बहुत तेज़ी से अनुभव किया जा रहा है। महान रंगकर्मियों के द्वारा रूपान्तरण की प्रक्रिया को नाटक का एक अंग बनाने या उसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने का अदम्य प्रयास किया जा रहा है। इस क्षेत्र में देवेन्द्रराज अंकुर, प्रतिभा अग्रवाल, गिरीश रस्तोगी, मीराकांत, एम.के. रैना, अमिताभ श्रीवास्तव, नादिरा ज़हीर बब्बर, मृणाल पाण्डे जैसे रूपान्तरकारों के नाम उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष

नाट्य विधा अन्य विधाओं से अति विशिष्ट है। वह एक सामूहिक प्रक्रिया है, एक समग्र चेतना है। पिछले दो दशक से हिन्दी रंगमंच अपनी अस्मिता के लिए, अपने अस्तित्व के लिए, अपनी अलग पहचान बनाने के लिए छटपटाता रहा है। उसकी यह तलाश एक ऐसे तत्व के लिए है जो अपना हो, पश्चिमी रंगमंच से अलग और विशिष्ट हो तथा आज के ज़माने के लिए प्रासंगिक हो। इसी तलाश का परिणाम है नाट्यरूपान्तर। दृश्य को श्रव्य में तथा पाठक वर्ग को दर्शक वर्ग में बदलने का कार्य नाट्यरूपान्तरण ने किया है। एक विधा को उसके तत्व से निकालकर दूसरे विधा तत्व में डालना कोई आसान कार्य नहीं है। फिर भी रूपान्तरकारों ने इस कार्य को बडी खूबी से वैविध्यपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है। नाट्यरूपान्तरण प्रणाली ने आज के युग में इतनी ज़्यादा ख्याति प्राप्त की है कि जनसाधारण की अभिरुचि साहित्य की ओर बढ़ी है। इसका विस्तृत विवेचन आगामी अध्यायों में विस्तार से किया जाएगा।

❖❖❖

दूसरा अध्याय

हिन्दी के नाट्यरूपान्तर- एक सामान्य परिचय

दूसरा अध्याय
हिन्दी के नाट्यरूपान्तर - एक सामान्य परिचय

2.1 समकालीन हिन्दी रंगमंच की प्रयोगशीलता

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। समय के साथ-साथ इसमें नवीन प्रयोगों का उपक्रम शुरु हुआ। इसके अंतर्गत विरासत में मिली रंग परंपराओं जैसे संस्कृत नाट्य परंपरा, लोक-नाट्य परंपरा तथा पाश्चात्य रंग परंपरा को आधार बनाकर नए-नए नाट्य प्रयोग किए जा रहे हैं। ये तीनों रंग परंपराएँ हिन्दी रंगमंच के लिए एक संपन्न दाय और स्रोत सिद्ध होती हैं। हिन्दी रंगमंच के उत्साही रंगकर्मियों ने इन तीनों रंग परंपराओं का मंथन करते हुए उन्हें एक नया रंग परिदृश्य प्रदान किया। फलस्वरूप नाटक को बंद प्रेक्षागृहों से निकालकर मुक्ताकाशी रंगमंच, लोक रंगमंच काव्यात्मक रंगमंच जैसे नवीन धरातलों और रंग शैलियों में तराशने लगा है। इसके अलावा जनपदीय भाषाओं और बोलियों में भी नाटक खेले गये। भवई, यक्षगान, काबुकी, तमाशा इत्यादि का नए संदर्भों या नए अर्थों में प्रयोग किये गये। प्रयोगों की इस विविधता के कारण समकालीन हिन्दी रंगमंच को 'प्रयोगशीलता का रंगमंच' कहा जाता है।

हिन्दी रंगमंच की इसी प्रयोगशीलता के अंतर्गत नाटकेतर विधाओं का मंचन एक महत्वपूर्ण प्रयोग रहा है। जिसके फलस्वरूप रंगमंच पर उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य रचनाएँ, डायरी, इत्यादि नाटकेतर विधाओं के सशक्त एवं प्रभावशाली मंचावतार हुए हैं।

वास्तव में बाहर से देखने पर आसान महसूस होनेवाली यह प्रक्रिया काफी दुष्कर है। किसी एक साहित्यिक विधा में गढे हुए विषय को नाटक के रूप में रूपान्तरित करके मंच पर लाना काफी श्रमसाध्य है। जैसे "जब कोई कला अनुभव सत्य को पूर्णता में पकड़ने के प्रयत्न में अपनी क्षमता को दूसरी कलाओं की मदद से विस्तार प्रदान करती है और अपनी सीमाओं को तोड़ती है, तो कुछ नई और विशिष्ट संभावनाएँ उजागर होती है। शायद इसी उद्देश्य को लेकर रंगमंच ने कहानी, उपन्यास और कविता के इलाकों में भी घुसना शुरू किया।"[1] यह एक ऐसा प्रयोग है जिससे रंगमंच और अन्य कलाओं के बीच गहरा रिश्ता पैदा हुआ है।

हर विधा की अपनी एक स्वाभावगत शिल्प, भाषा और बुनावट होती है। एक विधा को दूसरी विधा में रूपान्तरित करने के लिए उन दोनों विधाओं के मिज़ाज और संरचना की गहरी समझ होना ज़रूरी बात है। नाटक एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है जो कहानी, उपन्यास, कविता जैसी साहित्यिक विधाओं से बिल्कुल भिन्न है। क्योंकि कहानी, उपन्यास, कविता जैसी विधाएँ मुख्यतः पढने-सुनने की विधाएँ हैं। जबकि नाटक मंच पर प्रस्तुत होता है। वह मंचित होने के लिए ही रचा गया है न केवल पढ़ने के लिए। दूसरे रूप में कहे तो नाटक 'दृश्य' भी है और 'काव्य' भी। कला के हर तत्व में नाटक छिपा रहता है। "जिन्दगी खुद एक नाटक है। नाटक केवल नाटक में ही कैद नहीं होता, वह कला की हर विधा में शामिल रहता है। जब कोई नर्तकी अपनी विलक्षण कोरियोग्राफी से दूर माइथोलॉजी में पडे पात्रों को अपने हाव-भाव और नृत्य मुद्राओं में कैद करके मंच से पेश करती है, तो वह नाटक ही तो है। जब कोई चित्रकार कैनवास पर रंगों से एक अलग दुनिया रचता है, तो

---

1. वेदप्रकाश अरोडा (सं) - आजकल, अंक 8, दिसंबर 1980 - पृ.सं. 38

जिन्दगी का एक नाटक ही तो पेश कर रहा होता है। हर कहानी में, नॉवल में, कविता में, पेंटिंग में नाटक मौजूद रहता है।"[1] नाट्यरूपान्तरण प्रणाली ने कहानी, उपन्यास, कविता आदि में छिपे नाटकीय तत्व को पकड़कर उसमें दृश्यत्व की परिकल्पना कर दिया और उनके सफल मंचन के द्वारा आज एक नई दृश्य विधान का उपक्रम शुरू किया। इस उपक्रम के मुख्यतः तीन सोपान है-

- कहानी का रंगमंच
- उपन्यास का रंगमंच
- कविता का रंगमंच

इन तीन रंगमंचीय सोपानों का विस्तृत विवेचन करना इस अध्याय का अव्वल उद्देश्य है।

2.2 कहानी का रंगमंच

कहानी का रंगमंच समकालीन हिन्दी रंगमंच की प्रयोगशीलता के अंतर्गत सर्वाधिक चर्चित, प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण प्रयोग है। कहानी किसी घटना या स्थिति का वर्णन है, जिसमें वह वर्तमान में अतीत की सूचना बनती है। नाटक घटित हो रही, या होते रहने की, क्रिया की दृश्यात्मक प्रस्तुति है। कहानी मूलतः एकान्त में पढ़ने की विधा है तो नाटक समूह मन को संबोधित करता है। पाठक जब कहानी पढ़ता है तो कहानी में निहित बिम्ब उसके मन-मस्तिष्क में बनते चलते हैं - इन्हीं दृश्य-बिम्बों को रंगमंच पर साकार करना कहानी के रंगमंच का उद्देश्य रहा है। "कहानी के संवाद वर्णन और मौन की ध्वनियाँ परस्पर इस तरह

---

1. महेश आनंद (सं) - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 22

जुडी रहती हैं कि एक का अर्थ दूसरे से ही खुल पाता है। इन दो बिन्दुओं के बीच की प्रक्रिया से गुज़रते हुए अभिनेता ऐसे स्पेस को रचता है, जिसमें कहानी को उसकी उच्चतम संभावनाओं के साथ प्रस्तुत करने के अवसर मिलते हैं, और यहीं कहानी का रंगमंच बनता है, जिसमें कहानी के टेक्स्ट की सूक्ष्मतम ध्वनियाँ दृश्य में रूपायित होती हैं। यही रूप कहानी या नाटक से अलग एक नई रचना और नया कलात्मक अनुभव बनकर सामने आता है।"[1] कहानी के रंगमंच द्वारा कहानियों की सूक्ष्म और गहरी संवेदना को मार्मिकता के साथ मंच पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

देवेन्द्रराज अंकुर 'कहानी के रंगमंच' का सूत्रधार है, उन्होंने सन् 1975 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंगमंडल के साथ निर्मल वर्मा की 'धूप का एक टुकड़ा', 'डेढ़ इंच ऊपर' तथा 'वीकएंड' नामक एकपत्रीय एकालाप प्रधान तीन कहानियों को 'थ्री टेक्स्ट इन सोलीट्यूड' (Three texts in Solitude) अथवा 'तीन एकान्त' नाम से प्रस्तुत करते हुए रंगमंच के क्षेत्र में इस नए प्रयोग की शुरुआत की। प्रो. अंकुर जी नाटक और कहानी, इन दोनों विधाओं की भिन्नता को स्वीकारते हैं और कहानियों की मंचीय प्रस्तुति की प्रक्रिया को नाटक की मंचन प्रक्रिया से भिन्न मानते हैं। 'कहानी का रंगमंच' में कहानी के अपने शब्दों को ही मंच पर प्रस्तुत किया जाता है, न कि उसका नाट्यरूपान्तरण। सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में "इस रंगमंच की कृति में कहानी का नाट्य रूपान्तर नहीं किया जाता - कहानी के आलेख को ही नाट्यालेख मान लिया जाता है। कहानी में विशेष परिवर्तन भी नहीं किया जाता। कथा का क्रम-विन्यास नहीं बदला जाता, कथाकार का नैरेशन निकाला नहीं जाता, पर कभी-कभी उसमें सामान्य संपादन किया जाता है। मतलब यह कि कहानी को कहानी

1. महेश आनंद - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 15

के रूप में ही अभिनेता या अभिनेताओं के द्वारा प्रस्तुत कर दिया जाता है।"[1] यह बात ध्यातव्य है कि सब प्रकार की कहानियों को नहीं मंचित किया जाता। जिन कहानियों में नाटकीयता होती है, दर्शकों की रुचि बनाए रखने की क्षमता होती है, मार्मिकता होती है ऐसी कहानियों को ही मंचन के लिए चुना जाता है। निर्मल वर्मा के अनुसार "कहानी के मूल स्वभाव को विकृत किए बिना उसे मंच पर इस तरह प्रस्तुत किया जाए, जहाँ वह एक ही समय में नाटक का 'इल्यूज़न' दे सके और दूसरी ओर कहानी की आत्यन्तिक फार्म और लय को अक्षुण्ण रख सके। यहाँ समस्या कहानी के नाटकीय तत्वों को चुन-चुनकर स्टेज पर सजाना नहीं है, बल्कि उस समूची नाटकीय लय को मंच पर पुनर्जीवित करना है, जो कहानी के भीतर अदृश्य रूप से व्याप्त है।"[2] कहानी की इसी नाटकीय लय को 'पुनर्जीवित' करने के प्रयास में ही अंकुर जी ने कहानी सुनने-सुनाने, पढ़ने और उसके नाट्य-रूपान्तरण करने से सर्वथा अलग एक अभिनव प्रयोग की शुरुआत की। जिसमें कहानी की मूल आत्मा को नष्ट किये बिना उसे मंच पर ज्यों-का-त्यों देखा जाता है।

कहानी और रंगमंच का संबन्ध रंगमंच के अनुभव का एक नया आयाम है। कहानी की मौलिकता को नष्ट किए बिना उसका मंचन कहानी और रंगमंच के बीच का संवाद है। "कहानी पढ़ते समय पाठक जिस अनुभूति का साक्षात्कार करता है और सूक्ष्म रूप से छिपा हुआ जो दृश्य-संसार उसके सामने बनता संवरता है, उन दृश्यों को रचना के भीतर से तलाश करके मंच पर प्रदर्शित करने से ही कहानी के रंगमंच का रूप बनता है। एक पाठक जब कहानी को पढता या सुनता है, उसी समय कहानी के पाठ के समानांतर

1. सिद्धनाथ कुमार - नाटकालोचन के सिद्धान्त - पृ.सं. 40
2. निर्मल वर्मा - तीन एकान्त, भूमिका

वह कहानी के दृश्यात्मक रूप को भी देखता चले, इसी कल्पना को अंकुर ने इस रंग प्रयोग से साकार किया है।"[1] इस प्रकार कहानी के रंगमंच में कहानी की अन्तर्निहित संवेदना को पकड़कर दिखाने की चेष्टा की जाती है। अतः मंच पर प्रस्तुत होने पर कहानी 'और' ज्यादा संप्रेषणीय तथा प्रभावशाली बन जाती है।

प्रसिद्ध निर्देशक राजेन्द्रनाथ कहानी और नाटक को साहित्य की दो अलग-अलग विधाएँ मानते हुए भी दोनों में एक आंतरिक संबंध आत्मसात करते हैं। कहानी के रंगमंच से रंगमंच के विकास के संदर्भ में राजेन्द्रनाथ मानते हैं कि "रंगमंच तो अच्छे नाटकों से ही विकसित होगा। कहानी का रंगमंच इस दिशा में अपना योगदान कर सकता है। भविष्य में रंगमंच की दृष्टि से कहानी के रंगमंच का महत्वपूर्ण स्थान तभी संभव है, जब इस दिशा में और अच्छा काम हो तथा विभिन्न रंगकर्मी इसे रंगमंच पर लाने की कोशिश करे।"[2] उनका मानना है कि जिस तरह कोई नाटक रंगमंच की एक नयी परंपरा स्थापित करता है, उसी तरह कहानी का रंगमंच भी कुछ नयी रंग परंपराओं को अवश्य जन्म देगा। मुख्य बात यह है कि नाटक तो मंच पर प्रदर्शित करने के लिए ही लिखा जाता है। लेकिन कहानी पढ़ने के लिए लिखी जाती है। कहानी लिखते समय कोई भी लेखक यह नहीं सोचता कि यह कहानी मंच पर प्रस्तुत की जाएगी - अतः कहानी तो अपने मूल 'फार्म' में ही नाटक से अलग हो जाती है। कहानी का रंगमंच कहानी की इसी निजता को सुरक्षित रखते हुए उसकी नाटकीयता को जनसामान्य तक पहूँचाकर उसे पढाना-सुनाना-दिखाना और अनुभूत कराने का कार्य करता है।

---

1. महेश आनंद - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 114
2. राजेन्द्रनाथ - सारिका, वर्ष 1982 जुलाई, (सं) अवधनारायण सुद्गल - पृ.सं. 61

2.3 कहानी के रंगमंच का इतिहास

कहानी से तात्पर्य है किस्सा, कथा आदि। भारत में प्राचीनकाल से यानि कि वैदिक काल से ही कहानी सुनने-सुनाने की परंपरा विद्यमान रही है। आज भी हमारे घरों में सोने से पहले बच्चों को कहानी सुनाने की परंपरा न्यूनाधिक रूप में देखी जा सकती है। कहानी का जन्म मूलतः कहने और सुनने की परंपरा से हुआ है। संभवतः रंगमंच का जन्म भी कहानी सुनाने की परंपरा से ही जुडा हुआ है। बाद में कहानी सुनाने की इस परंपरा में अभिनय तत्व जुड गया। फलस्वरूप कहानी, सुनाने की प्रक्रिया से दिखाने की प्रक्रिया में परिवर्तित होती गई। कहानी मंचन के आदि सूत्र भारतीय रंगमंच के इतिहास में कथा वाचन, कथा गायन अथवा आख्यान की मौखिक परंपरा के रूप में ढूंढे जा सकते हैं। मध्ययुगीन लोकनाट्य परंपरा में 'किस्सा-गोई' का प्रचलन रहा है। इसके अलावा मुगल काल में मुगल बादशाह जहांगीर के समय 'किस्सा-ख्वाब' का वर्णन मिलना इस बात की पुष्टि करता है। वर्तमान समय में भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में कथावाचन की विभिन्न शैलियां प्रचलित हैं। जैसे मध्यप्रदेश में पाण्डवानी, महाराष्ट्र में कीर्तनिया, राजस्थान में बालपोश, बुन्देलखंड में आल्हा-ऊदल, पाबूजी का फड़, गुजरात में आख्या आदि। "हमारे देश में आदिकाल से ही कथागायन और कथावाचन की अनगिनत परंपराएँ चलती आ रही हैं और आज भी पांडवानी, बातपोश, आख्यान, कीर्तन, आल्हा-ऊदल, पाबूजी की पड़ और लाई हरोबा - देश के अलग-अलग प्रान्तों में कहीं एक दूसरे से मिलती-जुलती और कहीं एक दूसरे से बिल्कुल अलग कई ऐसी शैलियाँ और परंपराएँ मौजूद है।"[1] इन सभी शैलियों में नाटकीय तत्व एक ज़रूरी हिस्से के रूप में विद्यमान है। यह बात तो सच है कि कहानी के रंगमंच

---

1. देवेन्द्रराज अंकुर - रंग कोलाज़ - पृ.सं. 111

को इन सबका यानी कि इसमें से किसी एक का विकसित या परिष्कृत रूप कहा नहीं जा सकता। पारंपरिक रूप से इन सबका प्रभाव होते हुए भी उसका अपना एक विशिष्ट और स्वतंत्र अस्तित्व है।

छापाखाने के आविष्कार से पूर्व कहानी मौखिकता पर ही आधृत थी। यह कथा-वाचन का युग था। कहानी वाचन की इस शैली में नाटकीय तत्व स्वतः ही समाहित था। संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ पहले लेखन कला और बाद में कहानी लिखने की कला ने विकास पा लिया और कहानी के साथ एक नई तरह के रिश्ते की शुरुआत हुई। वह रिश्ता है एक पाठक के समान कहानी को अपने एकान्त में बैठकर चुपचाप पढना। इसमें दो बडे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ - "एक तो कहानी के सुनाने के साथ जो सामूहिकता और सामाजिकता जुड़ी हुई थी, वह धीरे-धीरे तिरोहित होती चली गई, दूसरे सुनाने में शब्दों की ध्वनियों का जो जादू समाहित था, उसका स्थान पाठक के हृदय में गूँजती मौन ध्वनियों ने ले लिया।"[1] कहानी की इसी मौन ध्वनियों को सामूहिकता के क्षेत्र में लाकर उसे एक समग्र अनुभव के रूप में बनाए रखने का प्रयास कहानी का रंगमंच का उद्देश्य रहा है। कहानी की मूल संरचना में परिवर्तन लाए बिना, उसकी रंगमंचीय प्रस्तुति आस्वादन के नए आयामों को जनम देती है। जिसके फलस्वरूप कहानी का अर्थ विस्तार होता है और वह नए रूप में जीवंत हो उठती है।

2.4 कहानी के रंगमंच की विशेषताएँ

हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में पिछले 20-30 सालों से एक नया शब्द, एक नया नाट्य रूप उभरा है वह है 'कहानी का रंगमंच'। इसमें कहानियों के अलग-अलग स्तरों को,

---

1. देवेन्द्रराज अंकुर - रंग कोलाज़ - पृ.सं. 111

अलग-अलग रूपों को पकडने की कोशिश की गई है। इस प्रयोग की दो-तीन बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। सबसे पहले तो यह है कि "कोई स्थूल, मोटी बात कहनेवाले, या चालू मुहावरे में चालू ढंग की बातें कहनेवाले नाटकों को खेलने की बजाय, अगर कहानियों का चुनाव किया जाता है तो श्रेष्ठ साहित्य का एक बडा क्षेत्र निर्देशक के सामने खुल जाता है। इससे ऐसी रचनाएँ सुलभ हो जाती हैं जो सचमुच जीवनी की गहरी समझ की, अनुभूति की, हमारे आज के यथार्थ की विडंबनाओं को घेरा करती हैं। उनको प्रस्तुत करके एक सार्थक अनुभव के नाटकीय रूप को लोगों तक पहूँचाया जा सकता है।"[1] कहानी के रंगमंच के विषय में निर्मल वर्मा ने ठीक ही कहा है : "उन कहानियों को मंच पर लाने की समस्या नहीं है, जिन्हें निर्देशक अथवा रूपान्तरकार अपने ढंग से परिवर्तित-परिवर्धित करके नाट्यरूप दे देता है। कहानी जैसी लिखी है वैसे ही मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न सर्जनात्मक चुनौतियों से भरा है।"[2] सन् 1975 से लेकर आज तक अनेक कहानिकारों की कहानियाँ मंच पर प्रस्तुत हुई है।

कहानी में विविधता की बहुत बडी गुंजाइश है। क्योंकि इसमें अलग-अलग कथ्य, शैली, भावुकता तथा अलग-अलग सामाजिक परिवेश पायी जाती हैं। ऐसी विविधता नाटक में बहुत कम ही मिलती हैं। कथाओं का जो विराट और विपुल साहित्य हमारे सामने हैं उसमें कथ्य का बड़ा विस्तार है। अक्सर हिन्दी में मौलिक नाटक कम होने की शिकायत रंगकर्मियों के बीच में रहती है और यदि नाटक हैं तो रंगकर्मी उन्हें मंचन के योग्य नहीं समझते। ऐसी स्थिति में कहानी के रंगमंच की सार्थकता इस बात में लक्षित है कि हिन्दी कथा साहित्य का विपुल भंडार रंगमंच के लिए खुल जाता है।

---

1. महेश आनंद - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 103
2. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता - पृ.सं. 177

कहानी के रंगमंच की एक और महत्वपूर्ण बात है कहानी का प्रस्तुतीकरण। कहानी के प्रस्तुतीकरण में सादगी की ज़रूरत है। सादगी भरी परिकल्पना ही कहानी मंचन की विशेषता है। यह अभिनेता को केन्द्र में लाने और उसकी ऊर्जा को विस्तार देने के लिए ज़रूरी है। "कह सकते हैं कि कहानी की प्रस्तुति संपूर्ण कहानी को संवाद बनाते हुए उसके कथ्य, निजी रूप, शब्द और उनसे उभरते संगीत एवं ध्वनियों के माध्यम से उसके श्रव्य की अभिव्यंजनात्मक संभावनाएँ पेश करती है; और ऐसा वह कहानी की शर्तों के अनुकूल उसके शब्दों को दृश्यों में ढालने की प्रक्रिया से गुज़रकर ही कर पाती है। ज़रूरी यह है कि कहानी सुनाने-दिखाने में इतनी कल्पनाशीलता हो कि दर्शक इस दृश्य जगत में अपनी कल्पना से कुछ अतिरिक्त जोड सके। इसी स्थिति में दर्शक उन सूत्रों को पा सकता है जो उसे कहानी के भीतरी संसार का हिस्सेदार बनाते हैं। इसी परिकल्पना में कहानी व्यतीत न रहकर वर्तमान को व्यंजित करनेवाली बनती है; और तभी कहानी की कई अमूर्त अथवा अनकही बातें दृश्यात्मक रूप में उभरती हैं, जो कहानी की अपेक्षा निर्देशक द्वारा दिखाई जानेवाली रचना (कहानी) के रूप में सामने आती है।"[1] कहानी में साधारणतः थोडे पात्र होते हैं, थोड़ी बातें होती है। उसको प्रस्तुत करने के लिए बडा आडंबर नहीं चाहिए थोडे से लोगों, थोडी सी चीज़ों से कहानी की प्रस्तुति हो जाती है। खास तौर पर रंगमंच के क्षेत्र में साधनों की समस्या बड़ी तीव्र है वहाँ कहानियों का प्रस्तुतीकरण एक बहुत बड़ी खूबी है। कहानी की प्रस्तुति में रंगोपकरण, संगीत आदि का आवश्यकतानुसार उपयोग किया जाता है।

कहानी मंचन में उसकी प्रस्तुति में प्रभावात्मकता एक अनिवार्य तत्व है। प्रस्तुति में प्रभाव के संबंध में अंकुर कहते हैं - "कुछ प्रबुद्ध प्रेक्षकों के अनुसार कहानियों की इन

1. महेश आनंद - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 133

प्रस्तुतियों को देखते हुए, न तो ऐसा लगता है कि हम नाटक देख रहे हैं, न ऐसा लगता है कि फिल्म देख रहे हैं। कहीं इन दोनों के बीच का एक उभरता हुआ माध्यम जैसा लगता है। कभी अनुभव होता है कि हम अभी पढ़ रहे हैं, या कि हम उसको सुन रहे हैं, और फिर साथ-साथ देख भी रहे हैं। कुल मिलाकर जब ये तीनों तरह के अनुभव एक साथ अनुभूत कर रहे होते हैं, तो यह एक ताज़ा, नया अनुभव होता है।"[1] कुछ दर्शक ऐसे भी हैं जो कहानी मंचन को नाटक नहीं मानते। भीष्म साहनी के शब्दों में, "जिस तरह सपाटबयानी कहानी का स्थान नहीं ले सकती, उसी तरह कहानी की प्रस्तुति भी नाटक का स्थान नहीं ले सकती, लेकिन अपने में एक अलग विधा के रूप में यह निश्चित ही विकसित हो सकती है। कहानी का प्रभाव भी बना रहे, और नाटकीयता का रस भी मिले।"[2] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना भी यही कहते हैं - "कहानी की प्रस्तुति नाटक नहीं है, बल्कि रंग-जगत की एक अलग गंभीर विधा है।"[3] ये विचार इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि हर प्रस्तुति माध्यम की साहित्य-विधा का अपना वैशिष्ट्य होता है। कहानी के रंगमंच को नाट्य से संबद्ध एक नई विधा के रूप में स्वीकृति मिल चुकी है।

2.5 अभिनेता की भूमिका

रंगमंच का, रंगकला का सबसे प्रमुख माध्यम अभिनेता है। अभिनेता ही रंगकला की संपूर्ण मौलिकता, नवीनता और रमणीयता का आधार है। रंगकला की सीमाएँ और उसका अनूठापन सब अभिनेता पर निर्भर है। हमारी भारतीय रंगपरंपरा चाहे वह लोकधर्मी हो या शास्त्रीय दोनों में सारा विधान अभिनेता से जुडा है।

---

1. महेश आनंद (सं) - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 32
2. भीष्म साहनी - कहानी का रंगमंच (सं) - महेश आनंद - पृ.सं. 31
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - " - पृ.सं. 123

कहानी के रंगमंच की सफलता का आधार कुशल अभिनय है। कहानी जैसे नैरेटिव माध्यम की निजता को सुरक्षित रखने के लिए अभिनेता की भूमिका एक अनिवार्य शर्त है। "कहानी किस प्रकार अपने मूल रूप को सुरक्षित रखते हुए भी एक नितान्त नया रंगमंचीय अनुभव, एक दृश्यकाव्य बन जाती है - यह इस मंच की चुनौती है? यहाँ न सूत्रधार है, न कोरस, न कथागायक बल्कि अभिनेता ही अपनी उपस्थिति का, नैरेशन का, चरित्रों का आभास देते रहते हैं। मुख्यतः उनकी उपस्थिति लगातार मंच पर अभिनेता की ही उपस्थिति है।"[1] अभिनेता मात्र वाचन नहीं करता, वह अभिनय करता है, दर्शकों से संवाद करता है और बीच-बीच में टिप्पणी भी करता है। अभिनेता ही कहानी को शब्द, ध्वनि, बिंब, लय तथा मुद्राओं से प्रत्यक्ष करता है। वही उसमें ताज़गी और मौलिकता ला सकता है।

कहानी मंचन में अभिनेता की भूमिका किसी मौलिक नाटक से सर्वथा भिन्न है। क्योंकि नाटक में अभिनेता के पास बनी-बनाई स्थिति है, उनकी भूमिका भी निश्चित होती है और शब्दों व संवादों के ज़रिए बनाई गई स्थिति से वह गुज़रता है। किन्तु कहानी के रंगमंच में अभिनेता की भूमिका नाटक के अभिनेता से बिल्कुल भिन्न और विशिष्ट हो जाती है। कहानी की वही प्रस्तुति सफल कही जा सकती है जिसमें अभिनेता एकसाथ कहानी को पढ़ता भी है और उसमें निहित चरित्रों को जीकर दिखाता भी है। कहानी में निहित वर्णनात्मक अंश को सुनाते-सुनाते वह उस स्थिति को भोगनेवाले चरित्र या पात्र में स्थानांतरित हो जाता है। एक ही अभिनेता द्वारा दुहरी-तिहरी भूमिकाओं के निर्वाह करने से कहानी के मंचन में दो-तीन अभिनेताओं से काम चल जाता है। कहानी के मंचन के दौरान

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 126-127

अभिनेता और दर्शक के मध्य चार घटनाएँ घटित होती हैं - कहानी का पढ़ना, सुनना, करना और देखना। कहानी के मंचन में एक ही अभिनेता द्वारा सूत्रधार - वाचक - चरित्र और लेखक की भूमिका निभायी जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि कहानी का रंगमंच का प्राण अभिनेता, उसकी मौलिकता, अभिनय क्षमता में लगातार विकास आदि है।

कहानी के मंचन में अभिनेता आरंभ से लेकर अंत तक अभिनेता ही रहता है, उसे चरित्र बनने की ज़रूरत नहीं पडती। यदि उसे चरित्र की भूमिका में उतरना पड़ता है तो वहाँ भी उसे चरित्र बनना नहीं, वरन् बनकर दिखाना पडता है। अर्थात वह स्वयं कोई चरित्र नहीं हो जाता बल्कि उस चरित्र को दिखाता या प्रस्तुत मात्र करता है। देवेन्द्रराज अंकुर जी के शब्दों में "कहानी के आलेख से लेकर उसकी रंगमंचीय प्रस्तुति तक की यात्रा मेरे लिए एक उन्मुक्त यात्रा के समान है - लगभग एक खाली मंच, मंच पर उनके पास कहानी का आलेख, जिसे उन्होंने पहले से कंठस्थ कर लिया है और अभिकल्पना इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा अनुभव है, जिसमें अभिनेता कभी कहानी का पाठ करता है, कभी वाचन करता है, कभी अभिनंदन करता है और इस तरह कहानी में अन्तर्निहित रंगमंचीय संसार हमारी आँखों के सामने जीवंत हो उठता है। इस प्रकार यह अनुभव कहानी को पढ़ने, सुनने के साथ-साथ देखने के अनुभव में परिवर्तित हो जाता है।"[1] कहानी के मंचन में अभिनेता वर्णनकार है, व्याख्याकार है, टिप्पणीकार है, पाठक, दर्शक और श्रोता है और अंततः आवश्यकता पडने पर एक चरित्र भी है।

कहानी के रंगमंच में प्रदर्शन-शैली की सादगी, अभिनेता की प्रतिभा, निर्देशक की कल्पनाशीलता तथा दर्शक की जागरूकता एक बुनियादी शर्त बन गई है। इस कथा मंच

---

1. महेश आनंद - कहानी का रंगमंच - पृ.सं. 151

रूप से प्रत्यक्षतः जुडी निर्देशिका एवं समालोचिका डॉ. गिरीश रस्तोगी के शब्दों में, "इस कार्य में निर्देशक तथा अभिनेता को कई खतरे एक साथ झेलने पडते हैं। एक तो मूल कहानी के मर्म को, मूड को, उसकी आंतरिक लय और संवेदना को पूरी तरह पकड़ पाना; दूसरे इस मूड़, लय और संवेदना को कहानी के ही मूल फार्म में लाकर दर्शकों तक कहानी की निजता के साथ संप्रेषित करना; तीसरे संप्रेषण की समस्या से जूझते हुए कहानी को दृश्यात्मक बिंबों द्वारा प्रस्तुत करना, यह प्रस्तुति ही जटिल कार्य है, जिसमें कहानी के कहानीपन को भी बनाए रखना है और मंच की वस्तु भी। अभिनेताओं को भी कहानी में आए वर्णनात्मक अंशों को, आत्म-विश्लेषणों को पढने-पढ़ाने अनुभव करने-कराने की स्थितियों को प्रस्तुत करने के लिए चुनौती का सामना करना पड़ता है। कहानी के रंगमंच के स्वरूप में कम से कम सामान के साथ सादगी वाला मंच, प्रकाश-परिकल्पना से अपनी स्थितियाँ, मूड और वातावरण तथा पार्श्वध्वनियाँ ही इसकी अपेक्षाएँ हैं। अभिनेताओं के कथन-पाठन, शारीरिक क्रियाओं, मुद्राओं, गतियों के संचालन से कहानी की आवश्यकता के अनुकूल ग्रहण की गई लय और उस लय के उतार चढ़ाव से ही कहानी का अनुभव कराना इसकी विशेषता है।"[1] संक्षेप में कहानी के मंचन में अभिनेता और निर्देशक दोनों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है।

2.6 प्रमुख कहानियाँ और उनके नाट्यरूपान्तर

आज हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में कहानियों का मंचन बडे सशक्त रूप से हो रहा है। जिसमें वरिष्ठ कहानीकारों से लेकर नई पीढी के कहानीकारों तक की कहानियों को मंच पर लाया जा रहा है। हिन्दी के महान कथाकार प्रेमचन्द जी की कई कहानियाँ रंगमंच,

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 103

धारावाहिकों, फिल्म, दूरदर्शन पर आ चुकी हैं। खासकर रंगमंच पर तो शायद ही उनकी कोई कहानी बची हो। जयशंकर प्रसाद के नाटक अनभिनेय कहे जाते थे, पर उनकी 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'गुण्डा', 'मधुआ' जैसी क्लासिक कहानियों के मंचन हुए हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के तीसरा अध्याय में प्रेमचन्द जी की 'मंत्र', 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'बेटोंवाली विधवा', 'गुल्ली डंडा', 'जुलूस', 'विध्वंस', 'यह मेरी मातृभूमि है', 'सवा सेर गेहूँ', 'दूध का दाम', 'सद्‌गति', 'ईदगाह', 'निमंत्रण'; भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'झूमर', 'झुटपुटा', 'कण्डहार', 'सागमीट', 'निमित्त', 'खिलौने', 'मकबरा शाह शेर अली', 'खून का रिश्ता'; स्वदेश दीपक की 'बाल भगवान'; उदय प्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना' जैसे विभिन्न कहानियों के नाट्यरूपान्तरों पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है। इनके अलावा जिन जिन कहानियों के नाट्यरूपान्तर मिले है उनका थोडा सा परिचय आगे प्रस्तुत है।

2.6.1 तीन एकान्त - देवेन्द्र राज अंकुर

सन् 1975 में डॉ. देवेन्द्रराज अंकुर जी ने निर्मल वर्मा की तीन कहानियाँ - 'धूप का एक टुकडा', 'ड़ेढ इंच ऊपर' तथा 'वीकएंड' नामक एकपात्रीय एकालाप प्रधान तीन कहानियों को 'थ्री टैक्स्ट इन सोलीट्यूड' अथवा 'तीन एकान्त' नाम से प्रस्तुत किया। इनसान की जिन्दगी में अकेलेपन के न जाने कितने पहलू और रूप-रंग छिपे होते हैं इसका सटीक चित्रण इस कहानियों में निहित है। "शायद यही वजह है कि निर्मल वर्मा अपने माज़ी के भँवर में फँसकर लगातार चक्कर काटते और खुद से लंबे एकालाप में बातचीत करते - 'धूप का एक टुकड़ा', 'डेढ़ इंच ऊपर' तथा 'वीकएंड' के किरदारों को कहानी के रूप में पेश करते हैं। और यही वजह है कि उन्हें मंच पर प्रस्तुत करने के लिए पहली बार

निर्देशक देवेन्द्रराज को इनके 'नाटकीय रूपान्तरण' या 'कथा-पाठन' के पुराने तरीकों से अलग हटकर कहानी के रंगमंच का प्रयोग करना पड़ा था।"[1] तीनों कहानियों के चरित्र और उनका परिवेश हिन्दुस्तान से बाहर के हैं। बीते कल की छाया में अकेले भटकते इन कहानियों के पात्र प्यार, चुनाव, दुःख, हादसे, अकेलेपन, मौत तथा औरत मर्द के अजीबोगरीब रिश्तों की अस्तित्ववादी शैली में गहरी छानबीन करते हैं। किसी भी दूसरे चरित्र के बिना अकेले, कहानी के पूरे अनुभव को एकल अभिनय के द्वारा मंच पर जीवन्त रूप से प्रस्तुत करना मुश्किल काम था। यहाँ विविध स्थानों के लिए प्रकाश और दृश्यों के लिए ध्वनियों का रचनात्मक इस्तेमाल किया गया।

2.6.2 पीले पत्तों का तीसरा दिन - देवेन्द्रराज अंकुर

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त भीष्म साहनी जी की तीन कहानियों को डॉ. देवेन्द्रराज अंकुर जी ने 'पीले पत्तों का तीसरा दिन' नाम से मंचित किया। इस सिलसिले की पहली कहानी थी 'माता-विमाता', दूसरी 'यादें' और तीसरी 'चीफ की दावत'। निर्देशक अंकुर जी के अनुसार "इसके एक साथ आ जुडने का पहला कारण कथ्य एवं फार्म की समानता है। इसके भी आगे ये तीनों कहानियाँ बूढ़ों के प्रति प्रतिक्रिया के क्षणों को रेखांकित करने का एक लंबा सिलसिला हैं।"[2] इसमें 'माता-विमाता' और 'यादें' दोनों कहानियाँ छोटी-छोटी और कार्य व्यापार वैविध्य से रहित थीं। लेकिन 'चीफ की दावत' में स्थान, समय और परिस्थिति के बदलाव के कारण रोचकता पैदा कर सकने की खासी गुंजाइश थी। परन्तु रंगमंच से दृश्यबंध, मंचोपकरण, वेश भूषा और रूप-विन्यास के साथ-साथ

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 111
2. वही - पृ.सं. 105

नेपथ्य-ध्वनियों तक बहिष्कृत करने के कारण ये तीनों कहानियाँ दर्शकों को बाँधने में असमर्थ रहीं।

2.6.3 पंचलाइट, अरथी और जीव खो गया - ब.व. कारन्त

सन् 1986 में ब.व. कारन्त ने फणीश्वरनाथ रेणु की 'पंचलाइट', श्रीकान्त वर्मा की 'अरथी' तथा हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव' नामक कहानियों को नाट्यरूप प्रदान किया। ये तीनों कहानियों को तीन अलग-अलग शैलियों में प्रस्तुत किया गया था। 'पंचलाइट' की भाषा, कथा और शैली ही नहीं उसका चरित्र, परिवेश और आस्वाद भी प्रदर्शन-शैली के लोक रूप माच से पूरी तरह मेल खाता हुआ था। इसके मुकाबले 'अरथी' का तेवर, अनुभव और मुहावरा माच लोक-रंग की प्रस्तुत-शैली से बहुत भिन्न था। "मृतक मदन लाल से 'मैं' के अट्ठाइस वर्ष पुराने घृणा, डर, क्रोध, ईर्ष्या भरी मैत्री पर आधारित रिश्ते की अन्दरूनी परतों और मौत, आदमी तथा दहशत के गहरे संबन्धों को शव-यात्रा के बहाने लेखक एवं निर्देशक के साथ-साथ अभिनेता दीपक छिब्बर ने खूबसूरती से उजागर किया।"[1] साथ ही साथ हरिशंकर परसाई की व्यंग्य कथा 'भोलाराम का जीव' को पांडवानी शैली में मालवी में 'जीव खो गया' नाम से प्रस्तुत किया गया।

2.6.4 खच्चर और रसप्रिया - संजीव सहाय

सितंबर 1986 में श्रीराम सेंटर के रंगमंडल ने संजीव सहाय के निर्देशन में केशव की कहानी 'खच्चर' तथा फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी 'रसप्रिया' को अपने तलघर में खेला। इसमें गरीबी, शोषण और न्याय व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करने की

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 109

कोशिश की गई है। 'रसप्रिया' समाज में लोक-कलाकार की उपेक्षा तथा जाति-भेद की विडंबना की मार्मिक कहानी है। रेणु की कहानी की संवेदना, भाषा, संरचना और उसके चरित्र एवं परिवेश को प्रस्तुति में सहजता से पकडने और पेश करने की कोशिश की गई है।

2.6.5 दूसरी दुनिया, कव्वे और कालापानी - राजिन्दरनाथ

'दूसरी दुनिया', 'कव्वे और कालापानी' निर्मल वर्मा की कहानियों का प्रस्तुतीकरण है, जिसे श्रीराम सेंटर के रंगमंडल में राजिन्दरनाथ के निर्देशन में प्रदर्शित हुआ। ये दोनों कहानियाँ व्यक्ति के अकेलेपन तथा इनसानी रिश्तों के बीच के ठहराव, उदासी और बेचारगी की कहानियाँ हैं। यह बाहरी घटना के यथार्थ के बजाए आदमी के भीतरी सच को प्रस्तुत करने की कोशिश करती हैं। 'दूसरी दुनियाँ' लंदन के एक पार्क में पेड-पौधों की दोस्ती के सहारे ज़िन्दगी काटती एक अकेली, बेचारी बच्ची ग्रेता की मर्मस्पर्शी कहानी है। "पेडों से मिलकर बतियाती, खेलती, रुठती-मनाती लडकी दर्शकों को शुरू में पागल-सी लगती है और जब वह काल्पनिक मिसज़ टामस से हाथ मिलाकर अजीब सी बातें और हरकतें करती है तो उसके भूत-प्रेत तक होने का शक पैदा हो जाता है।"[1] 'कव्वे और कालापानी' बाहरी दुनिया का सच है। यह नैनीताल के आसपास के एक वीरान पहाड़ी में रहनेवाले एक बाबाजी की दिलचस्प कहानी है। इस प्रदेश को मृतात्माओं और कव्वों का प्रदेश कहा जाता है। वहाँ सभी यही विश्वास करती है कि वहाँ पर मरनेवाले व्यक्ति कव्वा बनता है और जब वहाँ कोई कव्वा मरता है तो वह मोक्ष प्राप्त करता है। आवाज़ के जादू और मूकाभिनय दोनों नाटकों की विशेषताएँ है। दोनों कहानियों के परिवेश को पूर्ण रूप से बनाये रखने में नाटक एक हद तक सफल निकला।

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 113

2.6.6 गदर से पहले के दिन - एकत्र

'गदर से पहले के दिन' प्रेमचन्द जी की सुविख्यात कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' के नाट्यांतर है। इस नाट्यांतर को 'एकत्र' ने उन्हीं के निर्देशन में खेला। नाटक में प्रमुख भूमिकाएँ रामगोपाल बजाज, बी.एम. बडोला, ज्ञान शिवपुरी, अमिताभ श्रीवास्तव जैसे प्रतिष्ठित कलाकारों ने निभाई है। संगीत ब.व. कारन्त का है। परन्तु इन सबके बावजूद भी यह प्रस्तुति गहरा एकाग्र प्रभाव पैदा नहीं कर सकी।

2.6.7 चन्द्रमा सिंह उर्फ चमकू - भानु भारती

'चन्द्रमा सिंह उर्फ चमकू' लू शुन की विश्वविख्यात कथा रचना 'आक्यू की सच्ची कहानी' से प्रेरित है। लू शुन चीन के गोर्की और भारतीय कथाकारों में प्रेमचन्द और शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय माने जाते हैं। सामाजिक विसंगतियों एवं जन विरोधी शक्तियों पर आक्रमण करनेवाले एक साहसी और असाधारण साहित्यकार के रूप में वे जाने जाते हैं। 'आक्यू की सच्ची कहानी' के रूपांतरकार और निर्देशक थे - भानु भारती। "1911 की चीनी सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों को 1970 के आसपास के किसी बिहारी गांव और नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ढालकर भानुभारती ने निम्न वर्ग के मजदूर चमकू की एक आज़ाद आदमी की तरह जिंदा रहने की जायज एवं ज़रूरी जद्दोजहद और व्यथा-कथा को कड़े सादे किन्तु सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया। चमकू में उसके वर्ग की तमाम अच्छाइयों और बुराइयों साफ तौर से मौजूद हैं। स्वयं को बार-बार 'नाली का कीड़ा' कहकर आत्मभर्त्सना करनेवाले चमकू के मन में, बेवजह उसे गाहेबगाहे अपमानित और प्रताडित करनेवाले जमींदार-साहूकार और उनके दलालों के प्रति तीव्र घृणा एवं प्रतिशोध

का भाव है।"[1] यह नाटक हमारे समाज के चरित्रहीन और बेरहम व्यक्तित्व को बड़ी नाटकीयता से बेपरदा करता है। सार्थक कथ्य, बहुरंगी चरित्र, विश्वसनीय परिवेश और जीवंत समग्र-प्रभाव के कारण 'चन्द्रमासिंह उर्फ चमकू' बेशक महत्वपूर्ण प्रस्तुति बन गई है। पूर्वी उत्तरप्रदेश के ठेठ देसी परिवेश को पात्रों में, घटनाक्रम के रंगों में, क्रियाओं में और अवधी बोली की संवाद रचना में लेकर भानु भारती ने इसे अत्यन्त आत्मीय रचना का रूप दिया है। और न लू शुन की कथा और उसकी मूल संवेदना पर कोई ठेस लगी है, न मूल रचना से प्रेरित आलेख पर। नाटक पढते समय यह आभास भी नहीं होता है कि नाट्यरूपान्तर पढ रहे हैं बल्कि हम उस 'रचना' से जुडते चले जाते हैं।

2.6.8 खोजी - विजयदान देथा

राजस्थान कथाकार विजयदान देथा की कहानियों पर अनेक प्रकार से कार्य हुआ है। उनकी छोटी-सी कहानी 'परिणय' पर प्रकाश झा ने एक संपूर्ण फिल्म बनायी थी। उनकी सर्वाधिक चर्चित कहानी है 'खोजी'। 'खोजी' कहानी के आधार पर दो प्रकार के नाटक रचे गये हैं - दो विभिन्न रूप और शैलियों में। हिन्दी की कथाकार - नाटककार मृणाल पाण्डे ने 'खोजी' कहानी के आधार पर एक नया नाटक रचा 'जो राम रचि राखा'। बिल्कुल उसी तरह दूसरे हिन्दी नाटककार असगर वजाहत ने 'खोजी' के आधार पर अपनी रचना दृष्टि से 'वीरगति' नाटक रचा जिसमें नौटंकी और पारसी रंग विधान का उत्तेजनात्मक सौन्दर्य है उसे पढ़ते-देखते वह नाटक ही हमारी स्मृति में रह जाता है, 'खोजी' कहानी का टैक्स्ट नहीं। 'जो राम रचि राखा' में भी मृणाल पाण्डे ने लोकचेतना की गूँज दी है। मृणाल जी के इस नाटक में यथार्थवाद और लोकधर्मिता का विलक्षण समन्वय है।

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी नाटक - आजकल - पृ.सं. 189

2.6.9 फितरती चोर / चरणदास चोर - हबीब तनवीर

विजयदान देथा की कहानियों में लोक-कथाओं एवं बोलियों का रसमय संसार भरा पड़ा है। उनकी ऐसी एक कहानी है 'फितरती चोर'। उनकी इस कहानी पर हबीब तनवीर जैसे प्रतिभाशाली नाटककार आकृष्ट हुआ और उस पर 'चरणदास चोर' जैसी विश्वप्रसिद्ध नाट्यकृति बनी। मूल कहानी को लोग भूलते गये और 'चरणदास चोर' एक शाश्वत प्रस्तुति बनती चली गयी। "जिसका मुख्य कारण उसका छत्तीसगढी परिवेश, बोली, संस्कृति, वहाँ के वे ठेठ लोक कलाकार हैं जहाँ कुछ भी 'सिखाया हुआ' नहीं है, स्वतः और अनायास आया हुआ लय-वैविध्य है, अभिनय की नयी शैली है, खुले, उमुक्त-स्वाभाविक कण्ठ-स्वर हैं, अदायगी है जो नागरिकों को प्रशिक्षण से नहीं आती। 'चरणदास चोर' में इतने गीत-संगीत, नृत्य, संश्लिष्ट क्रियाएँ हैं कि लोग कहानी को भूल जाते हैं।"[1] कहानी में ऐसा कोई गीत या घटनाएँ हैं भी नहीं पर हबीब तनवीर उन गीतों के द्वारा ही कथानक को विकसित करते हैं, दृश्य-परिवर्तन की सूचना देते हैं। जो कहानी की प्रस्तुति को, प्रदर्शन-आलेख को दिलचस्प और समसामयिक बनाते चलते हैं।

2.6.10 बंजारा टोला - किरन चन्द्र शर्मा

'बंजारा टोला' पंचतंत्र की कहानी 'तोता और पेड़' और प्रेमचन्द की एक आरंभिक अचर्चित-सी कहानी 'बांका ज़मींदार' से प्रेरित और प्रभावित किरन चंद्र शर्मा का नाटक है। यह नाटक चार खंडों में विभक्त है, प्रत्येक खंड में बिना दृश्यों का उल्लेख किए केवल प्रकाश और अंधकार के ज़रिए दृश्यांतर किया गया है। शर्मा जी ने मोटे तौर से

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 125

यथार्थवादी नाटकों के ढांचे के बीच जिस तरह गीतों या सूत्रधार, नट-नटी या कथा गायक के माध्यम से एक अनूठा लचीलापन पैदा करते हैं - वह इनका अपना मौलिक रंग-शिल्प है।

2.6.11 मोटेराम का सत्याग्रह - सफदर हाश्मी

'मोटेराम का सत्याग्रह' प्रेमचन्द की कहानी 'सत्याग्रह' पर आधारित नाटक है जिसका रूपान्तरण सफदर हाशमी ने किया, जो कई दृष्टियों से बहुत प्रासंगिक एवं प्रभावशाली प्रदर्शन सिद्ध हुई। रूपान्तरकार हाश्मी ने मूल कहानी के संकेतों के आधार पर अनेक चरित्रों, प्रसंगों और दृश्यों की रचना कर डाली। इस नाटक में अंग्रेज़ी शासन द्वारा पेटू पं. मोटेराम शास्त्री के 'धर्माग्रह' की हास्यास्पद परिणति दिखलाना ही प्रेमचन्द, सफदर हाशमी और निर्देशक हबीब तनवीर का मूल उद्देश्य था। इस दृष्टि से यह तीव्रगति का मनोरंजक प्रहसन नाटक अपनी पूरी अतिरंजना के बावजूद सफल तथा सार्थक सिद्ध हुआ।

2.6.12 मायाजाल - इरपिन्दर भाटिया

राजस्थान की लोक कथा पर आधारित विजयदान देथा की कहानी थी 'अमिट लालसा'। इस कहानी का नाट्यरूपान्तरण 'मायाजाल' नाम से इरपिन्दर भाटिया ने किया है। इस कहानी का कथानक रेगिस्तान के बीच बने धर्मशाला में ठहरनेवाले यात्रियों को रात में लूटकर उनकी हत्या करनेवाले कुम्हार पर केन्द्रित है। वर्षों पूर्व सेठ के साथ व्यापार करने गया उसका बेटा एक दिन उसकी धन-लिप्सा का शिकार हो जाता है। ग्लानि से भरा हुआ, पश्चाताप की अग्नि में जलता कुम्हार अपनी पत्नी की हत्या कर स्वयं आत्महत्या कर लेता है।

2.6.13 रुदाली - उषा गांगुली

बंगाल की विख्यात लेखिका महाश्वेता देवी की एक प्रसिद्ध कहानी पर आधारित नाटक है 'रुदाली'। इसका नाट्यरूपान्तरण उषा गांगुली ने किया है। अनेक मंचों पर सफलतापूर्वक खेले जा चुके इस नाट्यरूपान्तरण की लोकप्रियता आज भी है। "नाटक का केन्द्रीय पात्र सनीचरी है जिसे शनिवार के दिन पैदा होने के कारण यह नाम है और उसके साथ मिली है कुछ सज़ाएँ - समाज मानता है कि वह असगुनी है और इसीलिए उसके परिवार में कोई नहीं बच सका है।"[1] एक पात्र के रूप में सनीचरी उस तबके का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके पास न चुनाव की स्वतंत्रता होती है न निश्चित होने के साधन, लेकिन वह कभी टूटती नहीं है। समाज के निम्नवर्ग में स्त्री-जीवन की एक लोकहर्षक विडंबना को रेखांकित करता हुआ यह नाटक शिल्प के स्तर पर भी एक संपूर्ण नाट्य कृति है। इसमें पात्रों के अनुरूप भाषा, संवाद रचना एवं पात्रानुरूप वेशभूषा का प्रयोग किया गया है। एक ही मंच पर घर, मेला, हवेलिया सभी का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार देखा जाए तो हिन्दी रंगमंच में नाटक की कमी को दूर करने के लिए 'कहानी का रंगमंच' जैसे रंग प्रयोग बहुत मददगार है और उसे अच्छे तरीके से रूपायित करने, उपयोग करने का साहस समकालीन हिन्दी रंगमंच उठा रहा है।

2.7 उपन्यास और नाटक

उपन्यास रंगमंचादि के बंधनों से मुक्त साहित्य रूप है। जिसमें विस्तृत वर्णन हो सकते हैं, सैकडों चरित्र हो सकते हैं, लेखक और चरित्रों द्वारा विस्तृत वाद-विवाद और

---

1. डॉ. दीपा कुचेकर - हिन्दी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों का योगदान - पृ.सं. 276

चिन्तन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी के शब्दों में "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1] उपन्यास की अपेक्षा नाटक छोटा होता है, सघन होता है और लिखने में कठिन होता है। नाटक वर्तमान काल की कला है, इसकी घटनाएँ दर्शकों के सामने घटित होती हैं। उपन्यास भूतकाल की कला है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास और नाटक में मुख्यतः 'काल' का अंतर है अर्थात् 'था' और 'है' का अंतर।

नाटक और उपन्यास में एक और अंतर है जिसकी ओर नाट्य विशेषज्ञ एरिक बेंटले ने इस प्रकार संकेत किया है कि "यदि कोई लेखक 'वार एण्ड पीस' की तरह का उपन्यास लिखना चाहता है, तो उसके प्रयत्न को कहा जाएगा 'सब कुछ अपनी रचना में समेट लेने की कोशिश' और 'फ्रेडे' या 'घोष्ट्स' के अनुकरण पर नाटक लिखनेवाले का उद्देश्य होगा 'सब कुछ छोड देने की कोशिश'। यह विचित्र बात है कि टालस्टाय ने अपने उपन्यास में ऐसा कुछ भी शामिल नहीं किया है जिसकी उन्हें ज़रूरत नहीं थी। इसी तरह रेसीन या इब्सन ने अपने नाटकों के बाहर ऐसा कुछ भी नहीं छोडा, जिसकी उन्हें ज़रूरत थी। उनका अधिकतम ही उनका न्यूनतम और उनका न्यूनतम ही उनका अधिकतम है।"[2] ब्रेटले का यह विचार नाटक के वैशिष्ट्य को मुख्य रूप से चिन्हित करता है कि नाटक न्यूनतम से अधिकतम की अभिव्यक्ति है। इसलिए नाटक की कला को उपन्यास की तुलना में अधिक कठिन समझा जाता है। "उपन्यास मंदगति कला है, इत्मीनान से पढ़ने के लिए,

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ.सं. 71
2. डॉ. सिद्धनाथ कुमार - नाटकालोचन के सिद्धान्त - पृ.सं. 40

नाटक तीव्रगति कला है - दर्शकों की आँखों के सामने से गुज़रने के लिए। खेल की शब्दावली में कहें, तो उपन्यास पंचदिवसीय क्रिकेट मैच है, नाटक एकदिवसीय।"[1] कह सकते हैं कि उपन्यास हो या नाटक दोनों की अपनी विशेषताएँ है, अपनी शक्ति है।

2.8 उपन्यास का रंगमंच

कहानी के रंगमंच की अपेक्षा सर्वथा भिन्न प्रवृत्तियाँ उपन्यास के रंगमंच में दृष्टिगोचर होती हैं। उपन्यास, कहानी से इस अर्थ में भिन्न विधा है कि उसमें कहानी की तुलना में देश, काल और वातावरण का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और परिपूर्णता रहता है। उपन्यास के नाट्यांतर के संबन्ध में डॉ. गिरीश रस्तोगी का कथन है "उपन्यास में कैनवास बड़े होते हैं। उपन्यास के नाट्यांतर में जटिलता है। यह विचार ठीक नहीं है कि उपन्यास को मंच पर ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाए। क्योंकि रंगमंच पर हम रचना को जीवित बनाते हैं, गति देते हैं और उसे रंगमंच की स्वतंत्र कृति के रूप में संप्रेषणीय भी बनाना है।"[2] उपन्यास को नाटक के रूप में रूपान्तरित करना बहुत कठिन है। क्योंकि उपन्यास का फलक बहुत विस्तृत होता है। उसकी कथावस्तु विभिन्न अध्यायों में बाँटकर रख दिया जाता है। लेकिन नाटक का फलक बहुत छोटा है। उसे कम समय में खेला जा सकता है। "उपन्यास का नाट्यांतर सिर्फ संवादों में बाँधना, अवांछित को छोड़ देना या आवश्यक को जोड़ देना नहीं, क्योंकि ऐसा करना सत्य से भागना हो जाती है।"[3] इसलिए एक उपन्यास का नाट्य रूपान्तर करते समय सबसे पहले उपन्यास की मूल आत्मा को समझकर उसे नाट्य विधा का संश्लिष्ट, स्वाभाविक और उपन्यास के अनुकूल स्वरूप

1. डॉ. सिद्धनाथ कुमार - नाटकालोचन के सिद्धान्त - पृ.सं. 40
2. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंग परिकल्पना - पृ.सं. 26
3. कुसुम अग्रवाल - रूपान्तर की रजन्त जयन्ती - नेमिचन्द्र जैन (सं) नटरंग 1996 - पृ.सं. 52

प्रदान करना है। साथ ही रंगमंच की सीमाओं, संभावनाओं, शर्तें, आवश्यकताओं आदि सभी के प्रति पूर्णतः सतर्क रहना है। उपन्यास के कौन सा अंश नाटक या रंगमंच की दृष्टि से निरर्थक या बाधक है अथवा जिनके संप्रेषण की प्रस्तुति असंभव है उसे छोड़ देना है। उपन्यास कहीं किसी बिन्दु पर कमज़ोर लग रहा है तो उसे रूपान्तर करते समय सशक्त बना सकते हैं। अतः लेखक के मंतव्य या लिखित कथा को मंच पर कम से कम समय में अधिक से अधिक सार्थकता एवं क्रियान्विता के साथ प्रस्तुत करना ही प्रमुख है।

उपन्यास का फलक बडा होता है। इसलिए उसमें बहुत कुछ संक्षिप्त करना पड़ता है। यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि इस काट-छाँट के कारण उपन्यास के सारगर्भित और महत्वपूर्ण स्थल नाट्य-प्रस्तुति में छूट न जायें। "उपन्यास के पूरे विस्तार को कसी हुई और प्रभावपूर्ण दृश्य-योजना में बदलना, अपने को अनुपस्थित करके केवल संवादों और मुद्राओं या क्रियाओं के माध्यम से सारे पात्रों और परिस्थितियों को उजागर करना, सारी प्रस्तुति को सीमित अवधी और रंगस्थलों में केन्द्रित करना आदि रूपान्तरकार के सामने एक बहुत बडी चुनौती ही है।"[1] वास्तव में उपन्यास के नाट्य रूपान्तर की समस्या, साहित्य को एक सर्वथा भिन्न कला माध्यम रंगमंच पर प्रस्तुत करने की समस्या से संबन्ध रखती है। रूपान्तरकार इसमें रंग शिल्प और दृश्य-सज्जा की दृष्टि से पुनः सृजन की शर्त पर उपन्यास से नवसाक्षात्कार करता है। साथ ही वह उपन्यास के संपूर्ण कथ्य को एक नयी व्याख्या भी दे सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी रंगमंच पर भारतीय या विदेशी साहित्य के महान उपन्यासों के नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत करने का अभियान साहसिक एवं स्वागत योग्या है।

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंग परिकल्पना - पृ.सं. 36

2.9 प्रमुख उपन्यास और उसके नाट्यरूपान्तर

उपन्यास के बृहद आकार में से विविध संदर्भ, पात्र, घटनाएँ, स्थितियों में से एक 'संश्लिष्ट नाटक' निकालना एक रोमांचक अनुभव है। आज हमारे हिन्दी रंगकर्मियों ने इस रोमांचक अनुभव को देश-विदेश के बहुसंख्य उपन्यासों को नाट्यांतरित करके साकार किया है। इस प्रक्रिया में प्रेमचन्द, श्रीलाल शुक्ल, यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु जैसे बहुचर्चित उपन्यासकारों के उपन्यासों को रूपान्तर करके मंच पर अवतरित किया गया है। शोध प्रबन्ध के चौथे अध्याय में श्रीलाल शुक्ल का 'रागदरबारी', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल', आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा', प्रेमचन्द का 'गोदान', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', यशपाल का 'दिव्या', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', अमृतलाल नागर का 'सुहाग के नूपुर', जगदीश चन्द्र का 'कभी न छोडें खेत' आदि उपन्यासों के नाट्यरूपान्तरों पर विस्तृत रूप में विचार करने की कोशिश की गयी है।

2.9.1 बेगम का तकिया - रंजीत कपूर

पंडित आनंद कुमार के उपन्यास 'बेगम का तकिया' का नाट्य रूपान्तर और निर्देशन - 'वीएजेक' के ख्याति प्राप्त युवा निर्देशक रंजीत कपूर ने किया। दुनिया में अमीर कौन है? कंगाल कौन है? दौलत क्या है? औरत क्या है? इन महत्वपूर्ण प्रश्नों का नाटकीय उत्तर है - 'बेगम का तकिया'। नाटक का घटना-स्थल उत्तरप्रदेश और हरियाणा का एक सीमावर्ती गाँव बगदार है। "मुसलमान राज-मिस्त्रियों के इस गांव को मीरा के माध्यम से तवायफ रौनक बेगम 'रौनकाबाद' बनाने की जी तोड़ कोशिश करती है। परंतु उसकी तमाम आक्रात्मक और अन्यायी शक्तियों के विरुद्ध अकेले और कमज़ोर मगर ईमानदार, सच्चे, निश्छल एवं आस्थावान 'पीरा' की लडाई प्रकारांतर से मानव-सभ्यता के लंबे इतिहास तथा

पश्चिमी और भारतीय (भौतिक बनाम आध्यात्मिक) जीवन-मूल्यों के अनंत संघर्ष की प्रतीकात्मक कथा बन जाती है।"[1] नाटक के परिवेश और पात्रों के अनुरूप प्रस्तुति में देहाती अनगढ़ता तथा सहजता उपलब्ध कराया गया है। निर्देशक ने रंगमंच के महाकाव्यात्मक धरातल को उपलब्ध किया है और मुक्ताकाशी मंच के ज़रिए उपन्यास के अधिकांश प्रसंगों को प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त की है। इसमें कोरस का सहयोग भी महत्वपूर्ण है। निर्देशन, अभिनय और तकनीकी दृष्टि से यह एक अत्यंत लोकप्रिय एवं श्रेष्ठ प्रस्तुति रही।

2.9.2 मुख्यमंत्री - रंजीत कपूर

चाणक्य सेन के उपन्यास 'मुख्यमंत्री' का नाट्य-रूपान्तर और निर्देशन रंजीत कपूर ने किया। 'वोएज़ैक', 'बिच्छू', 'शेर अफगन', और 'बेगम का तकिया' जैसे सफल, लोकप्रिय एवं कलात्मक नाटकों से ख्याति प्राप्त निर्देशक रंजीत कपूर ने 'मुख्यमंत्री' में अपनी प्रतिभा का एक नया आयाम उद्घाटित किया है। चौदह दृश्यों और उन्नीस पात्रोंवाले इस नाटक को स्टूडियो थिएटर के लघु-मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत करना एक बहुत बडी चुनौती थी। जिसका सामना कपूर जी ने मंच को सात-आठ प्रमुख अभिनय स्थलों में बाँटकर तथा संवाद लय और गति संयोजन के सूक्ष्म, रोचक, कल्पनापूर्ण एवं नाटकीय प्रयोग के द्वारा अद्भुत सफलता से किया। "नाटक का कार्य-काल नवंबर 1956 है और स्थान उदयाचल प्रदेश का रतनपुर - जहाँ गत साढ़े पाँच वर्षों से चला आ रहा श्रीकृष्ण द्वैपायन कौशल का मंत्रीमंडल अत्यन्त नाटकीय ढंग से भंग हो गया है और तय हुआ है कि नये नेता का चुनाव चार दिन बाद यानी 6 नवंबर को होगा। यह नाटक 5 नवंबर की सुबह से शुरू होता है जो राजनीतिक शतरंज के दोनों प्रमुक खिलाडियों (श्री कौशल और प्रदेश

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी नाटक आज कल - पृ.सं. 168

पार्टी अध्यक्ष श्री सुदर्शन दूबे) के रण-कौशल की कड़ी परीक्षा और पराकाष्ठा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं निर्णायक दिन है। आधी रात तक तमाम उखाड़-पछाड और जोड-तोड के गहरे संघर्ष के बाद श्री कौशल श्री दुबे को पछाड कर पुनः विजयी हो जाते हैं और यहीं यह नाटक खत्म होता है।"[1] यह नाटक मूलतः राजनीतिक उखाड़-पछाड़ और जोड़-तोड़ के माध्यम से सत्ता-संघर्ष की अन्दरूनी कहानी है। कल्पनापूर्ण प्रकाशयोजना, कुशल अभिनेता, संवाद आदि नाटक को प्रभावशाली बनाने में, प्रदर्शित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अत्यधिक लंबी और कहीं-कहीं शिथिल होने के बावजूद यह प्रस्तुति हिन्दी रंगमंच की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

2.9.3 तमाशा - रामकुमार भ्रमर

'तमाशा' हिन्दी के सुपरिचित कथाकार रामकुमार 'भ्रमर' के मार्मिक उपन्यास 'काँचघर' का उन्हीं के द्वारा किया गया नाट्य-रूपांतर है। दो अंकों और तैंतालीय दृश्यों में विभाजित यह नाटक महाराष्ट्र की प्रसिद्ध लोक नाट्य शैली तमाशा के कलकारों के मंच और मंच के पीछे की वास्तविक जिन्दगी की विडंबना को अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से रेखांकित करता है। कावेरीबाई और उसके संच' के चार-छ प्रमुख सदस्यों की एक व्यक्तिगत या पारिवारिक सी लगनेवाली इस करुण कहानी के माध्यम से रचनाकार ने हमारे आज के सामाजिक - राजनीतिक और आर्थिक जीवन की विषमताओं, विडंबनाओं और शोषण के विभिन्न रूपों से नाटकीय साक्षात्कार कराया है। लेखक का यह कथन महत्वपूर्ण है कि, "एक तरह से विभिन्न अंचलों, भाषाओं, और स्थितियों को भारत जैसे बड़े देश के मंच पर लाते रहने से भावात्मक और राष्ट्रीय चेतना को भी शक्ति मिलती है। राजनीति और

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 76

सामाजिक दोषों से एकभाव-एकस्तर पर संघर्ष को भी बल मिलता है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि किसी भी कृति में भले वह उपन्यास हो या नाटक या अन्य कोई विदा महज दोषों को सामने ला देना भर लेखकीय ज़िम्मेदारी है, बल्कि मेरा ख्याल है कि उससे बड़ी ज़िम्मेदारी है उस सनातन विद्रोह और संघर्ष की चेतना को जागृत रखना, जो दोषों से मनुष्य समाज को निजात दिलवाती रही है।"[1] नाटक में पेश किए गए चरित्र, उनका जीवन, परिवेश और उनकी आंचलिक शब्दों एवं अभिव्यक्तियों से परिपूर्ण खरी भाषा एकदम यथार्थ, जीवन्त और प्रामाणिक लगती है। मंच और मंच-पार्श्व को एक साथ नियोजित करके नाटककार ने रोटी, दिल और जिस्म की ज़रूरतों से पिसते कलाकार के जीवन को प्रभावशाली ढंग से रेखांकित किया है।

2.9.4 मित्रो मरजानी - कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती के विवादास्पद उपन्यास है 'मित्रो मरजानी'। लेखिका के द्वारा किया गया नाट्यांतर को बृजमोहन शाह के निर्देशन से प्रस्तुत किया गया है। खुबसूरत ज़बान में तराशे हुए संवाद, मित्रो का जटिल आक्रामक चरित्र तथा मानवीय संबन्धों की विडंबना का नाटकीय निरूपण इस प्रस्तुति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ थीं। मित्रो के चरित्र में लोककथा के पात्र की ऊष्मा, तीव्रता और ऊर्जा है। उसकी सबसे बडी विडंबना यह है कि वह कुल परिवार, समाज या धर्म और नैतिकता की झूठी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए अपने स्वाभाविक एवं नैसर्गिक देह सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकती। उसके लिए देह से बडा सच और सच से बड़ा कोई दूसरा मूल्य ही नहीं है। ऐसी एक औरत का किसी निम्न मध्यवर्गीय परिवार के बीच उपस्थित होना अपने आपमें एक गहन नाटकीय स्थिति है और 'मित्रो

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 78

मरजानी' का यह प्रदर्शन उसी नाट्यानुभव को संप्रेक्ष्य बनाने का प्रयास करता है। विद्रोही स्वर, संवेदनशील भाषा, श्रेष्ठ अभिनय तथा कलात्मक निर्देशन के सम्मिलित सहयोग से यह नाटक सफल एवं सार्थक सिद्ध हुआ।

2.9.5 डार से बिछुडी - देवेन्द्रराज अंकुर

कृष्णा सोबती की लंबी कहानी 'डार से बिछुडी' को श्रीराम सेंटर के रंगमंडल द्वारा अभिमंचित किया गया। यह एक ऐसा नाटक है जो नारी जीवन के विभिन्न आयामों को पूरी संवेदनशीलता और तीव्रता के साथ रेखांकित करने में सफल रहा। "उपन्यास के चौबीस चरित्रों को केवल नौ कलाकारों से अभिनीत करवाना और देश तथा काल के विस्तार में फैले बहुस्तरीय क्रिया-व्यापार को मंच के सीमित दायरे में बाँधना एक बड़ी रचनात्मक चुनौती थी जिसे कहानी उपन्यास के मौलिक मंच-प्रयोगों के लिए प्रसिद्ध युवा निर्देशक देवेन्द्रराज ने सादे मंच और प्रतीकात्मक रंगीन दुपट्टों के माध्यम से हल करने का प्रशंसनीय प्रयास किया।"[1] अभिनय, पार्श्व-ध्वनि और प्रकाश व्यवस्था के अतिरिक्त किसी मंच उपकरण का आश्रय नहीं लिया गया। निर्देशक ने अपनी सर्जनात्मक शक्ति के बल पर रचना के मूल कथानक, मुहावरे, और आस्वाद की पूर्णतः रक्षा करते हुए विद्रोही स्वरवाली इस कथा को मंच पर सजीव कर दिखाया।

2.9.6 उसका बचपन - मणिका मोहिनी

कृष्ण बलदेव वैद के चर्चित उपन्यास 'उसका बचपन' को मणिका मोहिनी ने उसी नाम से नाट्यांतरित किया। "घर-परिवार के टूटते-बिखरते तनावपूर्ण संबंधों और

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 106

आपसी कलह की आग में एक मासूम बच्चे बीरु का बचपन और भारी जीवन किस तरह जल-भूनकर राख हो जाता है - इसका अत्यंत संवेदनशील, मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्रण इस रचना में हुआ है।"[1] सोलह दृश्यों में विभक्त इस नाट्यांतर में एक पंजाबी परिवार और परिवेश का बड़ा प्रामाणिक चित्रण हुआ है। संवादों के बीच पंजाबी के कुछ आंचलिक शब्दों का सार्थक प्रयोग भी किया गया है।

2.9.7 गली आगे मुड़ती है - हनु यादव

शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार, युवा आक्रोश जैसे सामाजिक विसंगतियों को ज़ोर देनेवाली शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास 'गली आगे मुड़ती है' को युवा निर्देशक हनु यादव द्वारा मंचित किया गया। इस प्रदर्शन के द्वारा छात्रों में मौजूद गुंडागर्दी, क्रूरतापूर्ण रैगिंग, यौन कुंठाओं, अध्यापकों की अन्यायपूर्ण मार्किंग, गुटबाज़ी और अपने हितों के लिए छात्रों के इस्तेमाल, बलात्कार, हत्या और भ्रष्टाचार जैसे अनेक मुद्दों को उठाया गया है। किन्तु इसका प्रस्तुतीकरण युवा आक्रोश तथा छात्र असंतोष व अशांति का फर्क समझाने में असफल रहा। यह न तो इसके कारणों को विश्लेषित करता है और न ही किसी सार्थक निकास का संकेत देता है। 'गली आगे मुड़ती है' का अनुभव संसार दिलचस्प है और एक हद तक उत्तेजक भी, लेकिन नाट्यांतर एवं प्रदर्शन बहुत कमज़ोर रहा।

2.9.8 अग्नि गर्भ - नूर जहीर

अपनी ज़मीन और न्यूनतम मज़दूरी के जायज़ हक के लिए लगातार लडते संथाल आदिवासियों के शोषण तथा संघर्ष की जीवंत कथा 'अग्नि गर्भ' को 'ब्रेख्तियन

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी नाटक आज कल - पृ.सं. 192

मिरर' ने मुक्ताकाशी मंच पर पेश किया। महाश्वेता देवी की बंगला रचना को नूर जहीर ने हिन्दी में रूपान्तरित किया। "आदिवासियों में अपने अधिकारों के लिए लडने और शोषण-अत्याचार के खिलाफ क्रांति करने की आग भड़काने वाला बसाई टुडू सिर्फ एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक चेतना है, जो हमेशा जिन्दा रहती है; यही कारण है कि पुलिस रिकॉर्ड में पांच बार मारकर जलाए जा चुकने के बावजूद बसाई आज भी जिन्दा है और सचमुच मारे जाने के बाद रहता है, क्योंकि तब उसके काम को पूरा करने के लिए उसकी जगह कोई और बसाई ले लेता है। ये हिन्दुस्तानी स्पार्टक्स की अमर कहानी है।"[1] परिवेश और चरित्रों को प्रामाणिक बनाने के लिए निर्देशक ने कुछ संथाली शब्दों के अलावा उनके वाद्य, संगीत और नृत्य-मुद्राओं का भी इस्तेमाल किया।

2.9.9 हज़ार चौरासी की माँ - महाश्वेता देवी

बंगाल की सुप्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी का बहुचर्चित उपन्यास है हज़ार चौरासी की माँ। लेखिका के नाट्यांतर को मनमोहन ठाकुर ने हिन्दी में अनुवाद किया। यह नाटक कलकत्ता में नक्सलबादी आन्दोलन के दिनों की जीवंत और मार्मिक झांकी प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत नाटक फ्लैशबैक में चलता है। इसमें खंड-खंड अनुभवों तथा टुकड़े-टुकड़े प्रसंगों के माध्यम से उच्च-मध्यवर्ग के संकीर्ण स्वार्थता, दोगलापन, और निम्नवर्ग की परेशानी और उसके दर्दनाक जीवन को प्रस्तुत किया गया है।

2.9.10 श्री श्री गणेश महिमा - रामेश्वर प्रेम

महाश्वेता देवी का उपन्यास 'श्री श्री गणेश महिमा' को रामेश्वर प्रेम द्वारा नाट्यांतरित किया गया। यह एक ऐसा नाटक है जिसमें सत्ताधारी द्वारा कानून और व्यवस्था को ताक

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी नाटक आज कल - पृ.सं. 190

पर रखकर अपनी रैयत पर किए जानेवाले अत्याचारों का प्रामाणिक चित्रण मिलता है। लेकिन उपन्यास की अन्तरात्मा को पकडने में यह नाटक असफल रहा।

2.9.11 चार अध्याय - शंभू मित्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'चार अध्याय' को शंभू मित्र ने उसी नाम से नाट्यांतरित किया। चार अध्याय एक लघु उपन्यास है जो विस्तृत विवरणों, अनेक चरित्रों, प्रसंगों का भंडार नहीं है। साथ ही उसका कथानक भी बहुत पैना और काव्यमय है। "वे चार अध्याय चार अंक की तरह है और उनमें सारे कथा-सूत्र नाटक के चुटीले संवादों के ज़रिए विकसित होते हैं और अंत में नाट्योत्कर्ष पर उपन्यास समाप्त होता है। उपन्यास में आनेवाले ब्यौरों, लेखकीय टिप्पणियों, प्रतिक्रियाओं को छोड़ दिया और अपनी प्रस्तुति को अधिक से अधिक चुस्त, लयपूर्ण, विश्वसनीय बनाने का सार्थक प्रयास किया।"[1] यहाँ उपन्यास का नाट्यरूपान्तर नहीं था बल्कि उसे उसी रूप में प्रस्तुत किया। उनका यह प्रयास दर्शकों, समीक्षकों को ताज़गी और गहन संवेदना से भरा नवीन नाट्यानुभव लगा।

2.9.12 काजर की कोठरी - मृणाल पाण्डे

'काजर की कोठरी' देवकीनंदन खत्री के उपन्यास का नाट्यरूपान्तरण है। मृणाल पाण्डे के लिए इस उपन्यास का नाट्य रूपान्तरण कई कारणों से बहुमूल्य और उत्तेजक अनुभव रहा है। मृणाल पाण्डे के अनुसार - "आज के मूल्यों की दृष्टि से देखा जाए तो कथानक का हर पात्र सामंती जीवन की काजर कोठरी का बाशिंदा है। छोटी या बड़ी काजर की लीक सब पर ही लगी है।"[2] कथा की भूलभुलैया में भटकाकर पाठक को उछालते रहने

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 121
2. मृणाल पाण्डे - काजर की कोठरी, भूमिका

की तमाम युक्तियाँ काजर की कोठरी में हु-ब-हूँ भले ही सुरक्षित न रही हो पर जितनी सुरक्षित हैं वे काफी से ज्यादा हैं। भारतीय परिवारों के सामंती ढर्रों पर टिप्पणी के रूप में फोटोग्राफर की युक्ति का इस्तेमाल भी नाटकीय बन पड़ता है। कथा दिलचस्प ढंग से खुलती है। राज पर राज खुलते हैं। सामंती दुनिया का मूल्यात्मक स्वर इसमें चरमराता नज़र आता है। पूरा नाटक सामंती तथा ज़मींदारी व्यवस्था को प्रस्तुत करता है।

2.9.13 मंदाक्रान्ता - मैत्रेयी पुष्पा

'मंदाक्रान्ता' मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास पर आधारित है। 'शामली' एक आदर्श गाँव है यहाँ छोटे-बड़े, जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं है। आपस में स्नेह, भाईचारा ऐसा कि लोग मिसाल दें। लेकिन आज शामली के लोग आपसी परछाई तक पर विश्वास नहीं कर पाते। हर घर में भाई-भाई के बीच रंजिश हैं, कलह हैं। सांप्रदायिक सद्भावना, छुआछूत का उन्मूलन आदि सामाजिक बिन्दुओं को इस नाटक में सार्थक अभिव्यक्ति मिली है। यह नाटक जाति विशेष की जीवन पद्धति और रीति-रिवाज़ों को भी अंतर्धारा के रूप में रेखांकित करता चलता है। यह नाटक मुख्यतः महिला संघर्ष प्रधान है। पुरुष इसमें सहभागी हैं।

2.9.14 स्पार्टाकस - बादल सरकार

हावर्ड फास्ट के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'स्पार्टाकस' के बादल सरकार कृत बंगला नाट्यांतर को रति बार्थोलोम्यू तथा वीरेन्द्र सक्सेना द्वारा हिन्दी में अनूदित किया। स्पार्टाक्स - एक 'कोरु' यानी तीन पीढ़ी का गुलाम है। दासता और दमन की असह्य यातना का नरक ही उसका जीवन है। "स्पार्टाकस जुल्म, शोषण, दमन, दासता और अमानवीयता के विरुद्ध

चिरंतन - संघर्ष की एक ऐसी अमर-गाथा है जो ईसा से इकहत्तर साल पहले की भी है और भारत वर्ष की भी। शायद इसीलिए नाटककार या निर्देशक को न तो रोम साम्राज्य की ऐतिहासिक पोशाकों की चिंता है और न ही उनकी परंपरागत मंच सज्जा की फिक्र। एकदम खाली-सपाट मंच।"[1] इस नाटक में कोई मंचोपकरण अथवा सहायक सामग्री नहीं है, कोई मेकअप नहीं है। यह एक प्रयोगधर्मी नाटक की विशुद्ध प्रयोगधर्मी प्रस्तुति रहा है। अनेक प्रासंगिक और उपकथाओं के जाल से बुना हुआ यह नाटक का कथानक छोटे-बड़े फ्लैश बैक के दृश्यों से आगे बढता है। समग्र रूप से कहे तो कथ्य की प्रासंगिकता और तीव्रता तथा प्रस्तुति-शैली की नवीनता और ताज़गी ने 'स्पार्टकस' नाटक दर्शकों को प्रभावित कर एक सार्थक एवं उत्तेजक नाट्यानुभव प्रदान करता है।

2.9.15 टुट्‌टू - विनोद शर्मा

'टुट्‌टू' कोलिन मैकक्यूलोग्ह के उपन्यास 'टिंम' से प्रेरित नाटक है। यह नाटक हिमालय के कांगड़ा क्षेत्र के पहाड़ी परिवेश में एक मंद-बुद्धि युवक टुट्‌टू के करुण-कोमल जीवन प्रसंगों का चित्रण करता है। विनोद वर्मा का यह नाट्यालेख चुस्त और विश्वसनीय है। भाषा में अनौपचारिकता और नाटकीयता एक साथ है। एक हास्य प्रधान नाटक के रूप में प्रदर्शन खूब जमा। लेकिन उसकी करुणा और जटिलता गायब हो गई है।

2.9.16 ये आदमी ये चूहे - देवेन्द्रराज अंकुर

जॉन स्टीन बैक अमेरिकन उपन्यासकार, निबंधकार व नाटककार हैं। इन्हीं के उपन्यास 'ऑफ माइस एंड मैन' का नाट्यांतर है 'ये आदमी ये चूहे'। यह उपन्यास अमेरिकी

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी नाटक आज कल - पृ.सं 171

साहित्य में क्लासिक माना जाता है। इसका हिन्दुस्तानी रूपांतरण देवेन्द्रराज 'अंकुर' ने किया। रूपांतरण और संवाद इतने विश्वसनीय है कि मूल-का-सा आस्वाद देने योग्य हैं। नाटक में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक और आर्थिक-सामाजिक समस्याओं को बड़ी खूबसूरती से गूँथा गया है। "'ये आदमी ये चूहे' दो खानाबदोश भूमिहीन मज़दूरों के बारे में है जो रोज़गार की तलाश में जगह-जगह भटकाते रहते हैं। एक ऐसे दौर में जब हर आदमी आपाधापी में पड़ा है और जिन्दगी की चूहा-दौड में हर मुमकिन उपाय से औरों को कुचलकर आगे बढ़ जाने के लिए परेशान है, ये दोनों मेहनतकश इनसान, जग्गू और लोरी, एक दूसरे का साथ नहीं छोडते। उनमें से बुद्धिमान और चतुर जग्गू, मज़बूत और बडे डील-डॉलवाले, पर मानसिक रूप से अविकसित और असहाय, लोरी की हर संकट और मुसीबत में जिस आत्मीयता और वफादारी से रक्षा करता है, वह जितनी विरल है उतनी ही गहरी मानवीयता से भरपूर भी है।"[1] वास्तव में इन दो बेबस मज़दूरों के बहाने नाटक में इंसानी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उठाने की कोशिश की गयी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी रंगमंच पर उपन्यासों के नाट्यरूपान्तरों की भरमार रही है जो हिन्दी रंगमंच को व्यापक एवं समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2.10 कविता का रंगमंच

नाटक में काव्य का प्रयोग किसी न किसी रूप में हमेशा ही होता रहा है। "जिस देश में यह स्वीकार किया गया हो कि ब्रह्मा ने 'ऋग्वेद' से पाठ्य-अंश (काव्यात्मक-संवाद), 'सामवेद' से गीत का अंश, 'यजुर्वेद' से अभिनय और 'अथर्ववेद' से रसों का संग्रह करके 'नाट्य' नामक 'पंचमवेद' की सृष्टि की, जिसे नाट्य-शास्त्रियों ने 'काव्य

1. देवेन्द्रराज अंकुर, वीरेन्द्र सक्सेना - ये आदमी ये चूहे, फ्लैप से

रूपक' की संज्ञा देकर वाङ्मय के विभिन्न रूपों में सर्वश्रेष्ठ मानते हुए 'काव्येषु नाटक रम्यम्' का उद्घोष किया हो - उस देश में और उसकी नाट्य-परंपरा में कविता और नाटक के जन्मजात, अभिन्न, अंतरंग और आधारभूत संबंध का होना अत्यन्त स्वाभाविक और सहज ही है।"[1] संस्कृत नाट्य परंपरा से चले आ रहे इस खून के रिश्ते को पारसी रंगमंच ने बखूबी पहचाना और अपने नाटकों में पद्यात्मक व तुकांत संवादों के साथ-साथ नृत्य गीत और शायरी का भरपूर इस्तेमाल किया। सातवें-आठवें दशक में जहाँ रंगमंच पूर्ण उर्वरता को पहूँचा हुआ था और नये-नये प्रयोगों की ओर उन्मुख हो रहा था वहाँ उस समय कविता और रंगमंच के नये रिश्ते उजागर हुए। उसमें नये प्रयोगों की सिलसिला शुरू हुआ। "श्रव्य को दृश्य की ओर ले जाने के पार्श्व में उसे अधिक संप्रेषणीयता देने की बात ही प्रमुख होती है। संप्रेषणीयता में अभिवृद्धि की दृष्टि से जब हम कविता पर प्रयोग करते हैं, तब दो विधाएँ इस दिशा में कार्य करते हैं चित्रों का माध्यम तथा नाटकीय मंचन अर्थात रंगमंच का माध्यम।"[2] कविता के नाटकीय मंचन को इसलिए ज्यादाधिक महत्व प्राप्त है।

समकालीन रंगमंच कविता और रंगमंच के संबन्ध को मुख्यतः दो रूपों में अपनाता है - एक कविता के नाटकीय पाठ के रूप में, दूसरा रंगमंच पर कविताओं की प्रस्तुति के रूप में। कविता रंगभाषा का, अभिनय का, रंगमंच का विस्तार करती है। रंगमंच भी कविता को अनेक अर्थ, दृश्यरूप और सघन अभिव्यक्ति देते हुए उसे बडे दर्शक समूह तक पहूँचाता है। रंगमंच कविता में अन्तर्भूत रंग रेखाओं, चित्रों, ध्वनि, दृश्यबंध, संगीत, भाव, मूल संवेदना सबको मूर्त करता है। यही काम कविता का नाटकीय पाठ भी करता

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा एवं दिशा - पृ.सं. 114
2. महेश दर्पण - काव्य मंचन की प्रासंगिकता, आजकल (सं) वेदप्रकाश अरोडा - पृ.सं. 37

है। "वह और भी अधिक चुनौतीपूर्ण है क्योंकि वहाँ रंगमंच के प्रदर्शनकारी कलातत्व नहीं हैं, केवल वाचन से, पाठ के सौन्दर्य से आरोह-अवरोह, ध्वनि, लय, संकेत, व्यंजनाओं पर, उच्चारण पर पूर्ण अधिकार से ही, कण्ठ के जादू से संप्रेषण और वातावरण सृष्टि दोनों किया जाता है, नाटक का पूर्ण आस्वाद कराया जाता है।"[1] धीरे-धीरे हमारे यहाँ कविता वाचन की परंपरा समाप्त होती गयी और वह केवल कवि-सम्मेलनों के रूप में शेष रह गयी।

पिछले कुछ सालों से हिन्दी रंगमंच पर प्रतिष्ठित कवियों की कविताओं को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। इस प्रकार का प्रयत्न एक विशेष प्रकार की शैली और शिल्प की माँग करता है, जिसे 'कविता का रंगमंच' नाम से अभिहित किया गया। डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा के शब्दों में "कविता का रंगमंच वर्तमान समय के सर्वथा नवीन प्रयोग है। खास तौर से कविता में काव्यात्मक भावपक्ष की प्रधानता होने के कारण उसके रंग-वैशिष्ट्य के उपादान भी इस प्रकार के चुनने पड़ते है ताकि उनसे काव्य के मौलिक भाव उजागर हो सकें।"[2] कविता के रंगमंच से आशय मंच पर कविताओं के पाठ से नहीं है। इसके संबद्ध में डॉ. सत्यवती त्रिपाठी का मानना है "कविता के रंगमंच से आशय न तो मंच पर कविताओं की स्वर और मुद्राओं के साथ पाठ से है और न उस पर आधारित स्वतंत्र नाट्य रूपान्तर की प्रस्तुति से हो। इसमें किसी कविता या कुछ कविताओं को मिलाकर विशिष्ट पार्श्व ध्वनियों, पात्रों की गतियों, मुद्राओं और उनके समूहों के द्वारा कविता में निहित आशयों को रंगमंचीय भाषा में मूर्त करने का प्रयास किया जाता है।"[3] कविता की नाट्य प्रस्तुति

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 132
2. डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा - भारतीय रंगमंच शास्त्र एवं आधुनिक रंगमंच - पृ.सं. 168
3. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता - पृ.सं. 180

करना एक जटिल कार्य है। क्योंकि कविता जितनी मूर्त होती है, उससे भी अधिक अमूर्त होती है, जितनी मुखर होती है उससे अधिक मौन होती है।

किसी कविता को या कुछ कविताओं को मिलाकर रंगमंच पर प्रस्तुत करने के प्रयास में अनेक प्रकार की चुनौतियाँ और संभावनाएँ रहती हैं। क्योंकि कविता के अर्थ विन्यास में अनेक स्तर होते हैं। जीवन की विडंबना प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य है और बहुत कुछ पाठक की सर्जनात्मक कल्पना के लिए छोड दिया गया होता है। प्रतीकात्मक कविताओं के नाट्यरूपान्तरों को लक्षित करने के लिए उनकी रचना प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। कविता के नाट्य सृजन करते समय परिधि से केन्द्र तक जाकर उसमें निहित मूल संवेदना का नाट्य दृष्टि से पुनःसर्जन करना रूपान्तरकार के लिए सबसे बडी चुनौती ही है।

कविता को दृश्य बनाने की दिशा में जहाँ तक नाटकीय मंचन का सवाल है यह कहानी की अपेक्षा दुरूह कार्य है। "प्रश्न यह है कि कविताओं के मंचन की दिशा में हम कितने ईमानदार रह पाते हैं। ....और यह कि नाटकीय मंचन के दौर में कहीं कविता की मौलिकता घट तो नहीं गई? कविता का अपना मिज़ाज कहाँ तक बरकरार रह पाता है? सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि कविता के 'कंटेट' में से 'विज़ुअल्स' को पकड़ने के प्रयास में हमारी दृष्टि कहाँ तक ठीक काम कर रही है? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम कवि के बडे नाम से आतंकित हो बैठे हैं।"[1] उदाहरण के लिए अज्ञेय की कविता के नाटकीय मंचन के दौरान हमें यह ध्यान रखना होगा कि अज्ञेय के बिंब और प्रतीक बहुत मधुर और संवेध होते हैं। अज्ञेय अपने पाठक को रिझाने के लिए, उन्हें सम्मोहित करने के लिए अपनी सृजनात्मक ऊर्जा का प्रयोग करता है। वह सामाजिक यथार्थ से टकराने के स्थान पर अपने

---

1. महेश दर्पण - काव्य मंचन की प्रासंगिकता, आजकल (सं) वेदप्रकाश अरोडा, अंक 8 - पृ.सं. 38

आसपास की डिटेल्स में रसमयता ढूँढता है। जब उनकी कविता को मंचन के लिए चुनते हैं तब उनकी इसी लय को, ऊर्जा को समझना नितान्त आवश्यक है। अर्थात नाटकीय मंचन के लिए चयन करते समय इस समझ की अहं भूमिका होती है। इसके अभाव में नाटकीय मंचन धरा का धरा रह जाता है।

2.11 कविता-मंचन : प्रमुख विशेषताएँ

सामान्य तौर पर नाटकीय मंचन के लिए कविता में कुछ विशेषताओं की उपस्थिति होना आवश्यक है। इनमें प्रमुख है कविता के मंचन के लिए निर्देशक और अभिनेता दोनों में कविता के भाव, उसमें निहित सौन्दर्य, बिंबों, संकेतों, लयों को पहचानने की, उसके संगीत, भाषा की लय को पकड़ने की, उच्चारण की पूरी संवेदनशीलता अनिवार्य है। “कविता का मुख्य ध्येय किसी विचार या भाव की प्रस्तुति करना हो; विचार या भाव की प्राप्ति के उद्देश्य को अर्जित करने की शक्ति और आरोह-अवरोह व वाग्विद्धता भरने की चेष्टा, सृजित वातावरण के अनुकूल स्थितियों व उसकी सी भाषा-शैली का प्रयोग; सहज व बोधगम्य प्रभावान्विति, नाटकों का सा संघर्ष, चाहे वह आंतरिक हो या बाह्य।”[1] अर्थात् रंगमंच की प्रस्तुति एक पूरी प्रक्रिया होती है जिससे गुज़रते हुए कविता दृश्यात्मक आकार लेती है।

कविता के नाटकीय मंचन में ‘ध्वनि’ के माध्यम से विशेष प्रभाव पैदा किया जा सकता है। इस माध्यम का उपयोग भाषा और संगीत के उपयोग से किया जाता है। भाषा सरल, भावाभिव्यंजक और अभिनेय होनी चाहिए। हर्ष, आनंद, विषाद आदि भावों के

1. महेश दर्पण - काव्य मंचन की प्रासंगिकता, आजकल, (सं) वेदप्रकाश अरोडा, अंक 8 - पृ.सं. 39

उभार के लिए ध्वनि का उपयोग संगीत के माध्यम से किया जा सकता है। कविता रंगमंच पर प्रस्तुत करने की नीयत से नहीं लिखी जाती। इसलिए नाटकीय मंचन के समय रंगनिर्देश व पात्र-व्यक्तित्व की कल्पना, ही निर्देशक कर सकता है। कुछ ऐसी स्थितियाँ भी हो सकती है जो दृश्यात्मक न हो। ऐसी स्थिति में मंचन के पार्श्व में 'श्रव्य' को अपना सकता है जैसे कोरस आदि रूपों में।

2.12 कविता और अभिनेता

कविता का माध्यम शब्द है और नाटक का रंगमंच। कई दृष्टियों से नाटक समाज या समष्टिपरक विधा है और कविता व्यष्टिपरक विधा। काव्य सृजन के लिए रचनाकार बाहर से भीतर को जाता है और नाट्य-लेखन के लिए भीतर से बाहर निकलता है। किन्तु यह बात सच है कि काव्य और नाटक दोनों साहित्य की अलग-अलग विधाएँ है। दोनों में उसकी विधागत अनुशासन, रचनाप्रक्रिया तथा व्याकरण के महत्वपूर्ण अंतर के बावजूद भी बडा अन्दरूनी और बुनियादी रिश्ता है।

रंगमंच के मूल तर्क की तलाश करते हुए हमारी दृष्टि अन्ततः 'अभिनेता' पर ही जाकर टिकती है। अभिनेता के पास अभिव्यक्ति के दो ही प्रमुख साधन है - उसकी 'देह' और 'आवाज़'। इन दोनों को नियंत्रित करनेवाले हैं 'सूत्रधार'। शब्द और नाद अभिनेता की कला का अभिन्न अंग है। "एक सामान्य हिन्दुस्तानी की तरह हमारे अधिकांश अभिनेताओं के मन में भी अपनी भाषा के प्रति सम्मान की भावना न होने के कारण उन्हें हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की कोई खास जानकारी नहीं होती। नतीजा यह है कि भाषा के सही संस्कार और साहित्य की गहरी संवेदनशीलता से रहित हमारे यह अभिनेता रंगमंच पर सिर्फ नाटककार के शब्दों के 'वाहक' भर बनकर रह जाते हैं - उनके अर्थों की मौलिक व्याख्या

कर सकनेवाले समर्थ सच्चे 'कलाकार' नहीं बन पाते।"[1] इस संदर्भ में भानु भारती का यह कथन सच है कि "कविता न केवल भाषा का संस्कार हमें देती है, बल्कि शब्द के नाद की अपार संभावनाओं के प्रति भी हमें सचेत करती है। शब्द और नाद अभिनेता की कला का अभिन्न अंग हैं, और इस ओर उसकी चेतना उसे अपने कर्म में मदद करती है।"[2] सुलझे हुए निर्देशन और अनुभवी अभिनय तथा कविता की सही समझ का उपयोग होने से निश्चय ही कविता के नाटकीय मंचन के माध्यम से उसकी संप्रेषणीयता को विस्तार दिया जा सकता है।

2.13 कविता और उनका नाट्यरूपान्तर

यहाँ उन कविताओं की चर्चा की गयी है जिनमें नाट्य तत्व तो मौज़ूद है किन्तु उनकी रचना मूलतः पढने-सुनने के लिए 'श्रव्य काव्य' के रूप में ही हुई। हमारे प्रयोगधर्मी रंगकर्मियों ने उन्हें 'दृश्य अदृश्य' के रूप में रूपान्तरित करके मंच पर प्रस्तुत किया। मैथिलीशरण गुप्त जी की 'नहुष', प्रसाद जी की 'कामायनी', और प्रेमशंकर रघुवंशी जी की 'देखो सॉप तक्षक नाग' इन तीनों कविताओं के 'नाट्यरूपान्तरों' पर विस्तार से आगामी अध्यायों में विचार किया जाएगा। इसके अलावा जिन कविताओं के नाट्यरूपान्तर हो चुके हैं उन्हीं का परिचय नीचे प्रस्तुत है-

2.13.1 बीसलदेव रासो - प्रभाकर क्षोत्रीय

नरपति नाल्ह की कृति 'बीसलदेव रासो' को प्रभाकर क्षोत्रीय ने अपने शब्दों से संवारा और कला मंदिर ग्वालियार ने उसे नाट्य रूप में प्रस्तुत किया। कमल वशिष्ठ का

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 124
2. वही - पृ.सं. 124

निर्देशन, श्याम अग्रवाल के सुमधुर संगीत आदि ने प्रस्तुति को सुकुमोल, दर्शनीय और सुदृढ़ बनाया। बाल विवाह जैसे सामाजिक कुरीतियों का दर्शकों पर सीधा संप्रेषण, इस नाटक के मूल में है। साथ ही आधुनिक भौतिकवादी सत्ता की ज़मीनी यथार्थ का बोध भी नाटक कराता है।

2.13.2 दर्द आएगा दबे पांव - शीला भाटिया

दिल्ली के हिन्दी-पंजाबी रंगमंच और हिन्दी रंगमंच के आपेरा तथा संगीत नाटकों के क्षेत्र में शीला भाटिया का स्थान महत्वपूर्ण है। आधुनिक उर्दू शायरी फ्रेंज की शायरी पर आधारित 'दर्द आएगा दबे पांव' नामक एक कठिन संगीत नाटक का निर्देशन करने की चुनौती को भी शीला जी ने स्वीकार किया। फेंज की लगभग सत्तर रचनाओं के ताने-बाने काल्पनिक चरित्रों को फिट करके और शायर के जीवन की कई जानी-पहचानी सच्ची घटनाओं के सहारे से 'दर्द आएगा दबे पांव' का आलेख स्वयं शीला जी ने तैयार किया, जो उन्हीं के कुशल निर्देशन में पेश भी हुआ। "यह नाटक कथ्य के धरातल पर शायर तथा मेहर और मलिका के सीधे प्रेम-त्रिकोणात्मक बिन्दु से आरंभ होकर देश के विभाजन एवं फ्रेंज की जेल यात्रा से होता हुआ दर्शकों - श्रोताओं को एक व्यापक और गहन जीवन अनुभव से जोड़कर इंसानी ज़िन्दगी के गंभीर अर्थों की तलाश करता है।"[1] यथार्थवादी किन्तु लचीले दृश्य-बंध का बहुत खूबसूरत इस्तेमाल निर्देशिका ने किया। फैज़ अहमद 'फ़ैज' के वैविध्यपूर्ण शायरी के भीतर छिपी नाटकीयता को 'दर्द आएगा दबे पांव' में शीला जी ने खुबसूरत से उजागर करके एक मोहक और समकालीन रंगमंच का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया।

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 118

2.13.3 तेरे मेरे लेख - शीला भाटिया

स्पेन के सुप्रसिद्ध कवि-नाटककार फेदरीको लोर्का की रचनाएँ 'नाटक में कविता' और 'कविता में नाटक' का सशक्त उदाहरण हैं। 1933 से 1936 के बीच लिखी गई लोर्का की विख्यात नाट्यत्रयी - 'ब्लड वैडिंग', 'यर्मा' और 'द हाऊस ऑफ बरनाडा एल्बा' दरअसल लोक-त्रासदी हैं जो स्त्री के असंतोष, विक्षोभ, दुःख-दर्द और दुर्भाग्य को अलग-अलग रूपों में रेखांकित करती हैं। सन् 1984 में शीला भाटिया ने लोर्का के 'ब्लड़ वैडिंग' को 'तेरे मेरे लेख' के नाम से खेला है। "आवेग भरे प्यार, दो ज़मींदार खानदानों की पुरानी दुश्मनी, ईर्ष्या और घृणा, ज़मीन-जायदाद का लोभ, श्रेष्ठता-बोध या प्रतिशोध-कारण कुछ भी हो, परिणाम सिर्फ एक है - विनाश। हिंसा की अर्थहीनता को प्रस्तुत करनेवाला यह नाटक गीत-संगीत और अपनी तीव्रता से परिपूर्ण एक अर्थवान रचना है।"[1] चन्द्रमा और मृत्यु जैसे गैर मानवीय चरित्रों को मंच पर लाकर लोर्का ने नाटक को एक नया आयाम देने की कोशिश की है जो प्रयोगधर्मिता का परिचायक है। शामा की सहेली, सेहरेवाली और बूढ़े फकीर की मौलिक कल्पना से शीला भाटिया ने स्थानीय परिवेश और रूपरंग को गहराया है।

2.13.4 अरण्य - सत्यदेव दूबे

बंबई के सुविख्यात अभिनेता-निर्देशक सत्यदेव दुबे ने डॉ. वसंत देव के 'अरण्य' कविता को मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दूबे ने इन्हें दृश्य-बंध, रूप विन्यास, प्रकाश संयोजन तथा सूत्रधार-नटी, आदि के ज़रिए 'नाटक' बनाने की कोशिश की है। "कृष्णा के स्नेह और मातृत्व के सम्मोहन में डूब गई यशोदा ने अपनी प्रेयसी-पत्नी के

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 121

उद्याम-प्यार को अतीत के अरण्य में निरर्थक भटकते - खोजते ब्रह्मराक्षस बने नेद की निराशा और पीड़ा को अमरीश पुरी ने अपनी सघन आवाज़ के जादू में बांधकर प्रभावशाली ढंग से पेश किया।"[1] ऊष्मा भरे शब्दों, रोचक बिंब-प्रतीकों और विस्फोटक स्वरों के माध्यम से यह एक सफल प्रस्तुतीकरण है।

2.13.5 हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी - हेमा सहाय

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जन्म-शताब्दी के अवसर पर देश भर में कई प्रकार के साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए। इसी सिलसिले में हेमा सहाय के निर्देशन में गुप्तजी की सुविख्यात रचनाओं पर आधारित एक उल्लेखनीय कार्यक्रम किया था जिसका नाम था 'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी'। इसमें 'भारत-भारती', 'साकेत', जयभारत, द्वापर, यशोधरा इत्यादि के पौराणिक चरित्रों को नई रंग रेखाएँ देने की कोशिश की गयी है। यह प्रस्तुति काव्य-पाठ और मंच-प्रदर्शन के बीच एक रचनात्मक सामंजस्य की तलाश थी। इसमें कविता की मूल आत्मा और विषय की मर्यादा की रक्षा करते हुए कम से कम नाटकीय तत्वों का अधिक से अधिक कल्पनाशील इस्तेमाल करके गुप्तजी को एक सटीक श्रद्धांजलि दी गई।

2.13.6 अब तक क्या किया - अनिल चौधरी

अनिल चौधरी ने मुक्तिबोध की कविताओं के आधार पर 'अब तक क्या किया' नाम से एक नाटक लिखा। "इस नाटक में मुक्तिबोध की अनेक कविताओं का संवादों में उपयोग करते हुए उनके साथ-साथ चलनेवाली पात्रों की चेष्टाओं और गतियों के द्वारा

---

1. डॉ. जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा - पृ.सं. 122

मुक्तिबोध की कविता की जटिल संवेदनाओं को साकार करने का प्रयास किया गया है।"[1] पागल, नेता, बुद्धिजीवी व्यक्ति, सैनिक, अफसर आदि पात्रों की परिकल्पना नाटककार ने अपनी ओर से की है पर उनके बीज मुक्तिबोध की कविताओं में निहित है।

2.13.7 नन्हें कंधे नन्हें पैर - अशोक भौमी

श्रीराम शर्मा की कविताओं पर आधारित अशोक भौमी का काव्य नाटक है 'नन्हें कंधे नन्हें पैर'। इस नाटक में श्रीराम शर्मा की विभिन्न कविताओं को उभारा गया है। पात्रों के विशिष्ट समूहन और उनके बीच में एक बच्चे की उपस्थिति की परिकल्पना आदि प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

2.13.8 मगध - गिरीश रस्तोगी

श्रीकान्त वर्मा की कविता 'मगध' को श्रीमति गिरीश रस्तोगी जी ने मंचित किया। यह काव्य-पाठ नहीं था, रंगमंच पर 'मगध' का प्रस्तुतीकरण था। "इसमें पहले कुछ विशेष कविताओं का चयन किया था, उन्हें पुस्तक से अलग एक क्रम और लय विन्यास दिया था। फिर उस पर बाकायदा अभिनेताओं से वाचन का, उच्चारण का, भंगिमाओं और लय विन्यास का अभ्यास कराया था - मुख्यतः यह समवेत वाचन से बँधी थी - लगभग सवा घंटे की प्रस्तुति! समवेत वाचन, वह भी अभिनय के साथ और मंच से पूरी रंगशाला तक कहीं भी खंडित हो जाता था पर स्वयं कलाकारों ने बदलते दृश्यों के साथ बदलते कंठ-स्वरों, आवेग, हास्य, दर्शकों से बातचीत, गतियों, समूहन द्वारा दुर्घटनाओं, युद्ध, खँडहर और मृत्यु के सन्नाटे को दिखाने में इतना श्रम किया और इतना 'इन्जवॉय' किया कि 'मगध'

---

1. डॉ. सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता - पृ.सं. 181

ने उन्हें कविता और रंगमंच के आपसी रिश्ते के प्रति सजग किया।"[1] यह एक ऐसा नाटक है जिसमें कविता की सघनता और उसका कवितापन ही मुख्य है।

2.13.9 अंधेरे में - विजय सोनी

मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' कविता को विजय सोनी ने अपने निर्देशन में एक नया आकार दिया। इसमें कविता की भाषा में गूँथी हुई अनन्त ध्वनियों, ध्वनि परिवर्तनों, मुद्राओं, शारीरिक भंगिमाओं से उसे एक नया रूप प्रदान किया। यह एक ऐसी कविता है जिस पर समय-समय पर अनेक प्रकार के मंचीय प्रयोग होते रहे हैं। भोपाल में अलखनन्दन ने अपने निर्देशन में इसे नितान्त भिन्न रूप में दृश्यात्मक आकार दिया। पटना में भी 'अंधेरे में' की कर्मभूमि औऱ संघर्ष को, जटिलताओं को मंच पर खोलने के प्रयास किये गये।

2.13.10 इतिहास तुम्हें कहाँ ले गया कन्हैया

रंगमंच, सिनेमा और टेलीविज़न की मशहूर कलाकार नादिरा ज़हीर बब्बर हिन्दी रंगमंच में अपने कलाकर्म और सक्रियता के कारण जानी जाती हैं। उन्होंने अपनी संस्था 'एकजुट' के माध्यम से रंगमंच के क्षेत्र में अनेक सराहनीय कार्य किए हैं। धर्मवीर भारती की कालजयी कृति 'अंधायुग' व 'कनुप्रिया' को मिलाकर नादिरा जी ने 'इतिहास तुम्हें कहाँ ले गया कन्हैया' नाटक बनाया। लेकिन तमाम अच्छाइयों के बावजूद यह सामान्य ही रहा।

इस प्रकार कविता का रंगमंच अपनी जटिलता और अपने विशिष्ट शिल्प और पद्धति के कारण पूर्व प्रचलित प्रयोगों से भिन्न है। सुलझे हुए निर्देशन और अनुभवी अभिनय

---

1. डॉ. गिरीश रस्तोगी - बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ.सं. 138

तथा कविता की सही समझ का उपयोग होने से निश्चय ही कविता के नाटकीय मंचन के माध्यम से उसकी संप्रेषणीयता को विस्तार दिया जा सकता है।

2.14 नाटक का नाट्यालेख

'नाटक का नाट्यालेख' ऐसा कहना थोडा विवादास्पद ही है। क्योंकि सबके मन में यही सवाल उभर आ जाएगा कि नाटक का नाट्यरूपान्तर यह कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर है "कितना कुछ एक साथ"।

2.14.1 कितना कुछ एक साथ

'कितना कुछ एक साथ' मोहन राकेश के तीन प्रमुख नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' तथा 'आधे-अधूरे पर आधारित नाट्यालेख है, जिसका गठन श्रीमति गिरीश रस्तोगी जी ने किया है। कथ्य एवं निर्वाह की दृष्टि से यह एकदम नया प्रयोग है। गिरीश जी के शब्दों में "यह नाट्यालेख मोहन राकेश के तीन प्रमुख नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' के आधार पर बना एक नया नाट्यलेख है जिसके केन्द्र में केवल तीन नारी पात्र हैं - मल्लिका, सुन्दरी और सावित्री। ये तीन अलग होते हुए भी इस आलेख में अलग नहीं हैं - आंतरिक रूप से गुंथी हुई हैं। निर्देशिका की दृष्टि से उन्हें नए संदर्भ और आयामों में देखती है जिसके लिए नायिका अर्थात् चौथे स्त्री पात्र की रचना की गई है। इसलिए यह न नाट्य रूपान्तर है, न इसमें कोई कथानक है न संपूर्ण पात्र।"[1] इस नाट्यालेख में मल्लिका, सुन्दरी तथा सावित्री को पुरुष दृष्टि से नहीं बल्कि स्त्री दृष्टि से देखा गया है। इन तीनों पात्र वही तथा वैसी ही नहीं है जैसी मोहन राकेश

---

1. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर - कितना कुछ एक साथ (निर्देशकीय वक्तव्य) - पृ.सं. 85

के नाटकों में हैं। यहाँ वे चुनौतीपूर्ण भंगिमा ग्रहण करती हैं। उनके द्वारा किए गए प्रश्न नारी में नारीत्व की सजग चेतना के जागरण के प्रश्न बन गये हैं। यह फर्क स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखने के कारण है। नेपथ्य कथन, कोरस, वाद्य एवं प्रकाश के उचित प्रयोग द्वारा मंच पर रंग-गतियों की रचना की गयी है। दृश्य तथा श्रव्य का ऐसा सटीक संयोजन है कि मंच पर मात्र एक अभिनेता के होते हुए भी पूरा दृश्य मूर्त हो जाता है।

2.14.2 एक घूँट

हिन्दी साहित्य और रंगमंच की दृष्टि से जयशंकर प्रसाद के नाटक हमेशा आलोचना के केन्द्र में रहे हैं। प्रसाद जी की 'एक घूँट' हिन्दी में प्रथम एकांकी के रूप में प्रतिष्ठित है। एकांकी कला और इतिहास से हटकर 'एक घूँट' पर कोई विचार नहीं हुआ। इस सिलसिले में डॉ. गिरीश रस्तोगी जी ने 'एक घूँट' को एक संशोधित रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। वस्तुतः 'एक घूँट' को या तो निबन्ध कहा गया या गोष्ठी या दार्शनिक प्रलाप या शुष्क वाद-विवाद। इसमें "संघर्ष या कहानी जैसी चीज़ न होते हुए भी इस अर्थ में जटिलता है कि वह प्रेम तत्व को, हृदय को और भारतीय समाज संस्कृति को प्रतिष्ठित कर रहे हैं - उस टकराव और सवालों को भी जो आधुनिकता और वैज्ञानिकता से आज भी उत्पन्न हो रहे हैं। आनंद और रसाल दोनों ही अधूरे और खोखले हैं। वनलता और प्रेमलता आंतरिक प्रेम को खोज रही है। मैंने इन्हीं अन्तर्निहित परतों को खोलने का प्रयास किया है।"[1] प्रायः यह नाटक एकरस लगता है। इसलिए निर्देशन में उसे तोडकर एक सार्थक उत्सुकता और रंगमंच की अपनी भाषा को खोजने की कोशिश की गयी है। इसका हर पात्र सांकेतिक और प्रतीकात्मक है।

---

1. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना - पृ.सं. 77

इस प्रस्तुति में गीत, संगीत और अभिनय को मुख्य आधार के रूप में लिया है और उन चरित्रों को भी उजागर किया है जिनको साहित्य में प्रायः महत्व नहीं दिया जाता - जैसे चुँदला और झाड़ूवाला। गीत के बारे में कहें तो इसमें 'कामना' नाटक और 'आँसू' काव्य से भी गीत लिये गये हैं। जो भी हो रंगमंच के क्षेत्र में यह बिल्कुल एक नया प्रयोग है। नाटक का नाट्यालेख भी अपने आपमें स्वतंत्र विचारों से अभिभूत है। फिर भी हम उसे नाट्यरूपान्तर नहीं कह सकते, एक नये प्रयोग के रूप में आत्मसात् कर सकते हैं।

निष्कर्ष

प्रयोगसीलता किसी भी कला धर्म की एक अनिवार्य शर्त है। साहित्य के लिए प्रयोग आवश्यक है क्योंकि प्रयोग के माध्यम से कथ्य और शिल्प के नये-नये आयाम खुलते हैं। यह साहित्य को अधिकाधिक प्रासंगिक बनाता है। नाटक एक प्रयोगमूलक कला है। हिन्दी के नये नाटकों ने कथावस्तु, चरित्र चित्रण, संवाद, शिल्प, वैचारिक बोध, अभिनय, निर्देशन, मंच परिकल्पना आदि सभी क्षेत्रों में प्रयोगशील प्रवृत्ति ग्रहण कर एक नयी रचनाभूमि तैयार की है। कथ्य के रूप में बुने जीवनानुभव शिल्प वैविध्य का निर्माण करता है। जब किसी नवीन शिल्प का जन्म होता है, नाट्य रचना विधान एक नवीन प्रक्रिया या प्रयोग से गुज़रता है। साहित्य के अन्य विधाओं जैसे उपन्यास, कहानी, कविता आदि से नाट्यरूपान्तरण करने की प्रवृत्ति इसमें महत्वपूर्ण हैं। इसके अंतर्गत बहुमुखी प्रतिभावान लेखकों की प्रमुख कहानियों का, चर्चित एवं प्रासंगिक उपन्यासों का, मशहूर एवं लोकप्रिय कविताओं का नाट्यरूपान्तर बने हैं। विधा जो भी हो आज के रंगकर्मी उससे लाभ उठाते रहते हैं। क्योंकि समाज से जुडने का यही सबसे सशक्त माध्यम है। इस दृष्टि से देखे तो प्रेमचन्द, भीष्म साहनी जैसे मशहूर कहानिकारों की कहानियों का नाट्यरूपान्तर उपलब्ध

है। कई उपन्यासों का भी रूपान्तरण हुए हैं। नाट्यरूपान्तर के लिए कविता का क्षेत्र भी अन्य नहीं। रंगमंच के व्यापक प्रचलन और नाटकों की मांग उपन्यासों, कहानियों, कविताओं के नाट्यरूपान्तरण के लिए प्रेरित कर रहे हैं। ऐसे नाट्यरूपान्तरण से हिन्दी नाट्य रंग जगत नवीन भावों, शैलियों व विचारों से परिचय प्राप्त कर रहा है।

❖❖❖

तीसरा अध्याय

कहानी का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

तीसरा अध्याय
कहानी का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में प्रयोग का महत्व निर्विवाद है। प्रयोग का संबंध युग की नई प्रवृत्तियों और आनेवाले कल की पहचान से है। एक दृष्टि संपन्न रंगकर्मी अपने समय के भविष्य को उद्‌घाटित करता है तथा सांस्कृतिक रचना कर्म के क्षेत्र में आनेवाली प्रवृत्तियों को दिशा दे सकता है। प्रयोग तो परंपरा की प्रतिक्रिया है, फिर भी वह परंपरा पर आश्रित है। जो कल प्रयोग था वह आज परंपरा है और जो आज प्रयोग है वह कल परंपरा बन सकती है। समकालीन नाट्य प्रयोग यथार्थ से अयथार्थ की दिशा में अग्रसर होने का संकेत देता है, जो आज नवीन नाट्य प्रयोगों के माध्यम से फिर से अपने लिए एक सही 'नाट्य' खोज रहा है। इसी खोज की परिणति है 'कहानी का रंगमंच'।

कहानी एक नैरेटिव माध्यम है। नैरेशन नाटक में भी होता है, लेकिन वह मूलतः संवादों के माध्यम से होता है। कहानी के लिए अलग से संवादों का होना कोई ज़रूरी शर्त नहीं है। कहानी का अपने आपमें नैरेटिव होना ही एक संवाद है। कहानी में मात्र संवादों का होना उसे नाटक नहीं बना देता। कहानी में वर्णन के लिए जगह है जबकि नाटक में नहीं। लंबे वाक्यों, वर्णनों के बदले नाटक में छोटे-छोटे वाक्य, वाक्यांश, शब्द, आवाज़, प्रश्नचिह्न आदि का महत्व होता है। नाटक का मूल संवाद है। नाटक की बनावट और बुनावट दोनों संवाद पर आश्रित है। नाटक की कथावस्तु और चरित्र निर्माण में संवाद का

योगदान महत्वपूर्ण है। उसी प्रकार ध्वनि संकलन, प्रकाश योजना, दृश्य-बंध आदि भी नाट्य शिल्प के अंतर्गत आ जाते हैं।

कहानी का रंगमंच भारतीय रंगमंच के इतिहास में एक नई अवधारणा और रंगदृष्टि है। कहानी मंचन के संबद्ध में हृषिकेश सुलभ का कथन है कि "इन कहानियों को देखते हुए साफ-साफ पता चलता है कि यह एक खोज की प्रक्रिया है.... जीवन को जानने की उत्सुकता है, और है रहस्य की तरह दिखते मनुष्य के भीतर का संसार।"[1] कहानी मंचन की विधा ने नाटकों के मंचन की प्रचलित प्रविधियों से कुछ अलग हटकर अपने लिए नई युक्तियों की तलाश करते हुए कई प्रयोग किए हैं। यह मनोरंजन या तकनीकी युक्तियों के चमत्कार से अलग अभिनेता को केन्द्र में लाते हुए, रंगमंच को एक नया आयाम और अर्थ देने की सफल कोशिश है। इस रंगप्रयोग में देखी-सुनी जा रही कहानी अपने उप-पाठ की आंतरिक लय की पुनर्रचना बनती है। दरअसल इसमें कहानी के उस अदृश्य मर्म को पकड़ने की कोशिश है, जो कहीं एक-दो शब्दों या वाक्यों के बीच उपस्थित रहता है। कहानी सम्राट प्रेमचन्द से लेकर उदयप्रकाश तक की कहानियों को रूपान्तरकारों ने नये नाट्य के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

3.1 प्रेमचन्द की कहानियों के नाट्यरूपान्तर

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी का स्थान सर्वोच्च है। कथा साहित्य के क्षेत्र में वे युग-प्रवर्तक है। उन्होंने अपनी कृतियों में तत्कालीन सामाजिक जीवन का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह घोषणा की - "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे,

---

1. हृषिकेश सुलभ - रंगमंच का जनतंत्र - पृ.सं. 191

आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिलें, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य - प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहने का अधिकारी नहीं।"[1] उन्होंने सच्चे अर्थ में मानवोपयोगी साहित्य का सृजन किया। उनकी कहानियों का चित्रपट विशाल है। जिसमें किसान-ज़मींदार, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र, नौकर-मालिक, हिन्दू-मुसलमान, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक सभी विद्यमान हैं।

प्रेमचन्द जी की कहानियाँ इतनी लोकप्रिय है कि जिन पर भर फिल्में बनीं, जिनके नाट्यरूपान्तरों का प्रदर्शन हुआ। ये कहानियाँ देश भर के स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई जाती हैं और बार-बार विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। कहानी प्रेमियों ने प्रेमचन्द जी की लगभग सभी कहानियाँ अवश्य पढ़ी होंगी। नाटक जैसे दृश्य-श्रव्य माध्यम से इसे अधिकाधिक लोगों तक पहूँचाया जा सकता है। हिन्दी के बहुत सारे लेखकों ने उनकी कहानियों को नाट्यरूप प्रदान किया, जिनमें चित्रा मुद्‌गल, राजेन्द्र कानूनगो जैसे साहित्यकारों का नाम उल्लेखनीय हैं।

व्यास सम्मान से पुरस्कृत हिन्दी की प्रतिष्ठित कथाकार है चित्रा मुद्‌गल। उनकी कहानियाँ मनुष्यता और ज़िन्दगी की व्यक्त व्याख्या कहनेवाली हैं। उनकी कहानियों में आज की बिखरी हुई ज़िन्दगी की तस्वीर देखी जा सकती है। उनकी कहानियों के संबंध में मधुरेश की यह टिप्पणी ध्यान देनेवाली है - "क्लब, दोस्तों की सोसाइटी, ताश और पेग या फिर एक सुनिश्चित दूरी से देखी गयी निम्नवर्ग की ज़िन्दगी से संबन्धित कहानियाँ एक निश्चित ढर्रे को तो बेशक तोडती हैं, लेकिन उनकी संवेदना प्रायः ही पत्रकारिता की सतही और

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार - पृ.सं. 10

काम चलाऊ तफसीलों में ढल जाती हैं।"[1] प्रेमचन्द जी की कहानियों की लोकप्रियता देखकर चित्रा जी ने उनकी कुछ कहानियों को 'बूढी काकी तथा अन्य नाटक', 'सद्गति तथा अन्य नाटक' तथा 'पंच परमेश्वर तथा अन्य नाटक' नाम से रूपान्तरित किया।

हिन्दी के युवा कवि एवं रंगकर्मी के रूप में राजेन्द्र कानूनगो का नाम महत्वपूर्ण है। वे स्वयं अभिनेता और निर्देशक है, इसलिए मंच की खूबियों से वाकिफ भी है। उन्होंने प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु जैसे महान कहानिकारों की कहानियों को नाट्यरूप देने का सफल प्रयास किया है और साथ ही साथ उनके द्वारा उन नाटकों का सफल मंचन भी हुए हैं। कोलकत्ता के रंगप्रेमी दर्शकों ने उनकी खूब सराहना भी की है।

3.1.1 पंच परमेश्वर

'पंच परमेश्वर' प्रेमचन्द जी की शुरुआती दौर की कहानियों में शायद सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध है। 'पंच की आत्मा में ईश्वर या खुदा का वास होता है, पंच ही सर्वस्व है' यह विचार कहानी में मुख्य रूप से परिलक्षित हो उठता है। यह आदमी के सोये हुए जमीर को जगानेवाली कहानी है। कहानी के प्रमुख पात्र है जुम्मन शेख और अलगू चौधरी। दोनों के बीच में खानदानी मैत्री है और साझे में खेती-बाड़ी भी होती है। जुम्मन की खाला (मौसी) अपना सब कुछ जुम्मन के नाम करके उसकी आश्रिता के रूप में उसके साथ रहती है। जुम्मन की पत्नी खाला के साथ बुरा व्यवहार करती है। किन्तु जुम्मन उसको अनदेखा करता है। सालों तक खाला ने यह सह लिया। अंत में वह जुम्मन के खिलाफ पंचायत बिठाती है।

---

1. मधुरेश - हिन्दी कहानी का विकास - पृ.सं. 26

पंचायत बैठाने हेतु वह बुढ़िया जर्जर हालत में भी पूरे गाँव में घर-घर जाकर अपनी विपदा के बारे में कहती है। परन्तु सब लोगों ने बहाने बनाकर उस बुढ़िया की मदद करने से इंकार कर दिया। खाला अलगू चौधरी के पास भी जाती है। परन्तु अलगू साफ शब्दों में कहता है कि उसके नाते वह जुम्मन से बिगाड़ नहीं करेगा। इस पर बुढ़िया अलगू से पूछता है कि 'ईमान से बढ़कर क्या कोई दोस्ती होती है?" खाला का यह कथन अलगू के हृदय में चुभ जाता है।

पंचायत बैठती है। खाला अलगू को पंच के रूप में चुनती है। जुम्मन मन ही मन प्रसन्न होता है कि अलगू का फैसला उसके पक्ष में होगा। दोनों ओर के वाद-विवाद सुनकर अलगू, जुम्मन के खिलाफ फैसला लेता है। मतलब यह है कि जुम्मन शेख अपनी खाला को मासिक खर्च देना उचित है और यही पंच की फैसला है। जुम्मन चकित रह जाता है। उसकी और अलगू की पुरानी मैत्री टूट जाती है। संयोगवश एक अन्य संदर्भ में अलगू को समझू साहू के खिलाफ पंचायत बुलानी पड़ती है। अलगू से खरीदे बैल का दाम चुकाने से समझू इंकार कर रहा था। इस बार पंच के रूप में जुम्मन शेख को चुनाया जाता है। जुम्मन शेख सालों से अलगू से प्रतिशोध लेने की सोच में था। आज उसे प्रतिशोध का अवसर मिल जाता है। वह पंच के आसन पर बैठता है और फैसला अलगू के पक्ष में देता है। पंच द्वारा अंत में यह निर्णय लिया जाता है कि समझू साहू को बैल की उचित कीमत देनी होगी। जुम्मन शेख जब पंच के पद पर आसीन हुआ तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में पंच के मुँह से जो वाणी निकलती है वह स्वयं परमेश्वर की मुँह से निकलनेवाली है। पुश्तैनी मैत्री फिर बहाल हो जाती है। इस तरह एक नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा इस कहानी में आद्यन्त परिलक्षित हो उठती है।

3.1.2 पंच परमेश्वर नाट्यरूपान्तरण

प्रेमचन्द जी की 'पंच परमेश्वर' कहानी का नाट्यरूपान्तरण चित्रा मुद्गल जी ने किया है। कहानी के समान नाटक में भी जुम्मन शेख और अलगू चौधरी की गाढ़ी मित्रता और उनसे जुड़ी घटना-प्रसंगों को उभारा गया है। 'पंच परमेश्वर' कहानी सात भागों में विभाजित है। जबकि नाट्यरूपान्तर में मुख्यतः छे दृश्य हैं। कहानी की शुरुआत जुम्मन और अलगू चौधरी के बचपन, उनकी दोस्ती, पारिवारिक जीवन आदि से हुई है। कहानी में विस्तार से इसका जिक्र हुआ है, पर नाटक इसकी थोड़ी सी सूचना देते हुए आगे की ओर बढ़ता है। नाटक का घटना स्थान साठ-सत्तर वर्ष पूर्व का गाँव है। जिसमें मुख्य रूप से अलगू चौधरी और जुम्मन शेख के घर, गाँव की गली-गलियारे तथा पेड़ के नीचे उपस्थित पंचायत का ज़िक्र किया गया है।

नाटक का पहला दृश्य जुम्मन शेख के मकान से शुरू होता है। वहाँ हमारा परिचय जुम्मन की खाला से होता है। जुम्मन की खाला, जुम्मन और उसकी पत्नी करीमन के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से रुष्ट है। नाटक में खाला कहती है "और कितना मुँह खेलूँ? क्या तुम नहीं सुनते? रूखी-सूखी रोटी थाली में पटकते तुम्हारी बीवी कैसी खरी-खोटी, कडुवी बातें सुनायी रहती है?"[1] अंत में खाला जुम्मन के खिलाफ पंचायत बुलाने का निर्णय लेती है। इस पर जुम्मन का कहना है "ज़रूर जाओ खाला! (स्वतः) किसमें इतना बल है जो मेरा सामना करे। आसमान के फ़रिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे नहीं!"[2] अगला दृश्य खाला और अलगू के बीच के संवाद से सुरू होता है। काला लाठी ठकठकाती हॉफती सी

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 26
2. वही - पृ.सं. 47

चल रही है। झुकी कमर की वजह से उसे चलने में कष्ट हो रहा है। अलगू के दरवाज़े पहूँचकर वह उसे पुकारती है और पंचायत में आने का अनुरोध करती है। वह अलगू से कहती है "अपनी विपदा तो सबके आगे से आई। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हाँ, हूँ करके टाल दिया, किसी ने उल्टे मुझी पर वार कसे। कहा-कब्र में दाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा दिन; पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए खाला? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेती-बारी से क्या काम? किसी-किसी ने तो मज़ाक में ही बात टाल दी। अब आने न आने का अख्तियार उनको है।"[1] परन्तु अलगू साफ शब्दों में कहता है कि "खाला, तुम तो जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढी दोस्ती है। यों आने को आ जाऊँगा खाला, पर पंचायत में मुँह न खेलूँगा।"[2] हताश खाला अलगू से सिर्फ इतना ही कहती है "बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।"[3] ग्रामीण लोग पंच पर अडिग विश्वास रखनेवाले थे। पंचायत का फैसला सबके लिए मान्य होता था। खाला का वह विश्वास अलगू के हृदय में चुभ जाता है।

पंचायत की गहमागहमी से तीसरा दृश्य शुरू होता है। आनेवाले लोग एक दूसरे से सलाम और 'जुहार' कर रहे हैं आपस में हाल चाल पूछ रहे हैं। जुम्मन और खाला की दलीलें सुनने के बाद अलगू जो पंच है वह जुम्मन के खिलाफ फैसला देता है - "जुम्मन शेख, पंचों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीतिसंगत मालूम होता है कि खाला

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 26
2. वही - पृ.सं. 47-48
3. वही - पृ.सं. 49

जान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि उन्हें माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही पंचों का फैसला है। मगर जुम्मन को खर्च होना मौज़ूद होता है कि खाला जान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि उन्हें माहवार खर्च दिया जाए। बस, यही पंचों का फ़ैसला है। मगर जुम्मन को खर्च देना मंज़ूर न हो तो दानपत्र (हिब्बानामा) रदद समझा जाए।"[1] धर्म और न्याय की जीत को लेखिका ने रामधन मिश्र के कथन द्वारा यों व्यक्त किया है कि दूध का "दूध, पानी का पानी कर दिया। दोस्ती, दोस्ती की जगह है भैया, मगर धर्म का पालन करना मुख्य है।"[2] इस पर एक ग्रामीण का कहना है "दद्दा, ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी टिकी हुई है, वरना कब की रसातल को चली गई होती।"[3] कहानी की एक-एक घटना को संवादों के ज़रिए बहुत ही प्रभावशाली ढंग से दर्शकों तक पहूँचाने का कार्य रूपान्तरकार ने किया है।

कहानी में समझू साहू द्वारा एक बैल पर किए गए अत्याचारों का चित्रण है उसे नाटक में पूरा दृश्य बनाकर बहुत ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। समझू साहू ने बैल से इतना अधिक काम करवाया कि बैल एक दिन स्वर्ग सिधार गये। जैसे-बैल पर संटी चलाते हुए समझू साहू का कथन है "राम, राम पियरवा! (बैला की सस्ती पर चिढकर) तू सुस्त क्यों हो रहा बे? ऐसे मटरा रहा जैसे न्यौते में कहीं जा रहा हो! अभी चार कोस का रास्ता पडा हुआ है और चौभी खेप मंडी से लानी है। ऐसा मटराएगा तो हो गई समझू साहू की गल्लेदारी! हे ऽऽऽ हुर्र, हुर्र।"[4] वह बडी निर्दयता से बेचारे बैल पर संटी

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 21-22
2. वही - पृ.सं. 52
3. वही - पृ.सं. 52
4. वही - पृ.सं. 53-54

चलाता है और बैल नीचे गिर जाता है। समझू बाँकला हो उठता है - "सत्यानाशी सैकडों का नुकसान कर दिया। अब आँखें उलट मुँह से फेचुकुर काहे निकल रहा? (संटी से बेतहाशा पीटता है) उठ, उठता क्यों नहीं! उठ नहीं तो नथुनों में लाठी घुसेड़ दूँगा। (बैल का छटपटाता आर्त स्वर) ससुरा बीच रास्ते में ही मर रहा, मरना था तो घर पहूँचकर मरता न!"[1] समझ साहू दम तक उसका हड्डी तोडता रहा। जब यह दृश्य मंच पर दर्शकों के सामने घटित होता है तब दर्शक का भावविभोर होना अनिवार्य ही है। नाटक की सफलता यही है।

'पंच परमेश्वर' नाटक में प्रत्येक पात्र का परिचय हमें संवादों के ज़रिए प्राप्त होता है। समझू साहू जैसे कुटिल एवं निष्ठूर आदमी के चरित्र को व्यक्त करने के लिए लेखिका ने कुछ ऐसे संवादों को जोडा है जो बहुत ही प्रभावशाली नज़र आता है।

"अलगू : मैंने तो तंदुरुस्त छिपाही बैल दिया था।

समझू साहू : मुर्दा बैल दिया था। दाम माँगते लाज नहीं आती? सत्यानाशी बैल गले में बाँध, आँखों में धूल झोंकने की कोशिश की है तुमने। मूरख बनाया हमें। मगर हम ऐसे बुद्धू नहीं। बनिया हैं बनिया। पहले जाकर किसी गड़हे में मुँह धो आओ, तब लेना दाम बैल का!"[2]

ग्रामीण जनता की अपनी सामजिक व्यवस्था है और उनके लिए पंच ईश्वर के समान है। प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' कहानी इस कथन का स्पष्ट प्रमाण है। इस विश्वास को नाटक में आदि से अंत तक सुरक्षित रखने का प्रयास चित्रा जी की ओर से हुआ है।

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 54
2. वही - पृ.सं. 55

नाटक में जुम्मन का कहना है "पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे कुछ नहीं सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया, पंच की जुबान से खुदा बोलता है....।"[1] जुम्मन स्वीकार करता है कि उसके मन में कलुष था परंतु पंच के आसन पर बैठते ही वह धुल गया।

चित्रा जी ने पूरी ईमानदारी के साथ प्रत्येक पात्र का गठन किया जो पूरी तरह से ग्रामीणता में विलीन है। जुम्मन शेख, अलगू चौधरी तथा खाला नाटक के प्रमुख पात्र हैं। गौण पात्र के रूप में समझू साहु, रामधन मिश्र, समझू साहू की पत्नी सहुआइन आदि को रखा गया है। इसके अलावा पाँच पंच लोग और छह ग्रामीण लोगों का जिक्र भी नाटक में हुआ है।

नाटक की भाषा कहानी की तरह ही है। ज्यादातर ग्रामीण भाषा का प्रयोग ही हुआ है। जैसे एक ग्रामीण का कहना है "बैल तो कर्रा छपाही है। कहाँ मिल गया इतना छष्ट-पुष्ट बैल, समझू दद्दा?"[2] 'कचहरी', 'खिदमत', 'फेचुकुर', 'वायदाखिलाफी' जैसे शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इसके अलावा नाटक में 'दूध का दूध पानी का पानी' जैसे मुहावरे युक्त वाक्यों का प्रयोग भी हुआ है जो ग्रामीणता का एहसास दिलाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

नाटक में प्रत्येक दृश्य के अंत में संगीत की सूचना दी गयी है लेकिन ज़्यादा प्रस्तुतीकरण नहीं। एक-एक दृश्य के अंत में कोष्ठक में दिया गया है कि (लोकवाद्य की धुन), ('कोई ग्रामीण लोकधुन')। याने बिहार तथा उत्तरप्रदेश की लोकधुने मंचन करते समय उपयुक्त कर सकता है। नाटक में नाटककार ने जिस मुद्दे को उठाया है वह हमारे

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 58
2. वही - पृ.सं. 53

यथार्थ जीवन पर आधारित है। रूपान्तरकार ने यह नाटक यथार्थवादी रंगमंच को आधार बनाकर लिखा है।

नाटक के एक संदर्भ में नेपथ्य ध्वनि और स्वतः कथन का प्रयोग है। अलगू का कथन है : "(स्वतः) खाला नहीं समझ सकेंगी मेरी मजबूरी! (नेपथ्य से) सहसा एक गिलास के टूटने की ध्वनि के साथ खाला का वाक्य गूँजता है 'बेटा अलगू, क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे?"[1] इसी वाक्य की अनुगूँज थोडी देर तक रह जाती है। इसके अलावा नाटक में ग्रामीण परिवेश की गहमागहमी को प्रस्तुत करने के लिए बीच-बीच में पक्षियों की चहक, बैलगाडियों की चक्कों की चर्रमर्रा शब्द आदि का जिक्र भी हुआ है।

3.1.3 सवा सेर गेहूँ

'सवा सेर गेहूँ' प्रेमचन्द की बहुचर्चित कहानियों में से एक है। कहानी में प्रेमचन्द का स्वानुभूत यथार्थ भी है और सामती व्यूह रचना में गिरे बेबस भारतीय गाँवों की अपनी सच्चाई भी है। किसान के मज़दूर बनने की त्रासदी इस कहानी का मूल प्रतिपाद्य है। प्रस्तुत कहानी में गाँव के महाजन अनपढ़ धर्मभीरू निम्न जाति के लोगों का आर्थिक शोषण किस प्रकार करते हैं उसे यथार्थ ढंग से उभारा गया है। भारतीय किसान की संस्कारबद्धता, धर्मभीरुता, अज्ञान, ईमानदारी और नैतिकता इस कहानी के मुख्य विषय है।

कहानी का नायक है शंकर, जो एक कुरमी किसान था। धर्मभीरु शंकर के घर में संयोगवश संध्या समय एक साधु महात्मा के पदार्पण से कहानी शुरू होती है। घर में महात्मा के सत्कार के लिए कुछ भी न होने के कारण शंकर गाँव भर गेहूँ के आटे के लिए चक्कर लगाता है। अंत में वह गाँव के विप्रजी के घर से सवा सेर गेहूँ उधार में लाता है

---

1. चित्रा मुद्गल - पंच परमेश्वर - पृ.सं. 48

और महात्मजी को भोजन करवाता है। विप्रजी साल में दो बार खलिहानी किया करता था। शंकर खलिहानी में पंसेरी भर गेहूँ दिया करता था। उस साल शंकर ने सोचा कि सवा सेर गेहूँ के बदले खलिहानी से काफी ज़्यादा डेढ़ पंसेरी गेहूँ दे देगा और इस प्रकार चैत के महीने में शंकर ने विप्र महाराज को डेढ़ पंसेरी गेहूँ दे दिया और अपने को उत्रृण समझ लिया।

इस प्रकार सात साल गुज़र जाते हैं। इस दौर में विप्रजी विप्र से महाजन हो जाता है, शंकार किसान से मज़दूर। इस अरसे में महाजन के खाते में सवा सेर गेहूँ साढ़े पाँच मन हो गया। एक दिन विप्रजी उस उधारी को ब्याज समेत शंकर से माँगने आता है। शंकर के लाख कथन उन पर बेअसर ही पडता है। विप्रजी परलोक में भी उससे अपना पैसा उगाह देने की धमकी देता है। तीन साल बाद फिर एक दिन पंडित जी महाराज शंकर को बुलाकर उसे हिसाब दिखता है कि उसके पंद्रह रुपये अब 120 रुपये हो गए हैं। उसने ब्राह्मण का वह कर्ज चुकाने के लिए कमर तोड मेहनत की, लेकिन नाकाम रहा। अंत में ब्राह्मण ने शंकर के सामने अपना बंधुआ मज़दूर बनकर कर्ज चुकाने का प्रस्ताव रखा और धर्मभीरू शंकर उसे स्वीकार कर लिया। शंकर ने विप्रजी के यहाँ बीस साल तक गुलामी की। इसके बाद वह इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। लेकिन एक और बीस रुपया अभी तक उसके सिर पर सवार थे। शंकर की मृत्यु के बाद विप्रजी ने उसके बेटे की गर्दन पकड़ी। शंकर का बेटा आगे विप्रजी का बंधुआ बन जाता है। यहाँ कहानी समाप्त हो जाती है। प्रेमचन्द पाठकों को बताते हैं कि जो कुछ उन्होंने लिखा है कहानी नहीं, सच्ची घटना है।

3.1.4 सवा सेर गेहूँ - नाट्यरूपान्तर

'सवा सेर गेहूँ' कहानी का नाट्यरूपान्तरण चित्रा मुद्गल जी ने उसी नाम से किया है। 'सवा सेर गेहूँ' कहानी छः भागों में विभाजित है। जबकि नाट्यरूपांतर में मुख्यतः

सत्रह दृश्य हैं। नाटक का घटना स्थान साठ-पैंसठ वर्ष पहले का गाँव है। नाटक का पहला दृश्य शंकर के घर में साधु महात्मा के पदार्पण से होता है। वहाँ शंकर और उसकी पत्नी कमला महात्मा के सत्कार करने के लिए घर में कुछ भी न होने के कारण चिंतित है। शंकर गाँव भर में गेहूँ के आटे के लिए चक्कर लगाता है। दूसरा दृश्य शंकर द्वारा रामेश्वर के घर का दरवाज़ा थपकाने से होता है और कहा-

"शंकर : हमारे घर एक सिद्ध पुरुष पधारे हैं। रामेश्वर बाबू। उन्होंने भोजन की इच्छा प्रकट की है। घर पर गेहूँ का आटा नहीं है। गाँव में कई घर डोल आया। किसी के घर गेहूँ का आटा न मिला। बडा संकट है। सेर खाँड़ आटा आप उधार दे दो। जल्दी ही लौटा दूँगा।

रामेश्वर : अब अपनी ढँकी-मुँदी क्या खेलूँ शंकर, महीनों से जोंधरी (ज्वार) पर गुज़ार हो रही। होता तो ज़रूर दे देता। मज़बूरी है। ऐसा करो, विप्र महाराज के पास चले जाओ। पंडित बाबा हैं। महीन खाते हैं। उनके पास ज़रूर मिल जाएगा गेहूँ का आटा!"[1]

ऐसी स्थिति में शंकर ने विप्रजी के घर से सवा सेर गेहूँ उधार में लाता है और महात्मजी को भोजन करवाता है।

नाटक में नाटककार ने बडी सूझ-बूझ के साथ विप्र महाराज और धर्मभीरु शंकर के चरित्र को उभरा है। यह दृश्य सात साल बाद विप्र महाराज द्वारा शंकर के पास आने से होता है। और बोला कि "कल आकर के अपने बीज-बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यही

1. चित्रा मुद्‌गल - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 70

साढे पाँच मन गेहूँ कबके बाकी पडे हुए हैं और तू देने का नाम ही नहीं लेता! हज़म करने का मन है क्या?"[1] यह कहकर विप्रजी ने उस सवा सेर गेहूँ का जिक्र किया जो सात वर्ष पूर्व शंकर को दिए थे। शंकर यह सुनकर अवाक रह गया। वह विप्र महाराज से कहता है-

"शंकर : महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर, दो-दो सेर दिया है। अब आप, आज साढ़े पाँच मन गेहूँ माँगते हैं, मैं कहाँ से दूँगा।

विप्रजी : (उसी कुटिलता के साथ) लेखा जौ-जौ, बखशीस सौ-सौ। तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। तुम्हारी खुशी। एक ही जगह चार पंसेरी दो! उधार तुमने सवा सेर गेहूँ लिए थे, तुम्हारे नाम बही में सवा सेर के सूद समेत साढे पाँच मन लिखा हुआ है। जिससे चाहो, हिसाब लगता लो! दे दो, तो तुम्हारा नाम छेक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा!"[2]

मज़दूर बनते ही समाज में किसान का दरजा गिर जाता है इसका सटीक चित्रण नाटक में हुआ है। विप्रजी शंकर पर बंधुआ गुलाम बन जाने के लिए दबाव डालता है-

"विप्रजी : तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मज़ूरी करने जाते ही हो। मुझे भी खेती के लिए मज़ूर रखना ही पड़ता है। सूद में तुम हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो, भूल दे देना!

सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक कि तुम मेरे रुपये न चुका दो।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 72
2. वही - पृ.सं. 73

शंकर : (गहरी चिन्ता से पड़कर) महाराज यह तो जन्म-भर की गुलामी हुई।

विप्रजी : गुलामी समझो चाहे मज़दूरी समझो। मैं अपने रुपये भराए बिना तुमको कभी न छोडूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लडका भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की बात दूसरी है।"[1]

कहानी के समान यह नाटक भी महाजनी सभ्यता के शोषणोन्मुखी चेहरे को उद्‌घाटित करने में सफल है।

'सवा सेर गेहूँ' कहानी में संवाद मौजूद है। लेकिन कहानी से भिन्न होकर नाटक में बहुत सारे संवादों को जोड दिया गया है। नाटक में महात्मजी और शंकर के बीच के संवाद, शंकर और कमला के बीच के संवाद, शंकर और रामेश्वर के बीच के संवाद, विप्रजी और फुलवा के बीच के संवाद, ग्रामीण लोगों के बीच के संवाद, बुधवा और विप्रजी के संवाद, ऐसे अनेक संवादों के प्रसंगों को जोड़ दिया गया है। ये संवाद गाँव के प्रत्येक लोगों की मानसिकता, उनकी परिस्थितियाँ आदि को पता करने में फलकारिणी सिद्ध होते हैं। विप्रजी के बारे में एक ग्रामीण का कहना है "नियाव नहीं किया पंडित जी ने विपदा के मारे शंकरवा के संग! सवा सेर गेहूँ के बदले साढ़े पाँच मन गेहूँ? अँधेरगर्दी है भैया, अँधेरगर्दी!"[2] नाटक के अंतिम दृश्य में बुधवा और विप्र महाराज के बीच का संवाद महाजनी सभ्यता की कुटिल नीति की ओर इशारा करता है। जैसे-

"बुधवा : पाँच लागी पंडित जी, आपने हमें बुलाया?

विप्रजी : बुलाना ही पड़ा। तू तो ऐसे चुप्पी साधे बैठा हुआ है बुधवा, जैसे तेरे बाप का ऋण चुकाने, स्वर्ग से कोई देवता उतार कर आएगा? क्यों?.... तेरा बाप

---

1. चित्रा मुद्‌गल - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 80
2. वही - पृ.सं. 75

शंकर, बीस साल में भी हमारा ऋण नहीं उतार पाया। अब तू तो मेहनत से काम कर ऋण उतारने की सोच?
सुन, खलिहान का सारा गेहूँ आज बेरो में भर जाना चाहिए। और अगर काम पूरा न हुआ, तो रात खलिहान में ही काटनी होगी तुझे। समझा?"[1]

इस संवाद का जिक्र कहानी में नहीं हुआ है। नाटक और कहानी के अंत में भी भिन्नता है। कहानी का अंत कुछ इस प्रकार है कि जहाँ कहानीकार प्रेमचन्द जी पाठकों को संबोधित करते हैं कि "पाठक! इस वृत्तान्त को कपोल-कल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है।"[2] नाटक का अंत इससे भिन्न है। वहाँ बुधवा विप्र महाराज से मिलने आता है और विप्रजी उसे अपना बंधुआ मज़दूर बना देता है।

प्रेमचन्द जी ने इस कहानी में कथा कहने की नितान्त परंपरागत तथा जानी-बूझी शैली को अपनाया है। नाटक में इसी कथा शैली का प्रयोग नहीं किया गया। यथार्थवादी शैली में ही चित्रा जी ने इस नाटक का गठन किया है। कहानी की अपेक्षा नाटक में गाँववासी रामेश्वर, नौकर फुलवा, दो-तीन ग्रामीण पात्रों की अधिकता है।

स्वतः कथन नाटक की एक और खूबी है। नाटक में दो-तीन बार स्वतः कथन का प्रयोग हुआ है-

"शंकर : (स्वतः) जितने घर अपनों के थे, सभी को टोइ आया। किसी ने रुपये न दिए। इसलिए नहीं कि उनका मेरे ऊपर विश्वास नहीं है या देने के लिए उनके पास

---

1. चित्रा मुद्गल - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 83
2. प्रेमचन्द - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 124

> रुपये नहीं है; सच्चाई तो यह है, पंडित जी के शिकार को छेड़ने की हिम्मत, किसी में नहीं है। भला, मेरी सहायता को आगे आ, कौन उनकी दुश्मनी मोल ले?'[1]

नाटक में प्रत्येक दृश्य के अंत में संगीत की सूचना दी गयी है। इसमें करुण संगीत एवं लोकधुन का प्रयोग हुआ है जिससे ग्रामीणता की झलक उभारने में लेखिका सक्षम हुई है। इसके अलावा नाटक में नेपथ्य राग का खूब इस्तेमाल हुआ है। ग्रामीण परिवेश की छटपटाहट को दिखाने के लिए नेपथ्य से गाय के रंभाने का स्वर, सानी खाते बैलों के गले की घंटियों का स्वर, बैलगाड़ी के चलने का स्वर, बकरियों की मिमियाहट, बच्चों के खेलने का शोर, किसी स्त्री के जाप करने का धीमी स्वर, राम-नाम सत्य है आदि स्वरों का प्रयोग भी की है।

नाटक और कहानी की भाषा दोनों समान है। दोनों में ग्रामीण परिवेश को दिखाने के लिए ग्रामांचलिक भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटक में ग्रामीण-2 का कहना है "सबै मिल के पंडित जी का लत्ता लेने न चलें कि महाराज, ऐसी ज्यादती न करो। जल्लाद न बनो। मानुष के भेस में मानुष रहौ!"[2] इसके अलावा 'हज़म', 'मुहलज़ा', 'बिलानागा', 'जंग' जैसे उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग भी नाटक में हुआ है।

3.1.5 सद्गति

'सद्गति' प्रेमचन्द की एक और चर्चित कहानी है। इस कहानी पर प्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजित रे ने फिल्म भी बनाई है। यह एक ऐसी कहानी है जिसमें दलित जीवन

---

1. चित्रा मुद्गल - सवा सेर गेहूँ - पृ.सं. 77
2. वही - पृ.सं. 75-76

संदर्भो को सूक्ष्म रूप से रेखांकित किया है। "धर्मशास्त्रों के विधान होने के नाते, स्वर्ग-नरक, ऊंच-नीच, पूर्व जन्म, भाग्यवाद, कर्मफल जैसी तमाम बातें सहस्राब्दियों से हमारे मानस में संस्कारों के रूप में विद्यमान है, आदमी चाहकर भी उनकी गिरफत से अलग नहीं हो पाता। उनसे अलग होने की कोशिश के माने अधर्म, जिसका परिणाम नरकवास के रूप में, इस जन्म और उस जन्म दोनों में भोगमान के रूप में शास्त्रों में दर्शा दिया गया है। इस संस्कारबद्ध मानस के लिए अधिसंख्य मनुष्यता, हमारे यहाँ हज़ारों सालों से उस नरक भोग रही है, जो उसकी नियति के रूप में उसके लिए धर्म शास्त्रों में लिख दिया गया है।"[1] 'सद्गति' में यही नरक हमारे सामने लाया गया है, यही संस्कार हमारे सामने लाया गया है जो दुखी चमार की नियति बनकर उसके ऊपर हावी है।

कहानी का नायक है दुखी चमार। दुखी चमार को अपनी बिटिया की सगाई करना था। इस हेतु साइत-सगुन के लिए वह पंडित घासीराम को घर पर आमंत्रित करना चाहता है। ब्राह्मण देवता को घर पर आमंत्रित करना है। अतः दुखी चमार अपनी पत्नी झुरिया को कई प्रकार की हिदायतें देता है। खटोली को धोया जाता है। महुए के पत्ते तोड़कर पत्तल बनाई जाती है, क्योंकि पत्तल पवित्र होती है। उसमें बडे-बडे लोग खाते हैं। दुखी साइत-सगुन विचरवाने के लिए पंडित घासीराम के घर पहूँच जाता है। पंडित जी के यहाँ काली हाथ नहीं जा सकते इसलिए घास का एक बडा-सा गठ्ठर लेकर दुखी वहाँ पहूँच जाता है। पंडित जी भोजन करके कुछ देर आराम करने के बाद दुखी के साथ चलने को राज़ी होता है। परन्तु उसने दुखी को कुछ हिदायतें देता है, जैसे दरवाज़े पर झाडू लगाना, बैठक को गोबर से लीपना, खलिहान से चार खाँची भूसा लाकर भुसौरे में डाल देना और सामने पडी पेड की गाँठ को चीरना।

---

1. शिवकुमार मिश्र - कहानीकार प्रेमचन्द : रचना दृष्टि और रचना शिल्प - पृ.सं. 65

दुखी बिना कुछ खाए-पीए सुबह-सुबह ही पंडित के पास आया था। किसी तरह एक-एक करके काम निपटाने लगता है। भूसा उठाने का काम खत्म करके वह लकडी पर जुटता है। उससे लकडी फटती। वह सोचता है दूसरे दिन आकर फाड देगा। लेकिन पंडित जी की धमकी से भयभीत होकर, अपनी बेटी की चिन्ता में वह भूखा-प्यासा दूनी ताकत से लकडी की गांठ चीरने में जुट जाता है। उस गांठ को फाडते-फाडते वह मर भी जाता है। पुलिस के डर से चमरौने का कोई आदमी लाश उठाने नहीं आता। पंडित जी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की, पर चमारों के दिल पर पुलिस का रौब छाया हुआ था।

आधी रात में पंडित जी एक रस्सी निकालकर फंदा बनाता है और मृत दुखी के पैर को फंसाकर उसे घसीटते हुए गाँव के बाहर फेंक देता है। दुखी की लाश को गीद्धड़, गिद्ध, कुत्ता और कौवों जैसे तमाम जानवरों के लिए महाभोज बनता है, दुखी को सद्‌गति मिलती है। इस प्रकार 'सद्‌गति' कहानी सडते हुए सामंतवाद की गिरफत में तड़पते भारतीय ग्राम्य जीवन का एक यथार्थवादी दर्दनाक दस्तावेज है।

3.1.6 सद्‌गति-नाट्यरूपान्तर

'सद्‌गति' कहानी का नाट्यरूपान्तरण चित्रा मुद्‌गल जी ने किया है। कहानी मुख्यतः चार भागों में विभाजित है। नाटक में इसे चौदह दृश्यों में बाँटा गया है। नाटक का घटना स्थान है दुखी और झुरिया के कच्चे घर का आँगन-दुआर, पंडित जी के घर का आँगन-दुआर और दुखी का टोला। इन तीनों स्थानों पर सारे के सारे दृश्य संपन्न हो जाते हैं। नाटक का पहला दृश्य अपनी लडकी के लगन की साइत निकलवाने के लिए दुखी के पंडित जी के यहाँ जाने को लेकर पति-पत्नी के बीच के संवाद से शुरू होता है। यह एक

ऐसा ज़माना था जहाँ छुआछूत की समस्या ज़ोरों पर थी। दुखी और झुरिया के बीच का संवाद इसका प्रमाण है-

झुरिया : कहीं से खटिया न मिल जाएगी? जाके ठकुराने से माँग लाव?

दुखी : तू कभी-कभी ऐसी नादानी भरी बात कहती है झुरिया, सुनते ही देह जल जाती है। ठकुरानेवाले हमें खटिया देंगे? चिलम फूँकने को आग माँगो, तो आँगरा तक तो निकलता नहीं उनके चूल्हे से, खटिया देंगे हमारे जइसे अछूत नीच को?"[1]

पंडित और पंडिताइन की अमानुषिकता का चरम नाटक के अंतिम दृश्य में सामने आता है-

"पंडिताइन : क्या हुआ, दुखिया के टोले से कोई आया लाश उठाने?

पंडित जी : नहीं वे सब ज़िद पर अडे हुए हैं। कहते हैं लाश उठाएँगे तो उन्हें पुलिस पकड़ लेगी।

पंडिताइन : तो अब क्या करोगे? तुम उठाओगे!

पंडित जी : शास्त्रों में कहीं लिखा है, ब्राह्मण किसी नीच की लाश उठाए?

पंडिताइन : इन डायनों ने भी चीख-चीखकर खोपड़ी चार डाली? रो, रो के गला भी तो नहीं पकता ससुरियों का।

पंडित जी : रोने दो चुड़ैलों को। कब तक रोएँगी? सब नौटंकी है। दुखिया जीता था तो कोई बात भी न पूछता था। मर गया तो आ गई झुंड की झुंड छाती कूटने।

पंडिताइन : सो तो है, मगर शूद्रों का रोना मनहूस है।

---

1. चित्रा मुद्गल - सद्गति - पृ.सं. 102

पंडित जी : है, तो अब क्या करें।

पंडिताइन : अभी से दुर्गन्ध भी उठने लगी।

पंडित जी : उठेगी ही। नियम-परम की परवाह ही कहाँ है नीचों को! भ्रष्ट है सब!"[1]

कल्पना के धुव्रांत खींचने पर भी यह संवाद एक मनुष्य और मानुषी के बीच हुई बातचीत नहीं लगता। पंडित जी जिसकी लाश को छूना अपवित्र समझा था उसी की लाश को मारे डर के अपने कंधे के सहारे खींचते हुए ले जाता है और फिर नहा-धोकर पवित्र होने का ढोंग करता है।

"पंडित जी : (लाश को घसीटते हुए श्लोक पढ़ते हैं)

ओम नमः शिवाय, ओम नमः शिवाय।

ओम नमः शिवाय, ओम नमः शिवाय, कितना भारी हो गया है दुखिया, खींचे नहीं खिंच रहा।"[2]

आधे घण्टे बाद लकड़ी बीच में से फट जाती है और दुखी चक्कर खाकर गिर पडता है। तब भी पंडित जी उसे कहता है "तू फिर से सो गया रे दुखिया? चल, चल उठ। चैले तो चिर गए। मोटे चिरे हैं। पतली चैलियाँ होती तो ज्यादा अच्छा था। जलने में सुभीता होता।"[3] परन्तु दुखीं न उठ सका। उसके प्राण पखेरू उड चुके थे। दुखी और उसकी जैसी नियतिवाले करोडों-करोड़ साधारण जन, दलित, स्त्री आज के भारतीय समाज की सच्चाई है। कोई सदिच्छा, कोई रचनात्मक उपक्रम, कोई आदर्शवाद इस सच्चाई को नहीं बदल सकता। इस सच्चाई को मंच पर तीव्रता के साथ चित्राजी पेश करती है।

---

1. चित्रा मुद्गल - सद्गति - पृ.सं. 118
2. वही - पृ.सं. 120
3. वही - पृ.सं. 114

कहानी में गोंड नामक पात्र जो है उसे नाटक में चिखुरी नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। 'गोंड' माने असभ्य जंगली जाति। नाटक में 'गोंड को चिखुरी नामक एक जागरूक नौजवान के रूप में चित्रित किया है। वह एक ऐसा युवक है जिसमें अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत है। जैसे-

"चिखुरी : कुछ खाने को मिला काका?

दुखी : (डरकर), धीरे बोल रे चिखुरी, बॉमन की रोटी हमको पचेगी?

चिखुरी : पचने को सब पच जाएगी काका, पहले मिले तो सही? अपना तो पेट बोरे-सा ठूँस, आराम फरमा रहे होंगे पंडित जी। छूछे पेट, तुम्हें लगा दिया लकड़ी चीरने को? कहाँ का न्याय है ये?"[1]

नाटक के अंत में जब दुखी की मृत्यु हो जाती है तब सभी अछूत लोग दुखी की लाश को पंडित जी के द्वार से उठाकर क्रिया-कर्म करने के बारे में सोचते हैं। चिखुरी उसका विरोध करता है, "खबरदार जो किसी ने पंडित जी के दरवाज़े से मुरदा उठाने की बात की? अभी पुलिस तहकीकात होगी। (स्वर में ऐंठ) दिल्लगी है, किसी गरीब की जान लेना? पंडित बाबा महान होंगे तो अपने घर के होंगे।"[2] पंडित जी जैसे क्रूर व्यक्ति के खिलाफ विद्रोह करने के लिए किसी व्यक्ति का होना नाटक में परम आवश्यक था, जो दर्शक पर नाटक का अधिक असर डाल सकता है।

नाटक का संवाद कहानी के समान ही है। फिर भी नाटक में संवादों को और अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास हुआ है। कहानी में दुखी झुरिया से कहता है "गोंड की

---

1. चित्रा मुद्गल - सद्गति - पृ.सं. 111
2. वही - पृ.सं. 116

लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ पैर जोडकर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नही गजब हो जाएगा।"[1] नाटक में इस संवाद को थोड़ा विस्तार दे दिया गया-

"झुरिया : जो गोंड की बिटिया न चले तो?

दुखी : तो तू भड़-भुज्जिन के हाथ-पाँव जोड, उसे संग ले जाना। बस तू कुछ छूना मत। नहीं तो किया धरा सब माटी में मिल जाएगा।"[2]

कहानी से भिन्न नाटक में कुछ संवादों को जोड भी दिया है और कुछ संवादों को हटा भी दिया है जो एकदम भाव संप्रेषण के लिए अनुकूल सिद्ध होते हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा सरल एवं सुबोध है। उसी प्रवाहता, सरलता आदि को चित्रा मुद्गल जी ने उसी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। भाषा ग्रामीण अचल की भाषा है। इसमें मुख्य रूप से दो प्रकार की भाषा शैली देखने को मिलती हैं एक ब्राह्मण वर्ग की दूसरी नीची जाति के लोगों की। जैसे नाटक में पंडित जी का कहना है "कुन्दा सीधे तो चूल्हे में चलेगा नहीं दुखिया, उसे भी चीर कर घर देना। ओम नमः शिवाय, ओम नमः शिवाय, ओम नमः शिवाय।"[3] दूसरी तरफ दुखी का कथन है "ये ठहरे पवित्र मानुख। तभी तो संसार इनको पूजता है। आदर मान करता है। मति मारा, मैं इस गाँव में बुढा गया मुल्ला, अकिल दमड़ी भर को न आई।"[4] इसके अलावा 'ल्हास', 'ढोया', 'झौआ' जैसे ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इस नाटक का प्रणयन चित्रा जी ने यथार्थवादी शैली में ही लिखा गया है।

---

1. प्रेमचन्द - सद्गति - पृ.सं. 28
2. चित्रा मुद्गल - सद्गति - पृ.सं. 103
3. वही - पृ.सं. 105
4. वही - पृ.सं. 108

दुखी की दयनीयता को, उसकी बेबसी को दर्शाने के लिए नाटक में संगीत का संकेत दिया गया है। जैसे-

"दुखी : (स्वतः) है? भगवान, सिर काहे घूम रहा? आँखिन से दिखाई भी नहीं पड़ रहा। भग... वान् हमरी बिटिया की ऽऽ रच्छा करना; झु, रि, या झुरिया रे ऽऽऽऽ (हुच्च के साथ दुखिया लुढ़क जाता है)।"[1]

इस अवसर पर नेपथ्य से करुण संगीत का प्रयोग हुआ है। इसके अलावा हनुमान चालीसा के पाठ का स्वर भी सुनाई पडता है-

"लाल देह लाली लसे, अरु धरि लाल लंगूर,
बज्र देह दानव-दलन, जय-जय-जय कपि सूर
इति संकटमोचन हनुमानाष्टक संपूर्ण।।
जय बजरंग बली की, जय, जय, जय...।"[2]

नाटक में ध्वनि संकेत की खूब इस्तेमाल हुआ है। जैसे दुखी का पंडित जी के घर में लकडी चीरने का 'खच्च-खच्च स्वर (हाँफने के साथ ही 'खच्च' 'खच्च' की जुगलबन्दी), चिलम खीचने का स्वर से ऽऽ, से ऽऽ, दुखी की ज़ोर लगाने की हूँह, हूँह, हूँह, दुखी के हाँफने का डरावना स्वर, नेपथ्य से रुदन का स्वर, खडाऊ की खट् खट् के साथ दरवाज़ा खोलने की ध्वनि आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है।

1. चित्रा मुद्गल - सद्गति - पृ.सं. 113
2. वही - पृ.सं. 104

3.1.7 गुल्ली डंडा

वर्ग या श्रेणी किसी समाज का आवश्यक एवं अनिवार्य अंग होता है। इसका निर्माण उस समाज के श्रम, उत्पादन तथा वितरण के साधन द्वारा होता है। इसके साथ मनुष्य की वंश परंपरा, शिक्षा, रहन-सहन का स्तर आदि भी उसे विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति बनाने में सहायक होती है। रामविलास शर्मा के अनुसार "वर्ग चेतना या वर्ग अभिवीक्षण ऐसा मनोभाव होता है जिसकी प्रेरणा से व्यक्ति बराबर की आर्थिक क्षमतावाले लोगों से समभावना तथा सहकारिता प्रदर्शित करता है और अन्य वर्गों से अलगाव की भावना दिखाता है।"[1] इसी भावना को रेखांकित करनेवाली प्रेमचन्द जी की कहानी है 'गुल्ली डंडा'। यह एक ऐसी कहानी है जिसमें समाज के वर्ग वैषम्य से उत्पन्न विभिन्न मानसिकता को रेखांकित किया गया है।

कहानी में कुल दो पात्र हैं, गया और प्रस्तोता मैं। दोनों का संबंध अलग-अलग सामाजिक वर्गों से है। उसकी जाति और वर्ण भी अलग-अलग है।

बचपन जीवन की एक खास अवस्था है। इस समय ऊँच-नीच, जाति-बिरादरी, अमीर-गरीब का कोई लिहाज़ नहीं होता है। कहानी का नायक 'मैं' एक उच्च संभ्रात जाति का व्यक्ति है। वह बचपन में अपने ग्रामीण साथियों के साथ गुल्ली डंडा का खेल खेलता था। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब सब जमकर गुल्ली डंडा खेलते थे। उसमें 'गया' नामक लड़का चमार था जो गुल्ली डंडा खेल का चैम्पियन था। गया प्रस्तोता 'मैं' को खूब पदाता है, दोनों के बीच लडाई-झगडा, गाली-गालौज तक होता है। आज की स्थिति होती तो चमार का कोई लड़का ऊँच जाति के लड़के से उलझने की हिम्मत भी न करता।

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा - परंपरा का मूल्यांकन - पृ.सं. 139

बचपन की स्मृतियों से आगे कहानी अपने दूसरे भाग में वर्तमान पर पहूँच जाती है। पिता के तबादले के साथ 'मैं' शहर आ जाता है। बीस साल बाद 'मैं' उसी गाँव में इंजीनियर बनकर आता है। इतने अर्सों में गाँव भी कुछ बदला गया था। गुल्ली डंडा खेलते कुछ बच्चों से वह गया के बारे में पूछता है और संयोगवश उन दोनों का मिलन होता है। गया अब पहले का गया नहीं था। वह कहानी नायक को 'सरकार-सरकार' कहकर बात करता है। दोनों के बीच में बहुत सी बातें होती हैं। 'मैं' के बहुत कहने पर एकान्त स्थल में दोनों गुल्ली डंडा खेलते हैं और उसमें जान-बूझकर गया हार मान लेता है। किन्तु अगले दिन गाँव में वास्तविक गुल्ली डंडे का मैच होता है, और गया भी उसमें प्रतिभागी बनता है। 'मैं' इस मैच का महज दर्शक है और अपनी कार में बैठकर सिर्फ मैच देखता है। गया अब अपनों के बीच में था, जहाँ वर्ग-वर्ण हैसियत, पद-प्रतिष्ठा जैसे कोई दीवार नहीं था। मैच में गया बार-बार विजयी होता है। 'मैं' समझ गया था कि पिछले दिन गया ने जान-बूझकर हार-स्वीकार किया था। इस प्रकार देखें तो वर्ण-वर्ग भेद पर अटल रहनेवाली सामाजिक व्यवस्था तथा उसके अनुरूप निर्मित हमारे व्यवहार और आचरण पर तीखा व्यंग्य करना इस कहानी का मूल उद्देश्य है।

3.1.8 गुल्ली डंडा-नाट्यरूपान्तर

प्रेमचन्द जी की इस कहानी को चित्रा मुद्‌गल जी ने नाट्य रूप दे दिया। कहानी के हर एक बिन्दु को नाटक में उभारने की कोशिश की गयी है। दोनों की शुरुआत भी एक समान है। यानि दोनों में बचपन और बीस वर्ष की कहानी गयी है। कहानी में मुख्यतः दो भाग है। नाटक में कुलमिलाकर आठ छोटे-छोटे दृश्य हैं। नाटक का घटना स्थल है सोनपुर कस्बा और एक इंजीनियर के घर की बैठक। कहानी में मुख्यतः दो पात्र है 'मैं' और 'गया'।

इसके अलावा दो-तीन लड़कों का ज़िक्र भी हुआ है। ये सारे पात्र नाटक में भी मौजूद है। कहानी से भिन्न होकर नाटक में 'मैं' के लिए नाम दिया गया है 'निशिकान्त'। नाटक में पात्रों के लिए नाम तो होना ज़रूरी है। क्योंकि नाटक दर्शकोन्मुखी है। कहानी पढ़ने की वस्तु है इसलिए 'मैं' याने प्रस्तोता को पाठक समझ सकते हैं।

नाटक का पहला दृश्य निशिकान्त के बैठक से शुरू होता है। निशिकान्त दर्शकों से उन्मुख होकर स्वतः कहता है "हमारे अंग्रेज़ दोस्त माने या न माने', मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली डंडा सब खेलो का राजा है। आज भी, जब कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते हुए देखता हूँ तो जी लोट-पोट हो जाता है। लगता है, दौडकर उनके साथ जाकर खेलने लगूँ। मजे से एक पेड़ से एक टहनी काट ली, उसी से डंडा और गुल्ली बना ली। और दो आदमी भर आ गए तो खेल-खेल में अमीर-गरीब का बिल्कुल भेद न रहता। न छूत-अछूत का। न मान-अभिमान की गुंजाइश! यह गुल्ली डंडा ही है कि बिना हर्द-किटकरी के चोखा रंग देता है। पर हम अंग्रेज़ी चीज़ों के पीछे ऐसे दिवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीज़ों से अरुचि हो गई है।"[1] निशिकान्त भारतीय खेलों के पक्ष में बोलता है। उसकी इसी पक्षधरता में स्वदेशी आन्दोलन की लहर स्पष्ट दिखती है।

बचपन में गया को अपनी 'औकात' का कोई बोध न था। अब वयस्क होने से वह अपनी हैसियत और औकात को जानता-समझता है। इसका सटीक चित्रण नाटक में बचपन और बीस साल के अंतराल के बाद के संवादों से स्पष्ट होता है-

"गया : (नाराज़गी भरे स्वर में) पदाया तो तुमने बडे बहादुर बनके निशि, पदने के बेर क्यों भागे जाते हो? मेरा दाँव देकर जाओ, ऐसे नहीं जाने दूँगा।

---

1. चित्रा मुद्गल - गुल्ली डंडा - पृ.सं. 8

निशि : देख गया, आगे मेरा खेलने का जी नहीं। तू दिन भर पदाएगा और मैं दिन-भर पदता रहूँगा? क्या समझा है तूने, हाँ?

गया : बारी तुम्हारी है। दिन भर पदना ही पडेगा।

निशि : (चिढ़कर) क्यों दिन भर पदना पड़ेगा? न खाने जाऊँ न पीने?

गया : हाँ, हाँ, मेरा दाँव दिए बिना तुम कहीं नहीं जा सकते?

निशी : मैं तुम्हारा गुलाम नहीं हूँ?

गया : तुम मेरा गुलाम हो।"[1]

इसके बाद होनेवाली मारपीट और निशि की पिटाई भी नाटक में दिया गया है।

बीस वर्षो के अंतराल के बाद दोनों का संवाद देखिए-

"निशि : कहो गया, मुझे पहचानते हो?

गया : (झुककर) सलाम मालिक। भला पहचानूँगा क्यों नहीं। आप मज़े में रहे? बहुत दिनों बाद भेंट हो रही है।

निशि : (प्रसन्न होकर) बहुत मजे में हूँ। तुम अपनी कहो? तुम कैसे हो! क्या करते हो?

गया : डिप्टी साहब का साईस हूँ।

निशि : मैं तो जिले का इंजीनियर हूँ। .....आओ आज हम-तुम गुल्ली डंडा खेले। तुम पदाना, हम पदेंगे। मुझे अब तक याद है। तुम्हारा एक दाँव हमारे ऊपर बाकी है, गया। आज वह ले लो।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - गुल्ली डंडा - पृ.सं. 10

गया : (दुविधा में पड़कर) क्या कहते हैं मालिक? अ, आप ठहरे अफसर, और मैं टके-भर का मज़दूर। कैसे खेल सकते हैं?"[1]

निशि की बातों में एक ओर अगाध मैत्री भाव तथा मानवीय सद्भावना निहित है। गया में आत्मसमर्पण है, विनय है जो उसकी वर्ग स्थिति की सच्चाई है। उसके व्यवहार में कृत्रिमता लेश मात्र भी नहीं है।

निशि के बहुत आग्रह के कारण निशि और गया का गुल्ली डंडा खेलना, गया का जानबूझकर हारना, निशि का बार-बार जीतना, निशि की सारी दलीले स्वीकार करना जैसे सारे के सारे मुद्दों को नाटक में बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में चित्रा जी सफल निकली है-

"गया : 'टन्न्' से बोली है सरकार! बडी ज़ोर से आवाज़ आई। जैसे बन्दूक से गोली छूटी हो।

निशि : और जो किसी ईंट से लग गई हो तो? बोलो?

गया : ईंट से? हाँ अ ऽऽ, हो सकता है सरकार ईंट से लगी हो। डंडे से लगती तो इतनी ज़ोर की आवाज़ न होती। चलिए, फिर चाल चलिए।

निशि : (स्वतः अस्फुट स्वर में) अब की गुल्ली डंडे से लग गई तो गया को कतई न छकाऊँगा। दो बार छका लिया, बहुत हुआ। सरलहृदय गया मेरे झूठ को सच बना लेता है।"[2]

---

1. चित्रा मुद्गल - गुल्ली डंडा - पृ.सं. 13
2. वही - पृ.सं. 17

यह वास्तव में गया और निशि के बीच के वर्ग-भेद और उससे उपजी मानसिकता का दस्तावेज़ है।

गाँव में गुल्ली डंडे का मैच होने पर गया के हुनर का पता चलता है तो निशि आत्मगत करता है - "मैं अब अफसर हूँ, यह अफसरी मेरे और उसके बीच दीवार बन गई है। मेरी अफसरी ने मेरे भोले-भाले बाल सखा को दबोच लिया है। मैं अब उसका लिहाज़ पा सकता था। लड़कपन था, तब मैं उसके समकक्ष था। हममें कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल, उसकी दया के योग्य हूँ। वह बड़ा हो गया है और मैं छोटा हो गया हूँ। पर, पर मेरी स्मृतियों का बाल सखा गया, वह तो वही है। गुल्ली-डंडे के खेल में मुझे पदाता और मैं पदता।"[1] इस प्रकार नाटक में वर्ग-वर्ण का भेदभाव अपने प्रभावी रूप में पात्रों के आचरण, व्यवहार और सोच को किस तरह प्रभावित करता है इसे बडी खूबी के साथ दर्शाया गया है।

कहानी और नाटक दोनों की भाषा एक समान है। दोनों में बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल हुआ है साथ ही लोकभाषा का प्रयोग भी हुआ है। जैसे-

"गया : मैं आपको याद करता हुज़ूर, किस लायक हूँ। वो तो कहो भाग में आपके साथ कुछ दिन खेलना बढ़ा था, वरना मेरी क्या गिनती?"[2]

दृश्य के अंतर्गत फ्लैश बैक का प्रयोग नाटक की एक और खूबी है। नाटक में आठ दृश्य हैं इनमें से तीन दृश्य फ्लैश बैक के हैं।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - गुल्ली डंडा - पृ.सं. 14
2. वही - पृ.सं. 12

नाटक में दर्शकों को प्रभावित करने के लिए संगीत का इस्तेमाल हुआ है। पात्र परिचय देते वक्त लेखिका ने स्पष्ट रूप में यह बताया है कि मंचन करते समय इफली की धुनों का अधिक प्रयोग करना, जो ग्रामीण वातावरण को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है। नाटक के वातावरण की सृष्टि, चरित्र की भावदशा, स्थितियाँ आदि को उभारने के लिए लेखिका ने कई प्रकार के ध्वनि संयोजन का प्रयोग किया है। अभिनय के माध्यम से पुराने वक्त की मोटर कार के चलने और साथ ही भोंपू बजने की आवाज़, गया के दौडने लपकने की ध्वनि, डंडे से गिल्ली के टकराने की टन्न आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है।

'गुल्ली डंडा' नाटक यथार्थवादी शैली पर आधारित है। इसमें यथार्थ जीवन की घटनाओं, पात्रों तथा दृश्यों को हू-ब-हू पेश करने का प्रयास पाया जाता है।

3.1.9 जुलूस

प्रेमचन्द जी की 'जुलूस' कहानी स्वाधीनता आन्दोलन पर आधारित है। कहानी में स्वाधीनता आन्दोलन के दौर के जन उत्साह और आज़ादी के उमंगों का, देश के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने के लिए तैयार समाज के हर वर्ग के व्यक्ति के हौसले का विशद चित्रण किया गया है। देश की आज़ादी से बढ़कर अपनी स्वार्थता को प्रमुखता देनेवाले, गुलाम मानसिकता से युक्त ऐसे लोगों पर तीखा व्यंग्य, धिक्कार तथा भर्त्सना के स्वर भी इसमें मुखरित हैं।

स्वाधीनता आन्दोलन का जुलूस निकलता है। जुलूस के सरगना बूढ़े इब्राहिम को दारोगा बीरबल सिंह आगे न बढ़ने का आदेश देता है। अहिंसा के उपासक सत्याग्रही बीरबल सिंह वही ज़मीन पर बैठ जाता है। दारोगा बीरबल सिंह अपने डी.एस.पी की

खैरख्वाही लूटने के लिए अहिंसक निहत्थे स्वराजियों पर घोड़े चढ़ा देता है। सैकडों बुरी तरह घायल होते हैं। दारोगा के बैटन का वार इब्राहिम की जान ले लेता है। दारोगा बीरबल सिंह अपनी सफलता के नशे में था। उसे उम्मीद थी कि पत्नी उसके इस वीर कर्म पर उसका हौसला बढ़ाएगी। लेकिन बीरबल सिंह की पत्नी मिट्ठन बाई उसकी तथा-कथित वीरता पर उसे धिक्कारती है।

इसी बीच एक सिपाही आकर उसे एक लिफाफा देता है। क्योंकि एक और जुलूस निकलनेवाला है, उसे ड्यूटी पर जाने का आदेश हुआ है। इस बार का जुलूस दूसरी तरह का था। वीरगति पाये हुए इब्राहिम खाँ की अर्थी का जुलूस था। इब्राहिम खाँ की इच्छा थी कि उसके शव को गंगा में नहलाकर ही दफनाया जाये और अपनी मज़ार पर स्वराज्य का झंडा खडा कर दिया जाए। जुलूस गंगा की ओर बढ रहा था। स्त्री-पुरुष समाज के हर वर्ग जुलूस में शामिल थे। बीरबल सिंह की पत्नी मिट्ठनबाई भी जुलूस में शामिल थी। स्त्रियाँ बीरबल को देखकर उसे कोसती हैं, उन पर लानतें देती हैं।

इब्राहिम के शव को उसके इच्छानुसार दफन करके जुलूस वापस लौट जाता है। मिट्ठन बाई के मन में विचारों का तूफान आया हुआ था। वह वापस घर लौटने को तैयार नहीं थी। उसके मन में इब्राहिम की बेसहारा बेवा की याद आ जाती है जिसका कोई संतान नहीं थी। वह उसे सांत्वना देने के लिए उसके घर पहूँचती है और वही पश्चाताप से दग्ध बीरबल को देखती है। बीरबल अपने अपराध के लिए उस वृद्ध महिला से क्षमा माँगता है। कहानी यहाँ समाप्त हो जाती है। आज़ादी का यह आन्दोलन एक समर्पित और सोद्देश्य रचनाकार की रचना है।

3.1.10 जुलूस - नाट्यरूपान्तर

'जुलूस' कहानी को चित्रा मुद्गल जी ने उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया। कहानी के सारे मुद्दों को नाटक में भी उठाया है। 'जुलूस' नाटक में मुख्यतः नौ दृश्य हैं। 'जुलूस' कहानी की शुरुआत इस प्रकार है कि वहाँ पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा है। नाटक की शुरुआत नेपथ्य से स्वराजियों के जुलूस के नारे लगाने से होती है। लोग अंग्रेज़ों के खिलाफ नारे लगा रहे हैं और भारत-माता की जय-जयकार कर रहे हैं। दूसरी ओर शंभुनाथ, दीनदयाल जैसे कुछ डरपोक लोग भी शामिल है जो जुलूस के नारों को सुनकर व्यंग्य करते हैं-

"शंभुनाथ : (नारों को सुनकर व्यंग्य से) देख रहे हैं न दीनदयाल जी। सबके सब काल के मुँह में जा रहे हैं। स्वराज लाने चले हैं। आगे पुलिस सवारों का दल खड़ा हुआ है, मार-मार कर भगा देगा।

दीनदयाल : जुलूस निकालने से स्वराज मिल जाता तो कब का मिल गया होता। तनिक देखे तो, जुलूस में हैं कौन? लौडे-लफँगे सिर-फिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी दिख रहा?"[1]

नाटक का दूसरा दृश्य दारोगा बीरबल सिंह द्वारा जुलूस को रोकने का प्रयास से होता है। दारोगा बीरबल सिंह स्वराजियों को आगे न बढ़ने का आदेश देता है। दारोगा द्वारा जुलूस को रोकने का जो संदर्भ है तब बूढ़ा इब्राहिम यों कहता है - "दरोगा साहब! मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ कि किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दूकानें लूटने या

---

1. चित्रा मुद्गल - जुलूस - पृ.सं. 22

मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं.... हमारा मक्सद इससे कहीं ऊँचा है।"[1] दारोगा बीरबल सिंह के बैटन के वार इब्राहिम की जान ले लेता है। इसके बावजूद भी अन्य स्वराजियों में जो देशप्रेम था वह टूटता नहीं। स्वराजियों के देशप्रेम को चित्रा मुद्‌गल ने इन वाक्यों में उभारा है जैसे-

"स्वराजी 1 : जल्लाद दरोगा। अंग्रेज़ों का पिट्‌ठू है तू ऽऽ

स्वराजी 2 : हम किराए के टट्‌टू नहीं है जो तेरी निर्दयता से डर कर पलट लें। स्वाधीनता के सच्चे सेवक हैं। अपनी जान दे देंगे मगर भारत माँ के हाथों में बेडियाँ नहीं बरदाश्त करेंगे..... भारत माता की जय।"[2]

सभी भारतवासी भारत माँ की जय-जयकार करते हैं। नाटक का अगला दृश्य बाज़ार में धडा धड़ दूकानों के शटर गिरने से होता है। इब्राहिम अली की मृत्यु के कारण सारा शहर में तनाव फैल रहा है।

दरोगा बीरबल सिंह अपनी सफलता पर गर्व करते रहता है। लेकिन उसकी पत्नी मिट्‌ठनबाई उसकी तथा कथित वीरता पर उसे धिक्कारती है - "तुम कम से कम इतना तो कर ही सकते थे, उन पर डंडे न चलने देते? पुलिसवालों का काम आदमियों पर डंडे चलाना है? कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाए तो शायद तुम्हें बड़ा आनंद आएगा। क्यों?.... मतलब मैं खूब समझती हूँ। तुमने सोचा होगा डी.एस.पी पीछे खड़ा है। ऐसी कारगुज़ारी दिखने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। तुम क्या समझते हो, उस जुलूस में कोई भला आदमी न था? अरे उसमें कितने ही आदमी ऐसे

---

1. चित्रा मुद्‌गल - जुलूस - पृ.सं. 24
2. वही - पृ.सं. 25

थे जो तुम्हारे को नौकर रख सकते हैं। विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे अधिक पढ़े-लिखे हों। मगर, तुम उन पर डंडे चला रहे थे, उन्हें घोड़े से कुचल रहे थे। वाह री जवाँमर्दी।"[1] नाटक में मिट्ठन बाई को एक कर्मठ नारी के रूप में चित्रा जी प्रस्तुत किया है। मिट्ठन की एक-एक कथन दारोगा बीरबल सिंह की दिल को छू लेता है-

"मिट्ठन बाई : शायद जल्दी तरक्की भी मिल जाए; मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रंगकर तरक्की पाई, तो क्या पाई? यह तुम्हारी कारगुज़ारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत होगी!"[2]

बीरबल सिंह की बोलती बंद हो जाती है, वह सफाई देता है। अपनी नौकरी और विवशता का वास्ता देता है।

नाटक का छठा दृश्य इब्राहिम अली की शवयात्रा के जुलूस से प्रारंभ होता है। जुलूस गंगा की ओर बढ़ रहा था। गंगा की ओर बढ़नेवाले जुलूस के लोग जब बीरबल को धिक्कारते हैं तो बीरबल अपनी करनियों पर पश्चाताप करता है, "छि :, यह मैंने क्या किया; जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिसके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं.... उसका मैंने इतना अपमान किया? सच कहूँ तो लाठी के निर्दय प्रहार में कर्तव्य भाव लेशमात्र न था, थी तो केवल डी.एस.पी को खुश करने की लिप्सा।"[3] बीरबल में उमड़ते देश प्रेम को लेखिका ने यहाँ प्रस्तुत किया है।

1. चित्रा मुद्गल - जुलूस - पृ.सं. 27
2. वही - पृ.सं. 27
3. वही - पृ.सं. 31

नाटक में ऐसे एक क्षण को भी लेखिका ने प्रभावी ढंग से पकडा है, जहाँ अपने किये पर क्षमा माँगने बीरबल से इब्राहिम की पत्नी यों कहती हैं - "मुझे खुशी हो रही है, मेरे पति इब्राहिम अली की बलिदान व्यर्थ नहीं गया। तुम्हारे जैसे नौजवान अंग्रेज़ों की ताबेदारी से मुक्त हो, स्वराजियों के साथ हो रहे, यही जीत है। बोलो.... वन्दे मातरम्! वन्दे मातरम्!"[1] आदि से अंत तक नाटक में देशप्रेम और स्वाधीनता आन्दोलन की ज्वलंत स्मृतियों को सुरक्षित रखने में रूपान्तरकार चित्राजी सफल निकली है।

नाटक के मंचन में मुख्यतः नगर का माल रोड़, गंगा का किनारा, गंगा की ओर जानेवाली सड़क, बीरबल सिंह का कमरा, क्वींस पार्क आदि का जिक्र किया गया है। कहानी में जितने भी पात्र हैं वे सारे पात्र नाटक में भी मौजूद है। नाटक में एक ही व्यक्ति द्वारा आवाज़ बदलकर दो-तीन सिपाहियों की भूमिका अदा की जाती है। कहानी में जो संवाद है उसी संवाद को ही नाटक में लेखिका ने प्रस्तुत किया है। बडे-बडे संवादों को छोटा कर दिया है। संवादों के ज़रिए प्रत्येक पात्रों के हाव-भाव, आचार-विचार सब हम समझ सकता है। स्वाधीनता के सच्चे सेवक इब्राहिम अली की दृढ़ स्वर - "वापस तो हम न जाएँगे आपको या किसी को हमें रोकने का कोई हक नहीं है। आप अपने सवारों, संगीनों और बन्दूकों को ज़ोर से हमें रोकना चाहते हैं - रोक लीजिए! मगर आप हमें लौटा नहीं सकते।...... न जाने वह दिन कब आएगा, जब हमारे भाई-बन्दू ऐसे हुकमों की तामील करने से साफ़ इनकार देंगे जिनकी मंशा महज़ कौम को गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े रखना है।"[2] नाटक के रूप में यह कहानी और अधिक सार्थक बन गई है।

---

1. चित्रा मुद्गल - जुलूस - पृ.सं. 33
2. वही - पृ.सं. 24

एक ही विषय होने पर भी कहानी और नाटक दोनों का अंत बिल्कुल भिन्न है। कहानी का अंत कुछ इस प्रकार है कि मिट्ठन बाई इब्राहिम अली की वृद्ध महिला के पास उसे सांत्वना देने के लिए आ जाती है और देखती है कि "उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से बातें कर रहा था।"[1] वह युवक और कोई नहीं, दारोगाई से निवृत्त, पश्चाताप से दग्ध बीरबल सिंह है। यही दृश्य नाटक में और अधिक नाटकीयता के साथ प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है-

"मिट्ठन बाई : (भरे हृदय से) जी मैं, मैं मिट्ठन हूँ। उसी दारोगा की अभागी पत्नी, जिसकी लाठी से (गला रुँध आता है) उनके प्राण के लिए....

वृद्ध महिला : (भीगा निःश्वास भर) वे मरे कहाँ बेटी....? वे तो देश के लिए शहीद हो गए। तुम कहती हो तुम्हारे दरोगा पति ने उन्हें मारा, इधर देखो, (संकेत करती है) ये नौजवान कहता है, मुझ से सज़ा माँगा.... तुम.....।"[2]

वहाँ पश्चाताप से दग्ध बीरबल सिंह प्रस्तुत हुआ है। वह अपनी गलती के लिए माँफी माँगता है और 'वन्दे मातरम्' के दोहराने के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। यह एक ऐसा दृश्य था जिसे देखने पर प्रत्येक भारतीय के मन में देशप्रेम की चिनगारियाँ ज़रूर उमड़ने लगेगी।

नाटक में ध्वनि प्रयोजन का खूब प्रयोग हुआ है। जिसमें लाठी चार्ज की ध्वनि, घोडों की टापों और हिनहिनाने की आवाज़ें, स्वराजियों के घायल होने के आर्त स्वर, मोटरकार के स्टार्ट होने की ध्वनि आदि प्रमुख हैं। नेपथ्य स्वर का प्रयोग भी नाटक में हुआ

---

1. प्रेमचन्द - जुलूस - पृ.सं. 53
2. चित्रा मुद्गल - जुलूस - पृ.सं. 32

है। नाटक भी शुरुआत नेपथ्य से स्वराजियों के जुलूस लगाने से होती है। एक अन्य संदर्भ में नेपथ्य से सैकडों लोगों की उत्तेजित आवाज़ आती है - "मारो, मारो, सिपाहियों को मारो! ये अपने ही भाई-बन्धु हैं मगर अंग्रेज़ों के पट्‌टू बन गए हैं।"[1] संगीत का प्रयोग भी नाटक में हुआ है। मुख्य रूप से आज़ादी के किसी गीत की धुन सुनने को मिलती है।

'जुलूस' नाटक को चित्रा जी ने यथार्थवादी नाट्य शिल्प के अंतर्गत रचा गया है। इसमें यथार्थ जीवन के घृणित एवं घिनौने पहलुओं का ज्यों-का-त्यों मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। नाटक की भाषा कहानी की तरह ही है। भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है। कहीं-कहीं 'शुबहा', 'मंशा', 'ज़नाज़ा' जैसे उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है जो नाटक में सहजता का आभास प्रदान करता है।

3.1.11 दूध का दाम

प्रेमचन्द की 'दूध का दाम' कहानी दलित जीवन की विभीषिकाओं को उकेरनेवाली है। इसमें लेखक ने अपनी सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से उच्चवर्गीय लोगों की शोषण नीति का पर्दाफाश किया है। मनुष्य को जाति-धर्म-लिंग, वर्ग-वर्ण से परे एक मनुष्य के रूप में देखना चाहिए। परन्तु विडंबना यह है कि मनुष्य को विशेषकर समाज के एक वर्ग विशेष को अस्पृश्य और अछूत कहकर समाज की मुख्य धारा से धकेला जाता है। 'दूध का दाम' कहानी का मंगल ऐसे अभागे दलित समाज का प्रतिनिधि है।

बाबू महेशनाथ गाँव के ज़मींदार है। महेशनाथ के घर में तीन पुत्रियों के बाद पुत्र जन्म हुआ। सब प्रसन्न है, लेकिन समस्या यह है कि इस बार उसकी पत्नी को दूध नहीं

---

1. चित्रा मुद्‌गल - जुलूस - पृ.सं. 26

उतरा। ऐसे में मूँगी जो महेशनाथ के घर के जच्चेखाने में काम कर रही है, अपना दूध मालकिन के बेटे सुरेश को पिला देती है। उसका अपना लडका मंगल, जो तीन महीने का है भूखा रह जाता है। एक साल बाद प्लेग की चपेट में मूँगी का घरवाला गूदड गुजर गया और मूँगी विधवा हो गयी। मूँगी महेशनाथ के यहाँ काम करते हुए किसी तरह अपने बेटे को पाल रही है। पर एक दिन जमींदार साहब की हवेली का परनाला साफ करते वक्त गेहूअन साँप उसे डँस लेता है और मूँगी मर जाती है।

मंगल पूरी तरह अनाथ हो जाता है। उसे अपना जैसा एक समदुखिया मिल जाता है एक कुत्ता जिसका नाम है टामी। टामी भी अपने सहवर्गियों से उपेक्षित है। मंगल और टामी दोनों का गुज़ारा ज़मींदार साहब के यहाँ की जूठन से हो जाता है। एक दिन सुरेश मंगल को घोडे के खेल के लिए अपने साथियों में जबरदस्ती शामिल करता है। मंगल से सुरेश का बोझ बरदाश्त नहीं होता था, अतः वह धीरे से अपना पीठ सिकोडता है और सुरेश नीचे गिर जाता है। वह अपनी माँ से झूठी शिकायत करता है कि उसको मंगल ने छू लिया। मालकिन मंगल को बुरी तरह से फटकारती है और अपने यहाँ से निकाल देती है। दिन भर मंगल और टामी इधर-उधर भूखों घूमने रहते हैं, पर रात होने पर पेट की आग से मज़बूर होकर दोनों ज़मींदार के यहाँ जूठे टुकड़े खाने के लिए पहूँचते हैं। वह मात्र एक किशोर है। गांव छोडकर नहीं जा सकता। इसलिए एक अनुभवी बुजुर्ग की तरह वह जूठे टुकड़े खाता ज़रूर है। लेकिन खाते-खाते यह बात नहीं भूलता कि माँ की सेवाओं के बदले उसे क्या मिलना चाहिए और क्या मिल रहा है। दलितों पर होनेवाले उत्पीड़न से प्रेमचन्द की आत्मा हमेशा तडपती रहती थी इसका उत्तम उदाहरण है ‘दूध का दाम’।

3.1.12 दूध का दाम - नाट्यरूपान्तर

चित्रा मुद्‌गल जी ने 'दूध का दाम' कहानी को उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया। कहानी मुख्यतः छेः भागों में विभाजित हैं। नाटक में कुलमिलाकर दस छोटे-छोटे दृश्य हैं। कहानी की शुरुआत देहाती दुनिया के भोलेपन से होती है। नाटक का पहला दृश्य मूँगी के घर से शुरू होता है। वहाँ हमारा परिचय मूँगी और उसकी पति गूदड़ से होता है।

नाटक में छूत-अछूत की समस्या को कई स्थानों में उभारा है। एक दिन सुरेश तथा गाँव के अन्य बच्चे घोड़ा-घोडी खेल रहे थे तब खेलनेवालों की जोडी पूरी न पड रही थी। जोडी पूरा करने के लिए वे मंगल को बुलाते हैं और उसे जबरदस्ती से घोडा बनाते हैं। इस पर मंगल अपना विद्रोह प्रकट करता है-

"मंगल : (संशय से) मैं बराबर घोड़ा ही बनूँगा कि सवारी भी करूँगा...? पहले बता दो।

सुरेश : तुझे कौन अपनी पीठ पर बैठाएगा? तू तो अछूत है।

मंगल : मैं कब कहता हूँ कि मैं अछूत नहीं हूँ। लेकिन तुम्हें मेरी ही माँ ने अपना दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे सवारी करने को न मिलेगी, मैं घोड़ा न बनूँगा।"[1]

यह केवल खेल-खेल की बातचीत नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से भारतीय समाज की विडंबना ही प्रकट होती है। 'दूध' अछूत जातियों की सेवा का प्रतीक है जो वे शताब्दियों से करती आयी है। मंगल का 'सवार' बनने का सवाल अछूतों के अपने अधिकारों की मांग है। सुरेश जब अपनी माँ से झूठी शिकायत करता है कि उसे मंगल ने छू लिया है इसे नाटक में यों दर्शाया गया है-

1. चित्रा मुद्‌गल - दूध का दाम - पृ.सं. 96-97

"मालाकिन : (दाँत किटकिटाते हुए) तूने सुरेश को छुआ क्यों?

मंगल : मैंने नहीं छुआ।

मालकिन : तूने नहीं छुआ तो फिर वह रोता हआ क्यों आया?

मंगल : गिर पडे.... इसी से रोने लगे....

मालकिन : (आपे से बाहर होकर) चोरी और सीनाजोरी! अगर मैं तुझे छू सकती तो मार-मार कर तेरी चमड़ी उधेड देती। तेरी इतनी हिम्मत, मेरे सुरेश को तू हाथ लगाएगा? निकल जा, अभी इसी दम! फिर कभी इस देहरी पर तेरी सूरत नज़र आई तो मैं तेरा खून पी जाऊँगी.... खा-खाकर शरारत सूझती है.... निकल।"[1]

इस प्रकार नाटक में उच्चवर्गीय लोगों की शोषण नीति का सूक्ष्म एवं पैनी दृष्टि से पर्दाफाश किया गया है।

अपने सुविधानुसार लोग धर्म को किस प्रकार तोड़ते-मरोड़ते हैं वह मोटेराम शास्त्री के कथनों से व्यक्त होता है। उसका कहना है "साल भर होने को आया, महेश बाबू और कितने दिन तक अछूत स्त्री का दूध अपने बच्चे को पिलाते रहेंगे? उच्च समाज का इससे बडा अपमान क्या हो रहा। धर्मसम्मत कार्य नहीं कर रहे हैं आप?"[2] उसने महेशनाथ से अपनी गलती के लिए प्रायश्चित करने के लिए कहा। इस पर महेशनाथ कहता है "प्रायश्चित की खूब कही शास्त्री जी। कल तक उसी अछूत स्त्री का दूध पीकर सुरेश पला, अब उसमें छूत घुस गई? वाह रे आपका धर्म!"[3] महेशनाथ के इस बात से शास्त्री जी आग

---

1. चित्रा मुद्गल - दूध का दाम - पृ.सं. 98
2. वही - पृ.सं. 90
3. वही - पृ.सं. 90

बबूला हो जाता है और सिर फटकारते हुए बोलता है - "यह सत्य है महेश बाबू, बच्चा कल तक अछूत का दूध पीकर पला, लेकिन कल की बात कल थी। आज की बात आज है। धर्मस्थलों पर छूत-अछूत सब एक पंगत में बैठकर खाते हैं पर यहाँ नहीं खा सकते हैं।"[1] मतलब यह है कि धर्म बदलता रहता है, अभी कुछ, कभी कुछ।

इस प्रकार नाटक में कई ऐसे बिन्दु है जो हमें संवेदना के स्तर पर गहराई से छू लेता है। नाटक में मंगल की दशा को बहुत ही मार्मिकता के साथ उभारा है। मंगल और भूरा दोनों समदुखिये हैं। दोनों अपनी बिरादरीवालों से सताये हुए हैं। नाटक में इसका बडे ही संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है, मंगल भूरा से कहता है "तो तुम जाओ, जो कुछ मिले खा लो। मेरी परवाह न करो। तुम तो कुछ भी ढूँढ - ढाँढ़ के खा लोगे.... मैं थोड़े ही खा सकता हूँ।.... मर भी गया तो कौन बैठा है रोने के लिए? यह भी जानता हूँ, तेरा भी यही हाल है।"[2] एक दलित अनाथ बच्चे की स्थिति किसी कुत्ते से बेहतर नहीं है।

नाटक में नौकरों को नाम दिया गया बुधवा, कहार आदि। उसी प्रकार सुरेश के मित्रों के लिए नरेन्द्र, रमेश आदि नाम दिये गये हैं। कहानी में इसकी योजना नहीं है। एक और बात यह है कि कहानी में मंगल का साथी 'टामी' नामक एक कुत्ता था। नाटक में टामी के बदले 'भूरा' नाम दिया गया है। नाटककार ने खुद यह संकेत दिया है कि छह-सात वर्ष का बालक घुटनों के बल पर चलकर कुत्ते का चरित्र अदा कर सकता है। नाटक में किरपू नामक एक सहृदय को भी जोड़ दिया गया है।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - दूध का दाम - पृ.सं. 90
2. वही - पृ.सं. 100

नाटक के संवाद बहुत ही महत्वपूर्ण है। कहानी से भिन्न होकर नाटक में और कुछ संवादों को जोड दिया गया है। जैसे नाटक में मूँगी नवजात बच्चे को गोद में लिए खिला रही है "अले मोल बचुवा, मौल छौना काहे ले गए? गुच्छा हो, अले ना भैया ना, अब ताबेदाली में देल न होगी, ऊँ ऊँ ऽऽ।"[1] यह संवाद कहानी में नहीं है।

कहानी और नाटक दोनों में देहाती भाषा का उपयोग हुआ है। नाटक में मूँगी कहती है "ले पकड़ बचुवा, सरिया के ले जा पत्तल। अऊर सुन, सारा भात भूरा (कुत्ता) को ही न खिला देना। पगलैट है पूरा, अरे ठीक से धर न पत्तल।"[2] बीच-बीच में 'दहिज़ार', 'टुकुर', 'कढियतें' जैसे लोक शब्दों का प्रयोग भी हैं। यथार्थवादी शैली में ही चित्रा जी ने इस नाटक का गठन किया है।

नाटक में ध्वनि संकेतों का खूब इस्तेमाल हुआ है। रात का समय को दर्शाने के लिए झींगुरों का झॉय-झॉय शब्द का प्रयोग बार-बार किये गये हैं। साथ ही कुत्तों के लडने और भौंकने की आवाज, किवाड़ खोलने की ध्वनि, नेपथ्य से 'रामनाम सत्य है' दुहराने की आवाज़, नाली में बाँस चलाने की 'भच्च', 'भच्च' आवाज़ आदि प्रस्तुत की गयी है।

नाटक में संगीत का इस्तेमाल भी हुआ है। संगीत का कोई प्रत्यक्ष सरोकार नाटक में नहीं है। बल्कि प्रत्येक दृश्य के अंत में दृश्यानुकूल कोई संगीत का प्रयोग करने की सिफारिश रूपान्तरकार ने की है। जिसमें मुख्य रूप से 'सोहर' जैसे लोकधुन का प्रयोग हुआ है। विलाप संगीत का संकेत भी नाटक में हुआ है।

---

1. चित्रा मुद्गल - दूध का दाम - पृ.सं. 88
2. वही - पृ.सं. 92

3.1.13 बेटोंवाली विधवा

'बेटोंवाली विधवा' प्रेमचन्द जी की स्त्री-केन्द्रित कहानी है। संयुक्त परिवार के तथा कथित सुरक्षा कवच के भीतर पति वियुक्ता स्त्री की, गृहस्वामिनी की, एक माँ की क्या दुर्गति होती है या हो सकती है इसका बयान प्रेमचन्द की 'बेटोंवाली विधवा' करती है। इसके केन्द्र में पं. अयोध्यानाथ का संयुक्त परिवार और चार बेटोंवाली अयोध्यानाथ की विधवा फूलमती थी, जिसके दुःख को बाँटनेवाली पूरे घर-परिवार में उसकी बेटी कुमुद के अलावा और कोई नहीं है।

कहानी पं. अयोध्यानाथ की मृत्यु और उनकी तेरहवीं के आयोजन से प्रारंभ होती है। फूलमती भरे-पूरे घर-परिवार की एकमात्र स्वामिनी थी। उसकी इच्छा के बिना घर में एक पत्ते का हिलना भी असंभव था। चाभियाँ बडी बहू के पास थी, परन्तु घर में सब कुछ फूलमती की इच्छा से ही होता था। पति के न रहने पर अपनी स्थिति का पहला एहसास उसे बहुत जल्द, पति की तेरहवीं के अवसर पर दिये गये भोज में ही हो जाता है। बेटे और बहुएँ उसके कहे हुए की अवमानना कर अपने ढंग से तेरहवीं के भोज की व्यवस्था करते हैं। फूलमती अपमान महसूस करती है और उनसे अपने कहे हुए को मानने का आदेश देती है। परन्तु होता वही है जो बेटे और बहू चाहते हैं।

धीरे-धीरे फूलमती अपनी हैसियत को समझ जाती है। उसे बराबर इस बात का एहसास दिलाया जाता है कि अब वह मालकिन नहीं बेटे-बहुओं की कृपा पर जीनेवाली एक विवश नारी मात्र है। वह बेटी का विवाह अपनी इच्छा के अनुरूप करना चाहती है। लेकिन बेटे-बहू फिज़ूलखर्च की बात कर बहन को उसकी इच्छा के विपरीत दूसरे घर में ब्याह कर देते हैं। बेटे इतने धूर्त और व्यवहार कुशल है कि बहाने बनाकर घर की इज्जत के नाम पर

फूलमती के अपने सारे गहने भी उससे छीन लेते हैं। बेटों का व्यवहार उसे घर के सुख-दुख से विरक्त कर देता है। घर की मर्यादा के नाते वह घर तो नहीं छोड़ती। परन्तु सारे परिवार से तटस्थ एक कोठरी मात्र में मिला हुआ खाकर एक भिखारिन की तरह जीवन काटती है। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसंग से उसे प्रयोजन था। वह केवल इसलिए जीती थी कि मौत न आती। बेटों पर विपत्ति आती है, वह उदासीन रहती है। बरसात की उफनाती नदी में बडे बेटे के लिए गंगाजल लाने जाती है और फिसलकर गंगा की गोद में समा जाती है। यही कहानी का अंत है। इस प्रकार स्त्री जीवन की विवशताओं और विडंबनाओं तथा मानवीय संबंधों के ह्रास और विघटन को पर्दाफाश करने में प्रेमचन्द जी की यह कहानी सफल सिद्ध हुई है।

3.1.14 बेटोंवाली विधवा - नाट्यरूपान्तर

प्रेमचन्द जी की प्रस्तुत कहानी का नाट्यरूपान्तर चित्रा मुद्‌गल जी ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी मुख्यतः छे भागों में विभाजित है। नाटक में कुलमिलाकर आठ दृश्य हैं। दृश्य बहुत ही छोटे हैं। कथ्य को बहुत ही सरल ढंग से नाटक में प्रस्तुत किया गया है। कहानी की शुरुआत पं. अयोध्यानाथ के घर-परिवार के परिचय से होती है। नाटक में सीधे अयोध्यानाथ की तेरहवीं ब्रह्मभोज की तैयारी का चित्रण करते हुए बीच में प्रत्येक का परिचय दिया गया है। नाटक का घटना स्थान है फूलमती का कमरा, घर का आँगन, बैठक, बेटा कामतानाथ का कमरा तथा गंगा का किनारा। गंगा के किनारे को मंच पर प्रस्तुत करना कठिन है। इसलिए नेपथ्य से गंगा के तेज़ बहाव के स्वर को प्रस्तुत किया गया है।

नाटक का पहला दृश्य फूलमती के घर में उसकी पति की तेरहवीं के ब्रहमभोज की गहमागहमी से शुरू होता है। वहाँ हमारा परिचय पंडित अयोध्यानाथ की विधवा फूलमती से होती है। फूलमती को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से नाटक में प्रस्तुत किया गया है। फूलमती का कहना है "मुझे अख्तियार है, जो उचित समझूँ वह करूँ। किफ़ायत को मैं बुरा नहीं समझती कामता, लेकिन जिसने यह कुआँ खोदा, उसी की आत्मा पानी को तरसे? उनकी तेरहवीं के ब्रह्मभोज में मैं किसी प्रकार की कटौती बरदाश्त नहीं कर सकती।"[1] बेटे और बहुएँ की अनुभवहीनता के कारण जब भोज में व्याघात उत्पन्न होते हैं तब फूलमती प्रचण्ड हो उठती है-

"फूलमती : (विस्मय से) मरी हुई चुहिया? हे भगवान, यह कैसी बदइन्तज़ामी है? कितने आदमियों का धर्म सत्यनाश हो गया। फिर पंगत क्यों न उठ जाए? (बेटे की ओर उन्मुख होकर) कामता, क्यों, मुँह में कालिख लगी कि नहीं? या अभी कुछ कसर बाकी है? डूब मरो सब के सब जाकर चुल्लू-भर पानी में! बिरादरी में मुँह दिखाने लायक नहीं रहे।

कामतानाथ : अब चुप भी रहो अम्मा! भयंकर भूल हुई, हम सब मानते हैं, लेकिन अब इसके लिए घर के प्राणियों को हलाल कर डालोगी?"[2]

पति या पिता की मृत्यु के उपरान्त उसकी संपत्ति को लेकर होनेवाले वाद-विवाद स्त्री के लिए समस्या बन जाती है। नाटक में इस समस्या को ज़ोर दिया गया है। फूलमती कहती है कि जब तक वह जीवित है पति की सारी कमाई और जायदाद पर उसका हक रहेगा। लेकिन बेटे इसका विरोध करते हैं-

1. चित्रा मुद्गल - बेटोंवाली विधवा - पृ.सं. 74
2. वही - पृ.सं. 77

"कामतानाथ : जिन रुपयों को तुम अपना समझती हो, वह तुम्हारा नहीं है, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उनमें से कुछ नहीं खर्च कर सकतीं।

उमानाथ : अम्मा का दोष नहीं कामता भैया, अम्मा कानून-कायदा तो जानती नहीं, नाटक उलझ रहीं।

फूलमती : भाड़ में जाए तुम्हारा कानून। मेरे जीते जी मेरे रुपये नहीं छू सकते। मैंने तीनों बेटों के विवाह में दस-दस हज़ार खर्च किए हैं.... कुमुद के विवाह में भी वही खर्च करूँगी.... और क्या है कानून, ज़रा मैं भी तो सुनूँ?

उमानाथ : (निरीह भाव से) कानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक केवल रोटी-कपड़े का है।"[1]

फूलमती को यह ज्ञात होता है कि यह कानून ऋषि मुनियों ने बनाया है, उसका हृदय चीत्कार कर उठता है। वह कहती है "मैंने घर बनवाया; संपत्ति जोड़ी, तुम लोगों को जन्म दिया, पाला, और आज मैं इसी घर में गैर हूँ। मनु का यही कानून है? तुम लोग उसी कानून पर चलना चाहते हो? अच्छी बात है! अपना घर-द्वार लो! मुझे तुम्हारी आश्रिता बनकर रहना स्वीकार नहीं। इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अन्धेर। पेड़ मैंने लगाया और मैं ही उसकी छाँव में खड़ी नहीं हो सकती?"[2] यह चीत्कार केवल एक फूलमती का नहीं है बल्कि हज़ारों ऐसी बेसहारा, निस्सहाय नारियों की है।

नाटक का अंतिम दृश्य बहुत ही दर्दनाक है। परिवार के हर्ष-विषादों से कतई तटस्थ फूलमती अपने शरीर को घर के लिए होम कर देती है। तेज़ बारिश में वह घर से

1. चित्रा मुद्‌गल - बेटोंवाली विधवा - पृ.सं. 85
2. वही - पृ.सं. 86

बाहर निकलती है। बरसात की उफनाती नदी में वह बेटे के लिए गंगाजल लाने जाती है, यही कहते हुए कि "तुम तो नल का पानी पीते नहीं हो कामता, इसलिए गंगा जल लाने जा रही हूँ।"[1] कामता उसे रोकने का प्रयास करता है। लेकिन उमानाथ यों कहता है "अरे ! जाने भी दो कामता भैया, बहुत दिनों तक बहुओं पर राज कर चुकी हैं अम्मा। उसका कुछ तो प्रायश्चित करने दो।"[2] फूलमती गंगा की ओर निकलती है और फिसलकर गंगा की गोद में समा जाती है। लोग उसे देखकर यों कहते हैं-

"पहला व्यक्ति : च, च, च, च यह बुढ़िया थी कौन?

दूसरा व्यक्ति : स्वर्गवासी पं. अयोध्यानाथ की विधवा है।

पहला व्यक्ति : अयोध्यानाथ तो बडे आदमी थे? उनके यहाँ नौकर-चाकर थे।

दूसरा व्यक्ति : हाँ, अऽऽ चार-चार कमाऊ बेटे भी हैं - सब भाग्य का खेल है। उस पर किसका वश। चलो, उनके घर जाकर खबर दे आएँ। गंगा मैया ने उनकी मैया को अपनी शरण में ले लिया।"[3]

नाटक में इस दृश्य को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

कहानी से भिन्न होकर नाटक में कुछ संवादों को और जोड दिया है। जिसमें फूलमती और कुमुद के बीच के संवाद, चारों भाइयों के आपसी संवाद आदि प्रमुख है। जैसे-

"फूलमती : ये, ये रूमाल से बँधे कुछ जेवर और रुपये हैं। इन्हें रख ले कुमुद चुपचाप! मेरी तो मन की मन में ही रह गई। तेरे बाबूजी जीवित होते तो आज तेरा विवाह, इस तरह होता और तू ऐसे रुखे-रुखे विदा हो रही होती?

---

1. चित्रा मुद्गल - बेटोंवाली विधवा - पृ.सं. 87
2. वही - पृ.सं. 87
3. वही - पृ.सं. 88

कुमुद : (रोते हुए) अम्मा, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाखों रुपये के बराबर है। तुम इन गहनों को अपने पास रखो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों का सामना करना पड़े।"[1]

स्वगत कथन का प्रयोग भी नाटक में हुआ है। जैसे फूलमती का कहना है "(स्वत) हूँह, बाप के मरते ही चारों बेटे अपने मन की करने पर उतर आए; ये बडी बहू तिजोरी क्यों खोल रही?"[2] प्रत्येक दृश्य के अंत में उदास धुन का प्रयोग किया है जो दर्शकों को भावविभोर बनाती है। कहानी के समान नाटक में भी स्थानीय भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे फूलमती कहती है "आदमी के ऊपर जैसे आदमी को बिठा दिया है। दो पंगतों में लोग बिठाए जाते, तो क्या बुराई हो जाती? यही होता, बारह बजे की जगह भोज रात दो बजे खत्म होता। हूँह, यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है।"[3] चित्रा जी ने इस नाटक में यथार्थवादी शैली को ही अपनाया है। यथार्थवादी रंगमंच पर सारे दृश्यों को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश बहुत ही सराहनीय है।

3.1.15 बूढी काकी

एक व्यक्ति अपने जीवन काल में मुख्यतः तीन अवस्थाओं से गुज़रता है - शैशवावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। इसमें वृद्धावस्था को हमारे जीवन के अंतिम सच का आखिरी पायदान कह सकते हैं। स्वाति तिवारी ने यों लिखा है - "वृद्धावस्था को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है जिसे संपूर्ण शारीरिक क्षमताओं में उत्तरोत्तर

---

1. चित्रा मुद्गल - बेटोंवाली विधवा - पृ.सं. 86
2. वही - पृ.सं. 75
3. वही - पृ.सं. 76

कमी से आँका जाता है।"[1] ऐसी अवस्था में व्यक्ति के जीवन में एक ठहराव आ जाता है। बूढ़ा व्यक्ति अपने ही परिवार में अपने को अजनबियों के बीच में पाता है, अकेलापन महसूस करता है। 'बूढ़ी काकी' प्रेमचन्द जी की अत्यंत लोकप्रिय कहानी है। इस कहानी की मूल संवेदना है बूढ़ापा।

कहानी में कोई घटना नहीं है एक प्रसंग विशेष है जिसके भीतर ही कहानी अपने पूरे त्रासद प्रभाव के साथ सामने आती है। बूढापे में सारी इन्द्रियाँ शिथिल होकर महज एक वृत्ति पर केन्द्रित हो जाती है। आँख से अंधी, कान से बहरी बूढी काकी की स्वादेद्रिय सक्रिय थी। इच्छानुकूल तृप्ति भर भोजन न मिलने पर वह गला फाड-फाडकर रोती थी। चुपचाप अपनी कोठरी में पडे रहना ही उसकी दिनचर्या थी। बूढी ने अपनी सारी संपत्ति भतीजा बुद्धिराम के नाम लिख दी थी। अब बुद्धिराम उस संपत्ति की आमदनी से सपरिवार सकुशल जीवन बिताता है। काकी को पेट भर भोजन भी कठिनाई से मिलती है।

कहानी में एक विशिष्ट प्रसंग है, जो 'बूढ़ी काकी' कहानी की वास्तविकता को उजागर करता है। वह प्रसंग है बुद्धिराम के लडके का तिलक समारोह। मसालों की महक, पूडियों की सुगंध, दही-रायते का स्वाद आदि काकी को अपनी कोठरी से बाहर कड़ाह के पास जाने के लिए विवश करती है। काकी को वहाँ देखकर रूपा उस पर अमानवीय व्यवहार करती है। आहत, अपमानित, असहाय काकी चुपचाप अपनी कोठरी में चली जाती है। बाद में मेहमान लोग भोजन करते समय काकी सरकते हुए अपनी कोठरी से बाहर आ जाती है। इस बार बुद्धिराम काकी को वहाँ देखकर उसे घसीटते हुए उसकी कोठरी में पटक देता है। दंड स्वरूप रूपा और बुद्धिराम काकी को भोजन न देने का निर्णय लेते हैं।

---

1. स्वाति तिवारी - अकेले होते लोग - पृ.सं. 31

रात के बारह बजे है। मेहमान सब लौट चुके हैं। घरवाले नींद में है। काकी जागी हुई है और लाडली भी। काकी भूखी है इस विचार से लाडली नहीं सो पाती। वह चुपचाप अपने हिस्से की पूडियाँ लेकर काकी की कोठरी में पहूँचती है। काकी पूडियों पर टूट पडती है। लाडली की मदद से काकी उस जगह पहूँचती है, जहाँ लोगों की खाई हुई जूठी पत्तलें अभी पडी थीं। काकी का उन पत्तलों से चुन-चुनकर लोगों का उच्छिष्ट पूरे स्वाद के साथ खाना कहानी का सबसे मार्मिक बिंदु है। पत्तलों की खर-खर से रूपा बहू की नींद उचट जाती है और पत्तलों से पूडी खाती हुई काकी को देखकर वह सन्न रह जाती है। अपने आपको धिक्कारती है। काकी से माफी माँगती है। वह भोज्य सामग्री से भरी थाली काकी के सामने रख देती है। बच्चों की भाँति किलककर वह भोजन खाती है। इस प्रकार यह कहानी आज के आदमी की लाभ-लोभ प्रेरित मानसिकता के साथ, मानव मन के एक यथार्थ पहलू को भी उद्घाटित किया है जो हमारे दैनंदिन जीवन के अनुभवों का ही हिस्सा है।

3.1.16 बूढ़ी काकी - नाट्यरूपान्तर

प्रेमचन्द जी की बूढ़ी काकी कहानी को चित्रा मुद्गल जी ने नाट्यरूपान्तरित किया है। कहानी मुख्यतः पाँच भागों में विभाजित हैं। नाटक दस छोटे-छोटे दृश्यों में विभक्त हैं। नाटक और कहानी के कथ्य पक्ष एक होने पर भी उसमें कुछ बदलाव लाने का प्रयास चित्रा जी ने किया है। कहानी की शुरू में एक भूमिका है जिसमें प्रेमचन्द जी ने मनोविज्ञान के तहत बूढापे को बचपन का पुनरागमन कहा है। काकी की अतीत और वर्तमान का एक लंबा परिचय भी कहानी में हुआ है। नाटक में ऐसी कोई भूमिका नहीं है। नाटक सीधे बूढी काकी की उपेक्षित कोठरी की ओर इशारा करता है। प्रथम दृश्य से ही दर्शक काकी की बुरी हालत से परेशान होता है। लाडली के हाथ में मोतीचूर के लड्डू देखकर काकी की बाँछें खिल उठती हैं-

"बूढ़ी काकी : दिखा कैसे लड्डू हैं?

लाड़ली : लो देखो।

बूढ़ी काकी : ये तो मोतीचूर के हैं। बडे दिन बाद मोतीचूर के लड्डू देखे बिटिया। मुझे भी एक दो लड्डू दे दे लाडली!

लाडली : अच्छा दादी, ले लो तुम एक।

बूढ़ी काकी : (चपर-चपर मुँह चलाने की ध्वनि) अरी ये तो बड़े अच्छे बने हैं। बूँदी कैसी महीन और मुलायम है। मेरे लिए भी रूपा बहू से माँगकर ले आ न लाडो।"[1]

नाटक का दूसरा दृश्य बुद्धिराम के बडे बेटे सुखराम के तिलकोत्सव से शुरू होता है। घर की मालकिन रूपा। मेहमानों के लिए भोजन के प्रबद्ध में व्यस्त है। कोठरी में बैठे अपाहिज बूढी काकी घर-भर में फैल रही खाना पकने की सुगन्ध पा खाने के लिए बेचैन हो रही हैं-

"बूढ़ी काकी : आह! मसालों के पकने की कैसी चरपरी सुगन्ध! तरकारियाँ कितनी लज़्जतदार बनेंगी। अब मुझे कौन पूछता है। जब रोटियों के ही लाले पड़े हों तो किस्मत मारी के ऐसे भाग कहाँ जो गरमागरम पूडियाँ कचौडियाँ खाने को मिलें? किसे पुकारूँ, आज लाडली बेटी भी ना दिख रही। (कल्पना में) कैसे गोल-गोल फूली, फूली कचौड़ियाँ कड़ाह में छन् रहीं। अजवाइन और इलायची की महक खूब छूट रही।"[2]

---

1. चित्रा मुद्‌गल - बूढी काकी - पृ.सं. 42
2. वही - पृ.सं. 44

मात्र स्वादेन्द्रिय पर केन्द्रित काकी की मनोभूमि को बडे विशद तरीके से चित्रा जी प्रस्तुत की है।

रूपा और बुद्धिराम द्वारा काकी पर किए गए अमानुषिक व्यवहार को चित्रा जी ने त्रास और करुणा की सम्मिलित अनुभूतियों के साथ मूर्तिमान किया है। कड़ाह के पास काकी को देखकर रूपा काकी पर झपटती है और कठोर एवं निर्मम शब्दों से डाँटती है - "अरे काकी, तुम यहाँ कडाह के पास बैठी क्या कर रही हो? ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़? कोठरी में बैठते क्या दम घुटता है? अभी मेहमानों ने नहीं खाया। भगवान को भोग नहीं लगा, तब तक तुम्हें धीरज न हो सका? आकर छाती पर सवार हो गई लार टपकते?"[1] मेहमानों के भोजन करते समय काकी फिर अपनी कोठरी से बाहर आ जाती है। बुद्धिराम काकी को वहाँ देखकर उसके दोनों हाथ पकड़कर घसीटते हुए अन्धेरी कोठरी में धम से पटक देता है-

"बूढ़ी काकी : अरे बुद्धिराम बेटा, मुझे छोड़ दे। मुझ अवाहिज पर दया कर बेटा ऽऽ, अरे मेरी बाँह उखड़ जाएगी ऽऽ भैया! भूख लगी थी सो कोठरी से बाहर निकल आई...

बुद्धिराम : (कोठरी के आधे उघड़े किवाडों को लात मार के पूरा खोल देता है) तो ले मर कोठरी में! खा, खा, खा, एक दिन तेरी भूख हमें भी जिन्दा चबा जाएगी। अब अगर तू कोठरी से बाहर आई न काकी, तो मुझसे बुरा कोई न होगा।"[2]

अपमान से आहत काकी संज्ञाविहीन हो जाती है।

---

1. चित्रा मुद्गल - बूढी काकी - पृ.सं. 46
2. वही - पृ.सं. 49

नाटक का नवाँ दृश्य अत्यंत मार्मिक है। क्षुधा से दग्ध बूढी काकी आधी रात अपनी कोठरी में जागी हुई है। वह स्वतः कहती है "लगता है, सब लोग खा पीकर सो गए। पेट में अग्नि धधक रही। किसी ने मेरी सुध न ली। क्या मेरा पेट काटने से धन जुड़ जाएगा? मैं राण्ड बेवा, अपने जाये तो रहे नहीं, तभी न बुद्धिराम के आसरे पड़ी हुई है।"[1] लाडली अपने हिस्से की पूडियाँ काकी को देती है। थोडी सी पूडियाँ काकी की भूख और लालच को उत्तेजित करती है। काकी लाडली का हाथ पकडकर वहाँ पहूँचती है, जहाँ बैठकर मेहमानों ने भोजन किया था-

"बूढी काकी : लाडो, छोड़ मेरा हाथ (हाथ झटक दोनों हाथों से पत्तलों के ढेर को टटोलती है। पत्तलों की 'खर', 'खर' और काकी का आह्लादित स्वर, जूठन को चाटते, चबाते हुए) हाअ, कितना बढ़िया है रायता, दही बड़ा मीठा जमा है (चट-चट चटखारे) कचौड़ियाँ ऐसी खस्ता बनी हैं कि मुँह में देते ही बुरभुराने लगती है। मेहमान बड़े बेदर्दी हैं, खाना अन्धाधुन्ध बरबाद किया है। टूँग-टूँग कर फेंका है।"[2]

पत्तलों से पूडियाँ खाती हुई काकी को देखकर रूपा सन्न रह जाती है। उसका मन पछताने लगता है "हे भगवान, यह मैं कैसा अनर्थ देख रही हूँ, (रुआँसी हो) ब्राह्मणी होकर काकी दूसरों के जूठे पत्तलों की जूठन चाट रहीं? ऐसा निकृष्ट पतित कर्म.... हे ईश्वर, यह तुम मेरी कौन-सी परीक्षा ले रहे हो? मुझ पर दया करो परमात्मा। इस अधर्म का दण्ड मुझे मत देना, नहीं तो मेरा सत्यनाश हो जाएगा। आज मुझे पता चला, मैं कितनी स्वार्थी,

---

1. चित्रा मुद्गल - बूढी काकी - पृ.सं. 50
2. वही - पृ.सं. 51

अन्यायी हूँ। जिस चचेरी सास की संपत्ति से मुझे दो सौ रुपया सालाना आय हो रही है - उसकी ऐसी दुर्गति कर दी मैंने?"[1] हाथ में थाली लिए रूपा आगे बढ़कर जूठे पत्तलों के ढेर से काकी के हाथ खींच लेती है और यों कहती है-

"रूपा : काकी, मुझसे आज बड़ी भूल हुई। मेरा अपराध क्षमा कर दो काकी। परमात्मा से कह दो, तुमने हमें क्षमा कर दिया। देखो, मैं तुम्हारे लिए खाने की थाली सजाकर लाई हूँ, उठो भोजन कर लो। पहले मेरे सिर पर हाथ रखकर कह दो काकी, तुमने हमें क्षमा कर दिया।

बूढ़ी काकी : (बच्चों की भाँति किलककर) रूपा बहू, तुम सदा सुख से रहो, मेरे पोते-पोतियाँ जीवन में खूब उन्नति करें, मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। अब मैं भोजन कर लूँ....।"[2]

शुरू में बच्चे की तरह रोती हुई काकी की तस्वीर अन्त में बच्चे की तरह खाती हुई तस्वीर में बदल जाती है।

संवाद योजना की दृष्टि से कहानी से ज्यादा नाटक आगे हैं। संवाद योजना इतना गंभीर है कि कहानी से ज्यादा नाटक प्रभावशाली निकला है। नाटक में संवादों के ज़रिए प्रत्येक पात्र के विचार एवं मानसिकता का परिचय मिलता है। उस घर में काकी की क्या हैसियत है उसका सटीक चित्रण संवादों के ज़रिए स्पष्ट होता है। नाटक में बीच-बीच में स्वगत कथन का प्रयोग हुआ-

---

1. चित्रा मुद्‌गल - बूढी काकी - पृ.सं. 52
2. वही - पृ.सं. 53

"बूढ़ी काकी : (स्वतः) रूपा बहू ने गलत नहीं किया। मैं ही जल्दबाज़ी कर बैठी। सच ही तो है। जब तक मेहमान लोग भोज न कर चुकेंगे, घरवाले कैसे खा सकते हैं? मुझसे इतनी देर भी न रहगया? सबके सामने पानी उतर गया।"[1]

नाटक में बडे-बडे संवादों का प्रयोग भी हुआ है जो मुख्यतः बूढ़ी काकी की स्वगत कथन में पायी जाती है।

कहानी में प्रेमचन्द मुख्यतः वर्णनात्मक शैली को अपनाते हुए कथानक को आगे बढाता है। नाटक में चित्रा जी यथार्थवादी शैली को अपनायी है। यह यथार्थ जगत की घटनाओं, पात्रों, तथा दृश्यों का हु-ब-हू चित्रण करने वाली नाट्य शैली है। कहानी में प्रेमचन्द जी ने साधारण बोलचल की भाषा का इस्तेमाल किया है। उसी भाषा का प्रयोग नाटक में भी हुआ है। बूढ़ी काकी को जिस भाषा में रूपा डाँटती है उसकी कुछेक पंक्तियाँ उल्लेखनीय है। जैसे "डायन न मरे न माचा छोड़े। खानदान का नाम बेचने पे लगी है। नाक कटवाकर ही दम लेगी। इतना ठूँसती है न जाने कहाँ भस्म हो जाता है।"[2] यह भाषा रूपा के क्रोध को नहीं एक ग्रामीण बहू के पूरे अंदाज़ को मूर्त करने में सक्षम है। इसके अलावा 'हुडदंगी', 'चैकडी', 'तवज्जो' जैसे ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। नाटक में प्रत्येक दृश्य के अंत में संगीत की सूचना है। ज्यादाधिक 'करुण संगीत' का प्रयोग हुआ है। आधी रात को दर्शाने के लिए नेपथ्य से कुत्तों के भौंकने और रोने का स्वर, उसी प्रकार कोतवाल की पुकार जागते रहो, 'संग डण्डे की ठक् ठक्' जैसे स्वरों का प्रयोग भी हुआ है।

---

1. चित्रा मुद्गल - बूढी काकी - पृ.सं. 48
2. वही - पृ.सं. 51

मंत्र

'मंत्र' नाम से प्रेमचन्द जी ने दो कहानियाँ लिखी है - एक पं. लीलाधर चौबे के जीवन पर केन्द्रित है, दूसरा बूढे भगत के जीवन पर केन्द्रित। इसमें दूसरी कहानी कथाकार के संवेदनात्मक उद्देश्य और कलात्मक प्रस्तुति के नाते लोकप्रिय हुई है। संयोग का तत्व इस कहानी के मूल में है। यह कहानी मुख्यतः समाज के दो वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाली है। एक है डॉ. चढ्ढा, वह पेश से डाक्टर है जिसमें आभिजात्य वर्ग का अहं है। दूसरा है बूढ़ा भगत जो दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। बूढ़े भगत का चरित्र और उससे जुड़ी प्रेमचन्द की सोच इस कहानी को विशिष्टता प्रदान करती है।

कहानी की शुरुआत में हमारा परिचय भगत से होता है। वह अपने मरणासन्न बेटे को उपचार हेतु डॉ. चढ्ढा के यहाँ लाता है। परन्तु उस समय डाक्टर मरीज़ों को देखने के बजाय गोल्फ खेलने जाने की तैयारी में था। भगत लाख अनुनय - विनय करता है। लेकिन डाक्टर कुछ नहीं सुनता, कल सबेरे आना कहकर चला जाता है। भगत के इकलौती संतान की मृत्यु हो जाती है। अब वर्षों के अंतराल के बाद कहानी डॉ. चढ्ढा के बेटे के तिलक समारोह पर आकर टिकी है। उनका बेटा अपने ही तिलक समारोह में साँप पालने की अपनी रुचि का प्रदर्शन करता है और उसी का एक जहरीला साँप उसे डस लेता है। डाक्टर चढ्ढा स्वयं डाक्टर था किन्तु उसके पास इसका कोई उपचार नहीं था। जिसे सर्पदंश को उतारने का मंत्र हासिल है, वही उसे ठीक कर सकता है। डाक्टर अपने बेटे को बचाने के लिए सब कुछ दाँव पर लगा देने को तैयार होता है।

बूढ़े भगत के पास वह मंत्र था जो डाक्टर के बेटे को बचा सकता था। वह मन ही मन में वहाँ न जाने का निर्णय लेता है। वह निश्चय करता है कि वह कदापि डाक्टर के

बँगले नहीं जाएगा। परंतु उसका दूसरा मन उसे डाक्टर के यहाँ जाने के लिए प्रेरित करता है। भगत विचलित होता है। अपने साथ घटी सारी करतूतों का बोझ एक ओर फेंककर वह अपने दबे कदमों से बाहर निकलता है और डाक्टर के बँगले की तरह चलता है। डॉ. चढ्ढा के बेटे को नया जीवन देने के उपरांत वह एक पल भर भी वहाँ नहीं रुकता। द्वार पर चौकीदार उसे तंबाकू देता है और वह उसे अस्वीकार कर अपने घर वापस लौट आता है। कहानी यही समाप्त हो जाती है। भगत का यह चरित्र ही कहानी का प्राण है, जिसके चित्रण में प्रेमचन्द जी बहुत सफल निकले हैं। बडे लोगों के घटियापन तथा छोटे लोगों के बडप्पन का यथार्थ इस कहानी में निहित हैं।

3.1.17 मंत्र - नाट्यरूपान्तर

'मंत्र' कहानी का नाट्यरूपान्तरण राजेन्द्र कानूनगो ने किया है। कहानी की अपनी विशिष्टताएँ होती हैं। कहानी जब नाटक में परिवर्तित होता है तब उसमें कभी-कभी एक प्रकार का चमत्कार नज़र आता है। 'मंत्र' नाटक इसका उत्तम उदाहरण है। कहानी से ज्यादा नाटक सशक्त है। कहानी में शुरुआती घटना से लेकर बीसीयों वर्षों का अंतराल रेखांकित किया गया है। लेकिन नाटक में ऐसा कुछ भी नहीं है। इसमें केवल दोपहर, शाम और रात का समय दर्शाता है। कहानी मुख्यतः दो भागों में विभाजित है। नाटक में मुख्यतः चार दृश्य हैं। कहानी में बहुत सारे पात्र हैं। नाटक में केवल आठ पात्र है। नाटक का पहला दृश्य डॉ. चढ्ढा के घर का ड्रॉइंगरूम से शुरू होता है। वहाँ डॉ. चढ्ढा और उसकी पत्नी नारायणी आपस में बाते करते हैं। उन दोनों के एक-एक शब्द में संपन्नता का अहं है। जैसे - नारायणी नौकर भोला से कहती है-

"नारायणी : मैंने तुम्हें क्या कहा था?

भोला : जी....!!

नारायणी : क्या जी-जी कर रहा है। चाय लाने को कहा था या नहीं? (भोला चुप) अब खड़ा मेरा मुँह क्या देख रहा है। जा जल्दी चाय लेकर आ साहब के लिए।

भोला : जी

नारायणी : कैसा बुद्ध पाल लिया है घर में। कहो कुछ, तो करेगा कुछ। बोलो कब, तो करेगा कब।

डॉक्टर : अरे बुद्ध है तभी तो टिका हुआ है अब तक। वरना कब का नौ-दो ग्यारह हो गया होता।"[1]

बडी दैन्यता से नाटक में बूढे भगत का प्रवेश होता है। हाथ में लाठी, सिर पर पगडी है। उसका हाथ डरके मारे थर-थर काँप रहे हैं। दीनता से डरते-डरते वह डाक्टर को प्रणाम करता है। अपनी इकलौती संतान की प्राण के लिए डाक्टर से विनती करती है। "हुजूर एक नज़र देख लीजिए। बस एक नज़र। वरना लडका हाथ से चला जाएगा हुज़ूर... (रोते-रोते) सात लडकों में यही एक बचा है... हम दोनों बूढा-बूढी रो-रोकर मर जाएँगे हुजूर... आप ही के हाथ में सब कुछ है सरकार। आपकी बढ़ती हो... आपके भी लडका है, दीनबंधु।"[2] लेकिन डाक्टर कुछ नहीं सुनता - कल सबेरे आना कहकर चल जाता है। भगत स्तब्ध होकर डाक्टर के जाते हुए देखता है और कहता है "संसार में क्या ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की परवाह नहीं करते?"[3]

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - मंत्र - पृ.सं. 51
2. वही - पृ.सं. 55
3. वही - पृ.सं. 55

डाक्टर चढ्ढा डाक्टरी को किसी सेवा भावना के तहत या नैतिक आधार के तहत नहीं पेशे की तरह करता है।

कहानी और नाटक की शुरुआत एक तरह ही है किन्तु दोनों का अंत भिन्न है। डाक्टर चढ्ढा के बेटे का उपचार करने के उपरांत भगत का जाना और डाक्टर को खुद अपनी गलती का एहसास होना आदि कहानी के अंत में है तो नाटक में नौकर भोला द्वारा डाक्टर को उसकी गलती का एहसास दिलाता है और वह पश्चाताप भरे स्वर में कहता है - "मैं जाऊँगा उसके पास। उसके पैरों पर गिराकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह कुछ लेगा नहीं यह जानता हूँ। उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है। उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा।"[1] नाटक को ज्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए शायद नाटककार ने ऐसा किया होगा।

संवाद योजना की दृष्टि से देखे तो कहानी से ज़्यादा नाटक प्रभावशाली निकला है। नाटकीयता पैदा करनेवाले रोचक संवादों को अधिक सूक्ष्मता एवं तन्मयता के साथ रूपान्तरकार ने उभारा है। नाटक का सबसे जीवंत अंश है भगत के मन में उत्पन्न होनेवाला मानसिक द्वन्द्व। एक ओर उसका मन कैलाश के प्रति उदासीन बनाता है। परंतु दूसरा मन उसकी नैतिकता को उभारता है उसे ठेलता है कि उसे डाक्टर के यहाँ जाना ही चाहिए। भगत और उसकी बुढ़िया पत्नी के आपसी वार्तालाप के ज़रिए उसके मानसिक द्वन्द्व का सटीक चित्र उभर आता है-

"बुढ़िया : क्या बात है, कहाँ जा रहे हो?

भगत : नहीं.... कहीं नहीं, देख रहा था रात कितनी बाकी है।

1. राजेन्द्र कानूनगो - मंत्र - पृ.सं. 78

बुढ़िया : अभी बहुत बाकी है, सो जाओ।

भगत : नींद नहीं आती।

बुढ़िया : मन ही मन भगवान का नाम लो आ जेवेगी।

भगत : लिया था, पर नींद है कि आती ही नहीं।

बुढ़िया : काहे को आवेगी नींद? मन तो चढ्ढा के घर पर लगा हुआ है।"[1]

सारी दुनिया सो रही थी, भगत जाग रहा था। वह विचलित होता है। अंततः उसके भीतर की मानवीयता उजागर होती है। वह मन में यही कहता है "नहीं.... मैं.... मैं जाऊँगा.... मैं जाऊँगा.... मैं देखूँगा.... कहीं ऐसा न हो कि देर हो जाए। वो मर रहा है, एक-एक पल की देरी घातक हो सकती है। मुझे अभी जाना होगा।"[2] उसने डाक्टर के बेटे का इलाज किया और उसे ठीक कर दिया। डाक्टर भगत को कुछ रुपये देता है। लेकिन वह इनकार करता है और कहता है कि "मुझे इन पैसों की भूख होती तो मैं कब का आपकी तरह बड़ा आदमी बन गया होता। दरअसल इस काम के लिए मैं कभी किसी से पैसे नहीं लेता।"[3] भगत का यह कथन केवल डाक्टर चढ्ढा को नहीं बल्कि संपूर्ण मानव जाति को अपनी निकृष्ट सोच पर गहरा घाव पैदा करनेवाला है।

नाटक के अंत में नारायणी का कथन "आदमी को अपना फर्ज़ कभी नहीं भूलना चाहिए। भगत काका ने अपने बेटे की मौत भूलकर भी अपना फर्ज़ निभाया और इन्होंने डाक्टर होते हुए भी एक मरीज को देखने से इनकार कर दिया।"[4] प्रत्येक मनुष्य को अपनी कर्तव्यनिष्ठा के प्रति सचेत बनाता है।

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - मंत्र - पृ.सं. 70
2. वही - पृ.सं. 72
3. वही - पृ.सं. 77
4. वही - पृ.सं. 78

नाटक में प्रकाश योजना का खूब प्रयोग हुआ है। प्रत्येक दृश्य में प्रकाश व्यवस्था के उतार-चढ़ाव देखने को मिलता है। कभी-कभी प्रकाश धीमी पड जाता है, तो कभी पूर्ण रूप से उभर आता है। प्रत्येक दृश्य का अंत मंच पर अंधकार से होता है।

नेपथ्य राग का प्रयोग भी नाटक में हुआ है। नेपथ्य से ही कैलाश और मृणालिनी के बीच संवाद चलता है-

"कैलाश : यह देखो मृणालिनी, ये है मेरे दोस्त और यह है मेरा नया और प्यारा दोस्त काला नाग।

मृणालिनी : बाबा, इसे तो देखने से ही डर लगता है।"[1]

उसी प्रकार नेपथ्य से आनेवाले आकाशवाणी ही भगत के मानसिक द्वन्द्व का कारण बनती है-

"आवाज़ : (ज़ोर का ठहाका) भगत तुम उन्हें देखने नहीं, बल्कि सँवारने जा रहे हो। वहाँ आए तूफान को शान्त करने जा रहे हो। मुर्दे को जिलाने जा रहे हो। रोते को हँसाने जा रहे हो। उसकी दुनिया आबाद करने जा रहे हो, जिसने तुमारी दुनिया उजाड़ी। तुम भूल रहो कि इस डाक्टर चढ्ढा की वजह से ही तुम्हारा बेटा आज इस दुनिया में नहीं रहा। ....मत जाओ.... मत जाओ.... मत जाओ भगत.... मत जाओ.... मत जाओ....

(कुछ क्षण शान्त। भगत माथा पकड़कर बैठ जाता है। फिर एकाएक उठता है।)

भगत : नहीं मैं.... मैं जाऊँगा....।"[2]

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - मंत्र - पृ.सं. 62
2. वही - पृ.सं. 72

भाषा पर रूपान्तरकार ने ध्यान दिया है। कहानी से भिन्न होकर नाटक में अंग्रेज़ी शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। साथ ही साथ स्थानीय बोलियों का प्रयोग भी हुआ है। डाक्टर चढ्ढा के संभ्रात परिवार के लिए एकदम सुव्यवस्थित भाषा का प्रयोग हुआ है-

"कैलाश : गुड ईवनिंग पापा, गुड ईवनिंग मम्मी।

डॉक्टर : गुड ईवनिंग बेटे।"[1]

बूढा भगत के लिए लोक भाषा का प्रयोग हुआ है - "अरे वो दस लाख दे तो भी न जाऊँ। इतने रुपए लेकर अब करना क्या है? मौत दरवाज़े पर खडी राह देख रही है। क्या भरोसा कल मर जाऊँ? फिर कौन भोगनेवाला बैठा है? बुढ़िया है मुझसे पहले तैयार है यम के दरबार में जाने को। फिर भला क्या दस हज़ार और क्या दस लाख।"[2]

नाटक में मुख्य रूप से यथार्थवादी रंगमंच का प्रयोग हुआ है। उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग के हाव-भाव को दर्शाने के लिए मंच पर एक ओर एक बहुत बडे बंगले का चित्र है तो दूसरी ओर टूटी-फूटी झोंपडी का चित्र है। अर्थात् मंच को दो भागों में विभाजित कर दो-दो सेट से दो स्थानों की कल्पना की गयी है। मंचीय उपकरणों के रूप में टेबल, कुर्सी, चाय की ट्रे, अक्बार, टूटी-सी खटिया, चूल्हा, बरतन आदि दिखाई पडते हैं।

3.1.18 ईदगाह - प्रेमचन्द

'ईदगाह' प्रेमचन्द की और एक लोकप्रिय कहानी है। इस कहानी की लोकप्रियता का मुख्य कारण इसका नायक 4-5 साल के बिना माँ-बाप के बालक, हामिद का चरित्र

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (मंत्र) - पृ.सं. 52
2. वही - पृ.सं. 69

है। हामिद ही इस पूरी कहानी को अपने छोटे-से कंधों पर उठाए और सँभाले हुए है। हामिद के जीवन का एकमात्र सहारा उसकी दादी अमीना है। दूसरों के कपड़े सिलकर अपने और हामिद के पेट भरने के अलावा आमदनी का और कोई जरिया उसके पास नहीं है। जहाँ ईद गाँव के दूसरे घरों के लिए खुशियों के पैगाम लाई है वहाँ अमीना के लिए ईद चिंताओं का पहाड लेकर आई है। लोग-बाग, बाल बच्चे सब शहर जाकर नमाज़ पढने और मेला देखने की तैयारियों में लगे हुए है। अमीना हामिद को लेकर चिंतित है। बच्चों के साथ तो अब्बा है, लेकिन हामिद अकेला है। उसे अकेला कैसे शहर भेजेगा? कौन उसकी देखभाल करेगा? अंत में तरह-तरह की ताकीदों के साथ तीन पैसे हामिद को देकर सबके साथ शहर भेज देती है।

कहानी का अगला अंश शहर से शुरू होती है। वहाँ ईदगाह पहूँचने तक बच्चों की नाना प्रकार की जिज्ञासाओं और उसकी आपसी बातचीत से होती है। शहर की सारी जगह उसकी बातचीत में आ जाती है। अनंतर ईदगाह और नमाज़ की चर्चा होती है। जब तक सब लोग ईदगाह में है सभी बराबर हैं, भाई चारे से बँधे हैं। जैसे ही नमाज़ खत्म होती है भाई चारे की दीवार बहराकर गिर जाती है। कहानी फिर मेले और बच्चे पर पुनः केन्द्रित हो जाती है। सभी बच्चे चर्खियों में चक्कर लगा रहे हैं, हिंडोले में झूल रहे हैं, रेवडियाँ खा रहे हैं, खिलौने खरीद रहे हैं। लेकिन अकेला हामिद बिना कुछ खरीदें दोस्तों का मेले का आनन्द उठाते देख रहा है। मेले से गाँव लौटते वक्त हामिद एक लोहे का चिमटा खरीदता है। क्योंकि चिमटे के अभाव में उसकी दादी रोज़ ही अपने हाथ जला देती है। वह इसलिए प्रसन्न है कि दादी उसकी इस समझदारी पर प्रसन्न होगी। जब अमीना हामिद के हाथ में चिमटा देखती है वह उसे छाती से लगाए रो रही है और उसे हज़ारों दुआएँ देती है।

‘ईदगाह’ कहानी बच्चों की मासूमियत, चुलबुलापन, आपसी प्रेम, सौहार्द और त्याग की भावनाओं को रेखांकित करनेवाली कहानी है। दूसरे रूप में कहे तो यह कहानी असुरक्षित जीवन और उस दरिद्रता की कहानी है जिसमें बच्चे वयस्क होने की नियति पाते हैं।

3.1.19 ईदगाह - नाट्यरूपान्तर

‘ईदगाह’ कहानी का नाट्यरूपान्तरण राजेन्द्र कानूनगो ने किया है। ‘ईदगाह’ कहानी मुख्यतः दो भागों में विभाजित है। नाटक में मुख्यतः पाँच दृश्य हैं। कहानी में कल्पना तत्व का प्रयोग किया गया है। नाटक सीधे यथार्थ को महत्व देता है। बच्चों के बाल मनोविज्ञान को बडे ही सहज ढंग से हू-ब-हू पेश करके रूपान्तरकार ने कहानीकार के साथ न्याय किया है।

इस नाटक की सबसे बडी खूबी है सूत्रधार की परिकल्पना। प्रत्येक दृश्य की शुरुआत सूत्रधार के कथन से होती है। रमज़ान का आना, हामिद का परिचय, गाँव तथा शहर के माहौल सब का परिचय सूत्रधार के वक्तव्य से होता है-

“सूत्रधार : रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद ईद आई है। ईदगाह जाने की तैयारी में गाँव में हलचल मची है। कोई नए कपड़े लेकर जा रहा है, तो कोई कुरते के बटन के लिए, पड़ोस के घर से सुई-धागा लेने दौड़ा जा रहा है। कोई टोपी खरीद रहा है। औरतें खुशी-खुशी अपने बच्चों को ईदगाह जाने के लिए तैयार कर रही हैं। बडे एक-दूसरे से गले मिल रहे हैं, दुआएँ दे रहे हैं। और बच्चे खुशी से नाच-गा रहे हैं। रोज़ ईद का नाम रहते थे, आज वह आ गई।”[1]

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (ईदगाह) - पृ.सं. 81

हामिद का परिचय भी सूत्रधार द्वारा करता है - "हामिद का बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता ही नहीं चला क्या बीमारी है। कहती तो सुनने वाला कौन था? दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया, तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है, अब वही उसकी माँ है और वही बाप।"[1] नाटक का वास्तविक आधार बाल मनोविज्ञान है। इसके तहत नाटककार ने दरिद्रता, आर्थिक तंगी, इस्लाम और उन दूसरे धर्मों की बराबरी और भाई चारे जैसे थोथे दावों पर कठोर व्यंग्य किया है।

नाटक में हामिद के समान अन्य कुछ बाल चरित्र भी है महमूद, मोहसिन, वसीम, सम्मी आदि। ये सब हामिद के दोस्त हैं और हामिद के समान गरीब भी। नाटक में अमीना के कथनों में गरीबी का पूरा चित्रण हमें मिलता है। अमीना कहती है - "आज ईद का दिन है और घर में एक दाना नहीं। (रुआँसी होकर) आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती।.... किसने बुलाया था इस निगोडी ईद को? इस घर में उसका क्या काम? लेकिन हामिद.... उस बच्चे को कैसे समझाऊँ कि बिना पैसों के कुछ नहीं होता।"[2] 'ईद' को 'निगोडी ईद' कहने के लिए गरीबी अमीना को विवश करती है।

संवाद योजना पर विचार करे तो यह नाटक मुख्य रूप से बच्चों पर केन्द्रित है। इसलिए रूपान्तरकार ने कहानी से भिन्न होकर नाटक में छोटे-छोटे संवादों को रखा है। संवादों को बडे ही प्रभावशाली ढंग से पेश करने का प्रयास भी किया गया है। शहर की

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (ईदगाह) - पृ.सं. 84
2. वही - पृ.सं. 84

इमारतें, कॉलेज, पुलिस थाना, अदालत सभी बच्चों के बातचीत के दायरे में आती है। अपने बडे-बुजुर्गों के ज़रिए वह जान चुका है कि पुलिसवाले चोरों से मिले रहते हैं, रिश्वत लेते हैं और उसे अपनी बेईमानी का फल भी भोगना पडता है। अब्दुल का कहना है "शहर में जितने चोर डाकू हैं, सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से कहते हैं चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर - "जागते रहो! जागते रहो। पुकारते रहते हैं।" तभी तो इन लोगों के पास इतने रुपए हैं।"[1] नाटक में बच्चों के संवादों का सबसे मनोरंजक पहलू प्रस्तुत है। हामिद के चिमटे और उसके अपने खरीदे हुए खिलौनों को लेकर उपजे तर्क वितर्क-

"मोहसिन : यह चिमटा क्यों लाया है पगले? इसका क्या करेगा? मेरा जैसा कोई खिलौना लाता।

हामिद : खिलौना क्यों नहीं है। (कंधे पर रखते हुए) ये देखो कंधे पर रखा बन्दूक हो गई। हाथ में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो मजीरे का काम ले लूँ। (बजाता है) एक चिमटा जमा दूँ, तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगाएँ, मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। (चिमटा कँधे पर रखकर) मेरा बहादुर शेर है - चिमटा।

शमीम : तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

हमादि : आग में बहादुर ही कूदते हैं। तुम्हारे यह वकील, सिपाही, भिश्ती सब औरतों की तरह घर में घुस जाएँगे। आग में वह काम है, जो यह रुस्तमें-हिन्द ही कर सकता है।"[2]

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (ईदगाह) - पृ.सं. 90
2. वही - पृ.सं. 96

हामिद का चिमटा दूसरे सारे खिलौनों पर भारी पडता है। हामिद उनके बीच 'रुस्तमें हिन्द' बनकर उभरता है। लेकिन हामिद खिलौने और मिठाई छोड़कर चिमटा इसलिए खरीद लिया, वह खुद कहता है "सच बताऊँ.... दादी के पास चिमटा नहीं है। रोज़ हाथ जला देती है। चिमटा देखेगी तो कितना खुश होगी। हज़ारों दुआएँ देगी। इन लोगों के खिलौने देखकर कौन इन्हें दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहूँचती है और तुरन्त सुनी जाती है।"[1] हामिद को पूरा विश्वास है कि दादी उसकी इस 'समझदारी' पर प्रसन्न होगी। बच्चों की मासूमियत को दर्शाने के लिए यह संवाद बहुत ही उपयुक्त निकला है।

नाटक का अंत बहुत ही हृदयस्पर्शी है। हामिद बिना कुछ खाये-पिये घर वापस आ जाता है। अमीना उसके हाथ में चिमटा देखती है। उसके पूछने पर हामिद कहता है "मैंने देखा, रोटियाँ बनाते समय तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं। इसीलिए सोचा चिमटा तुम्हारा काम आएगा। सो मैंने ले लिया।"[2] उसकी इस मनोवृत्ति देखकर अमीना उसे एकटक देखती है और रुआँसी होकर कहती है "मेरे लाल, मेरे बच्चे! तुझमें इतना त्याग, इतना सद्भाव, इतना विवेक। दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर तेरा मन नहीं ललचाया होगा? इतना जब्त तुझसे हुआ कैसे? वहाँ भी तुझे अपनी इस.... इस बुढ़िया की याद आ गई। अल्लाह तुझे खुश रखें।"[3] अमीना हामिद को छाती से लगाए रो रही है। दुआएँ देती है।

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (ईदगाह) - पृ.सं. 97
2. वही - पृ.सं. 100
3. वही - पृ.सं. 100

नाटक में कई स्थानों पर प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक दृश्य के अंत में मंच पर अंधकार की व्यवस्था की गयी है। दृश्य के आरंभ में प्रकाश केवल सूत्रधार पर केन्द्रित है। जब सूत्रधार चला जाता है तब प्रकाश पूरे मंच पर प्रतिफलित हो उठता है। नाटक में सूत्रधार का प्रयोग उसे लोक-नाट्य मंच की ओर संकेत करता है।

हामिद के घर की दयनीय स्थिति को दर्शाने के लिए मंच पर कुछ टूटे-फूटे बर्तन, पुराने कपड़े आदि को रखा गया है। उसी प्रकार मंच के एक कोने में मिठाई की दूकानें, खिलौने की दूकानें, लोहे की चीज़ों की दूकानें आदि को भी समाविष्ट किया गया है।

नाटक में गीत की कोई विशेष परिकल्पना तो नहीं हुई है। फिर भी बालकोचित मानसिकता को पैदा करने के लिए बच्चे अपने खिलौने को लेकर गाते हैं-

"अरे हाँ पगले कानिसटिबल....
खाकी वर्दी, लाल पगड़ी
मूछें तनी-तनी
काँधे पर बंदूक लिए
कैसी ये ठनी, कैसी है झनी।"[1]

ये पंक्तियाँ नाटक को अधिक प्रभावशाली बना दी हैं। नाटक की भाषा यूँ तो साधारण बोलचाल की भाषा है।

3.1.20 विध्वंस - प्रेमचन्द

'विध्वंस' प्रेमचन्द जी की और एक सशक्त कहानी है। इस कहानी का मुख्य पात्र है भुनगी। भुनगी बनारस जिले के बीरा ग्राम की निवासिनी है। वह एक संतानहीन विधवा

---

1. राजेन्द्र कानूनगो - चार एकांकी (ईदगाह) - पृ.सं. 97

गोडिन है, जिसका आधार केवल उसका भाड़ है। बुनगी भाड झोंककर गाँववालों का अन्न भूँजती रहती है। भुनगी इसी अन्न भूँजकर उसी भुनई से पेट की आग बुझाती हुई, उसी भाड़ के एक कोने में ही सो जाती है।

एक दिन भुनगी ने एक बहुत बडा अपराध किया। उसका अपराध, पं. उदयभानु के घर से आये एक मन अन्न को वह समय पर नहीं भूँज पाती और अन्न भाड़ ठंडा होने के नाते सही ढंग से नहीं भुन पाता। वह ज़मींदार की क्रोधाग्नि का शिकार हुई। अनाज न भुनने का परिणाम भुनगी का भाड खोदकर उसके विध्वंस में होता है, जिससे अभागिन विधवा गोडिन निरावलंब हो जाती है। असहाय भुनगी गाँववालों के कहने पर दुबारा भाड़ बनाने का प्रयास करती है। परन्तु इस बार पंडित उदयभानु खुद आकर उसके अधबने भाड को मारकर ध्वस्त कर देता है। भाड़ में झोंके जाने के लिए भुनगी द्वारा इकट्ठा किये पत्तियों के ढेर पर आग भी लगावा देते हैं।

पत्तियाँ भभक उठती है। भुनगी की जीवन में अब कुछ नहीं बचता। वह जमींदार के सामने उस अग्नि में कूद कर राख हो जाती है। भाड की आग में भुनगी का यह समर्पण व्यर्थ न होकर एक बहुत बडी विपत्ति का कारण बनता है। पवन का वेग आग को भड़क देता है और उसकी चपेट में पास की झोपड़ियों के साथ पंडित जी के विशाल भवन को भी अपनी लपेट में ले लेती है। भुनगी प्रेमचन्द के एक अविस्मरणीय चरित्र के रूप में कहानी के भीतर से उभरती है। दलितों की ताकत शोषकों को मिटा सकती है, उसका भी विध्वंस कर सकता है इसका एक सशक्त उदाहरण है 'विध्वंस' कहानी। ग्रामीण जीवन का जितना भरा पूरा चित्रण प्रेमचन्द में मिलता है, वह अन्यत्र विरल है।

3.1.21 विध्वंस - नाट्यरूपान्तर

'विध्वंस' कहानी को चित्रा मुद्‌गल जी ने नाट्यरूप दे दिया है। नाटक की शुरुआत स्वतंत्रता पूर्व के एक गाँव का चित्रण से होता है। नाटक और कहानी के कथानक एक ही है। नाटक मुख्यतः छेः दृश्यों में विभाजित हैं। कथ्य को बहुत ही सरल ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश चित्रा जी की ओर से हुई है। कहानी से भिन्न होकर नाटक में पात्रों की अधिकता है। सुगना, हरिया नामक दो कारिन्दा, 4-5 अन्य व्यक्ति इनके नाम नहीं है जो नाटक को आगे बढाने में आवश्यक नज़र आता है। भुनगी नामक गोडिन को एक सशक्त नारी पात्र के रूप में आदि से अंत तक नाटक में उभारा गया है।

नाटक की शुरुआत में हमारा परिचय भुनगी से होता है। गाँव के बाहर बने भाड़ में भड़भुज्जन भुनगी अनाज भून रही है। अनाज के भुनगी ही बड़े से झारे को तेज़-तेज़ चलाती है। भाड़ के सामने अनाज भुनवानेवालों की गहमा-गहमी, सबी अपनी बारी की प्रतिक्षा में उतावले हो रहे हैं। यह देखकर भुनगी कहती है "कारे भिन-भिना रहा रे जनेसर, चार ठो हाथ है का हमारा? सबर नहीं धरा जाता? सब का भूजेंगे, अऊर काहे नहीं भूजेंगे? तीन मुट्‌ठी अनाज हम काहे की कातिर लेते हैं - भुनाई की ही ऐवल में न! (झारा ज़मीन पर धरते हुए) एक दिन उपासे रह लेंगे, दुई दिन रह लेंगे - पेट में दाना तो हमको भी चाहिए न?"[1] भुनगी की मदद करने के लिए न औलाद है, न भतार वह अकेली है।

नाटक की संवाद योजना बहुत प्रभावशाली है। प्रत्येक पात्र का परिचय संवादों के ज़रिए होता है। पाडेंजी का क्रूर व्यक्तित्व, उसी प्रकार भुनगी का विद्रोह सब संवाद योजना के कारण बहुत सशक्त निकला है। पाडेंजी के क्रूरता का बयान करनेवाला संवाद है-

---

1. चित्रा मुद्‌गल - विध्वंस - पृ.सं. 36

"पाडेंजी : ऐ बे सुगना के बच्चे ऽऽ, उधर खोद, और ये भेडियाँ, जिनमें ये दाने भूँजती है उठा के पटक! फोड़ दे सारी भड़िओं को। स्साआली, सबका अनाज भूनेगी, हमारा दाना नहीं भूजेगी?

भुनगी : (रोती हुई) मालिक, मालिक, दया करो गरीबिन पे! ऐसा अनर्थ न करो। हमारी हाय न लो, ह, ह, हाय ठीक नहीं मालिक, पाडें बाबू.... पाडें बाबू... क्षिमा कर दो। हम तुम्हारी परजा हैं!

पाडेंजी : (क्रूरता से दुरियाते हुए) हट, दूर हट! छोड़, छोड़ पाँव छोड़! हमको सब खबर है? गाँव भर का दाना भूनने के बाद तूने हमारे दाने को हाथ लगाया है। अब भून गाँव भर का दाना और भर पेट उसी से। सुन रे हरिया, कुएँ से दो-चार बाल्टी पानी खींच के उलट दे मसके भाड़ पर। ससुरा ठीक से जुडा जाए.....।"[1]

इस प्रकार पाडेंजी के क्रूर व्यक्तित्व को बयान करनेवाला अनेक संवाद नाटक में निहित है।

नाटक में सबसे सशक्त संवाद भुनगी का है। गाँव के ज़मींदार पाडेंजी भुनगी से हर तरह का बेगार का काम कर लेता है। उसके अत्याचार से पीडित भुनगी में नकारात्मक भाव जन्म लेता है। वह मन ही मन यही कहती है कि "पांडे बाबू भैया होंगे, जमिंदार तो अपने घर के होंगे, कौन वे मेरी रोटियाँ चला देते हैं? मेरी आखिन के आँसू पोंछ देते हैं? अरे दिनमान अपना खून जलाती हूँ तब कहीं जाके दाना नसीब होता है, तिस पर, जब देखो तब उनके कारिन्दे खोपड़ी पर आकर सवार हो जाते हैं।"[2] पाडेंजी द्वारा भुनगी के अधबने

1. चित्रा मुद्गल - विध्वंस - पृ.सं. 43
2. वही - पृ.सं. 39

भाड को ठोकर मारकर ध्वस्त कर देता है जिससे भुनगी में क्रोध भाव जाग उठती है। वह पाडेंजी पर बरस उठती है - "भुनगी (आक्रोश से भर) अरे पांडे, तुम्हें आदमी का डर नहीं है तो भगवान का डर तो होना चाहिए? कसाई ऽऽ, मुझे इस तरह उजाड़ कर क्या पाओगे? क्या इस चार अँगुल की धरती में सोना उगेगा? अरे ऽऽ मैं तुम्हारे भले के लिए कहती हूँ पाडें बाबू! चेत जाओ दीन दुखियारे की हाय मत लो! मेरा रोआँ दुखी मत करो!"[1] नाटक में इस मुद्दे को काफी ज़ोर दिया है।

पाडेंजी भुनगी से गाँव छोडकर निकल जाने का हुकम देता है। लेकिन भुनगी हार माननेवाली नहीं है वह प्रतिशोध करता है-

"पाडेंजी : तो गाँव छोड़ निकल जा। तेरे सिफारिशी आए थे। बता रहे थे। आन गाँववाले तुझे बडे प्रेम से बुला रहे हैं.... चली जा। चली काहे नहीं जाती। मेरे सिर का भी पाप कटेगा।

सुनगी : क्यों छोड़कर निकल जाऊँ? बारह साल खेत जोतने से आसामी भी काश्तकार हो जाता है। मैं तो इस झोंपडे में बूढ़ी हो गई। मेरे सास-ससुर और उनके बाप-दादे, इसी झोंपडे में रहे हैं। जमराज को छोड़कर अब इस झोंपडे और भाड़ को मुझसे कोई और नहीं छीन सकता। कान खोलकर सुन ले। अब मैं तेरा अन्याय और नहीं सहनेवाली। बहुत सह लिया।"[2]

सर्वहारा वर्ग इस शोषित समाज में त्रस्त थे। उनकी व्यथा को सुनने का प्रयास कोई नहीं करता था। जब तक किसान का शोषण बन्द नहीं होता तब तक उसकी दयनीय

---

1. चित्रा मुद्गल - विध्वंस - पृ.सं. 46
2. वही - पृ.सं. 47

स्थिति में सुधार संभव नहीं। इसके लिए किसानों के शोषण करनेवाले वर्ग का नाश होना आवश्यक है। नाटक में भुनगी का एक-एक कथन ज़मींदार वर्ग पर गहरी चोट पैदा करनेवाला है।

नाटक में प्रत्येक दृश्य के अंत में संगीत का प्रयोग है। उसमें मुख्य रूप से शोक गीत और लोकधुन का प्रयोग नाटक को प्रभावशाली बना दिया है। यथार्थवादी शैली को प्रमुखत देते हुए चित्रा जी ने इस नाटक का गठन किया है। ध्वनि संयोजन इस नाटक की और एक प्रमुख विशेषता है। शुरू से लेकर मंच में अनाज भुनने का स्वर सुनायी पडता है। उसी प्रकार पानी की मटकी फूटने का स्वर, जूतों की चर्रमर्रा, गिलास पकड़ने की ध्वनि, लपटों के बढ़ते वेग की चड चड का स्वर, लोगों के चीखने चिल्लाने का स्वर आदि को भी प्रस्तुत किया गया है।

भाषा पर विचार करे तो कहानी में प्रेमचन्द जी ने ज़्यादाधिक लोक बोली का प्रयोग किया है। नाटक में इसी विशेषता को सुरक्षित बनाने की अदम्य कोशिश चित्रा जी की ओर से हुई है। नाटक में भुनगी का कथन पक्का लोक भाषा है - "हे राम ऽऽऽ उठूँ दैय्या... ढिबरी जला लूँ तनिक! आँच मन्दी हो गई सो, भाड़ से दाना भी सेवड़ा निकल रहा। अँधेरे में ठीक से सूझता भी तो नहीं। से ऽऽऽ आँ ऽऽऽ, करछुला चला-चला के दाहिनी बाँह चिलक मार रही।"[1] पाडेंजी का कथना देखिए - "आइए, आइए सुरेश बाबू और बिन्दा भाई! बडे दिन बाद सुध आई हमारी? हमने तो सोचा सुरेश बाबू, आप दिख नहीं रहे तो कहीं कलकत्ते बेटे-बहू के पास तो नहीं निकल गए?"[2] पाडेंजी जैसे उच्चवर्गीय लोगों की भाषा काफी सुव्यवस्थित है।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - विध्वंस - पृ.सं. 40
2. वही - पृ.सं. 44

3.1.22 यह मेरी मातृभूमी है

प्रेमचन्द की कहानी 'यह मेरी मातृभूमि है' एक प्रवासी भारतीय के जीवन पर आधारित है। इसका नायक है 'मैं' जो पूरे साठ वर्ष बाद अपनी मातृभूमि लौटता है। उसकी गगनचुंबी महत्वाकांक्षाओं ने तीस साल की युवा उम्र में उसे अपना देश छोड़कर अमरीका चलने के लिए विवश कर दिया था। वहाँ उसने व्यापार में बहुत सा धन कमाया तथा धन के आनंद भी खूब मनमाने लूटे। मातृभूमि का उत्कट प्रेम उसे सब कुछ त्याग करके भारत लौटने के लिए विवश करता है। लेकिन भारत लौट आने पर उसे जो अनुभव हुआ उसी का बयान कहानी में चित्रित है।

भारत लौटने पर मैं (वाचक) को अत्यंत दुःख हुआ। साठ साल पहले छूट गए अपने प्यारे देश के बदले हुए रंग-ढंग उसे आहत कर देता है। जहाँ भी देखो वहाँ अंग्रेज़ी बोलते मल्लाह, अंग्रेज़ी दूकानें, दौडती हुई ट्रामें, रबट के टायरोंवाली मोटर गाडियाँ, मुँह में चुरुट दबाए हुए आदमी। इन सबके बीच में 'मैं' अपने देशवासी को पहचानने की कोशिश करती है। जगह-जगह दुराचार के अड्डे बने हुए थे, सब कहीं अंग्रेज़ी राज है।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने जिस भारतीय समाज पर आधिपत्य जमाया वह एक पतनोन्मुखी सामंती समाज था जो अपने ही अंतर्विरोधों के कारण सड रहा था। इस संदर्भ में कार्ल मार्क्स का यह कथन विचारणीय है - "यह कैसे हुआ कि भारत के ऊपर अंग्रेज़ों का आधिपत्य कायम हो गया? महान मुगल की सर्वोच्च सत्ता को मुगल सुबेदारों ने तोड दिया था। सुबेदारों की शक्ति को मराठों ने नष्ट कर दिया था। मराठों की ताकत को अफगानों ने खत्म किया, और जब सब एक-दूसरे से लड़ने में लगे हुए थे, तब अंग्रेज़ घुस आये और उन सबको कुचलकर खुद स्वामी बन बैठे। एक देश जो न सिर्फ मुसलमानों और हिन्दुओं

में, बल्कि कबीले-कबीले और वर्ण-वर्ण में भी बंटा हुआ हो; एक समाज जिसका ढाँचा उसके तमाम सदस्यों के पारस्परिक विरोधों तथा वैधानिक अलगावों के ऊपर आधारित हो - ऐसा देश और ऐसा समाज क्या दूसरों द्वारा फतेह किये जाने के लिए ही नहीं बनाया गया था।"[1] अंग्रेज़ी राज ने हमारे भारत-भूमि को जर्जर बनाया। हमारी संस्कृति को मिटा दिया।

रात के वक्त गाँव में मैं (वाचक) ने पाँच घरों के दरवाज़े खटखटाकर वह गृहस्वामियों से केवल रात भर टिकने की जगह देने का अनुरोध करता है। लेकिन सभी ने तिरस्कार से मुँह मोड लिया, तो किसी ने भिखरी की तरह मुट्ठी भर चने उसकी हथेली पर रखा दिया। इसी बीच उसे इस बात की याद आ गयी कि उसके विदेश जाने से पूर्व गाँव में एक धर्मशाला बन रही थी। 'मैं' धर्मशाला की ओर निकल गया, लेकिन वहाँ से निराश होकर लौट आ गया। 'मैं' (वाचक) के मुख से सर्द आह निकल रहा है। वह बार-बार दोहरा रहा है - यह मेरी मातृभूमि नहीं है.... नहीं। अब वह देशविहीन है। लेकिन बीच में कुछ स्त्री-पुरुषों के भक्ति-भावना देखकर 'मैं' को जान पडा कि नहीं यह मेरी मातृभूमि है। यहाँ कहानी समाप्त हो जाती है। कहानी एक सत्य को असंदिग्ध रूप में हमारे सामने रख देती है कि भारतीय संस्कृति विलुप्त होती जा रही है। उसका जो कुछ अंश बाकी है उसे हमेशा-हमेशा के लिए सुरक्षित रखना हमारा फर्ज़ है।

3.1.23 यह मेरी मातृभूमि है - नाट्यरूपान्तर

'यह मेरी मातृभूमि है' कहानी का नाट्यरूपांतरण चित्रा मुद्गल जी ने किया। 'यह मेरी मातृभूमि है' कहानी में कलात्मकता का अभाव है। अत्यन्त भावुकता के कारण कहानी प्रभावपूर्ण नहीं हो पाई है। कहानी की इसी कमी को दूर करने का प्रयास नाटक में हुआ है।

---

1. कांतिमोहन - प्रेमचन्द और दलित विमर्श - पृ.सं. 85

कहानी एकालाप शैली में है - न गाँव का नाम है न पात्रों का। केवल विवरण और संकेत है। इसलिए रुपान्तरकार ने इसमें एक महत्वपूर्ण प्रयोग किया, वह है नटी और सूत्रधार की परिकल्पना। नटी तथा सूत्रधार द्वारा मंच पर इस कहानी का परिचय दिया जाता है और उसका नाट्यरूपान्तर खेलने जाने का संकेत भी दिया जाता है। नटी तथा सूत्रधार द्वारा श्रोताओं की सुविधा के लिए कुछ पात्रों को गढ़ लेते हैं और उसका नामकरण करते हैं, तो सुनो - "अमरीका में रह रहे नब्बे वर्षीय धनाढ्य व्यापारी जो कहानी के मुख्य पात्र है, उनका नाम रख लेते हैं - शंभुनाथ। शंभुनाथ की पत्नी है मीनाक्षी ! जवानी में जिनकी सुन्दरता और लावण्य की ख्याति तमाम अमरीका में फैली हुई थी। विनय, सौरभ, दिनेश, रमेश और आदित्य - शंभुनाथ बाबू के पाँच पुत्र हैं। हृष्ट-पुष्ट सुन्दर उनके यह आज्ञाकारी पुत्र उन्हीं के कारोबार में लगे हुए।"[1] रूपान्तरकार चित्राजी ने सूत्रधार के माध्यम से प्रत्येक पात्र को मनोहारिता से प्रस्तुत किया है। यह इस नाटक की सबसे बडी खूबी है।

नाटक के तीन घटना स्थान हैं अमरीका, भारत और गाँव (गनेशी खेर)। मंच में इन तीनों स्थानों को दर्शाने के लिए आवश्यक मंचीय उपकरणों का प्रयोग हुआ है। नाटक में मुख्यतः सात दृश्य है। अमरीका छोड़कर शंभुनाथ का भारत आने का कारण सूत्रधार हमें समझाता है। 'यह मेरी मातृभूमि नहीं है, यह मेरा देश नहीं है' वाक्य नाटक में बार-बार गूँज उठता है। नाटक में एक अभिनेता द्वारा स्वर बदलकर दो-तीन पात्रों की भूमिका निभायी जाती है। शंभुनाथ तथा मीनाक्षी को बूढापे की हल्की शिथिलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

---

1. चित्रा मुद्‌गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 51

संवाद योजना की बात करे तो प्रत्येक संवाद भारतीय संस्कृति की मूल्यवत्ता को मुखर करनेवाला है। शंभुनाथ के प्रत्येक शब्दों में देश के प्रति गर्व है। अमरीका में शंभुनाथ के घर से नाटक शुरू होता है। पत्नी मीनाक्षी उससे पूछती है भारत में उसका कौन बचा है। इसके प्रत्युत्तर में शंभुनाथ कहता है "वहाँ मेरे खेत, खलिहान, बागन, जंगल, पहाड़, तीज, त्योहार सभी कुछ तो है.... मैं अपनी मातृभूमि से दूर हूँ, यह मेरा देश नहीं है, और न ही मैं इस देश का हूँ।"[1] शंभुनाथ के प्रत्येक शब्दों में देश के प्रति गर्व है। वह भारतीय संस्कृति के प्रत्येक तंतु को पहचाननेवाला था। उसे दृढ़ विश्वास था कि अपने देश की इस महान गरिमा सदा सुरक्षित है। वह इस इच्छा लेकर भारत लौटता है कि वह अपनी मातृभूमि का रजकण बने।

नाटक में अंग्रेज़ी शासन की कूटनीति को बडी गंभीरता से प्रस्तुत किया है। अंग्रेज़ी सभ्यता के आगमन से देश में जो विकृतियाँ ला दी है उसे देखकर शंभुनाथ विक्षुब्ध हो उठता है। उसकी आँखों में आँसू भर आये और खूब रोया कि "यह, यह मेरा देश नहीं है, जिसके दर्शनों की इच्छा सदैव मेरे मन में लहराया करती थी, यह तो कोई और देश है - अपरिचित, अनजान! अमरीका या इंगलैंड़....।"[2] जगह-जगह दुराचार के अड्डे बने हुए थे सब कहीं अंग्रेज़ी राज है।

नाटक में शंभुनाथ और तांगेवाले के बीच का संवाद बहुत महत्वपूर्ण है। उसमें अंग्रेज़ी सभ्यता के निशान साफ-साफ दिखाई पडता है।

---

1. चित्रा मुद्गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 52
2. वही - पृ.सं. 54

"शंभुनाथ : ज़रा ताँग रोकना भैया, रोको रोको - अहा। यह तो वही नहर है, जिसमें हम रोज़ घोड़े नहलाते थे और खुद भी डुबकियाँ लगाते थे.... मगर ये ऽऽ नहर के दोनों पाटों को काँटेदार तारों से काहे घेर रखा है?

ताँगेवाला : कौऊन ज़माने की बात कर रहे बाबू, सामने अंग्रेज़ लाट का बंगल देख नहीं रहे? नहर का पानी अब उन्हीं के इस्तेमाल में आता है बाबूजी, मजाल है किसी की जो चुल्लू भर भी ले। बंदूक ताने सन्तरी गोली दाग देंगे....।"[1]

गाँव के स्कूल की दशा भी दयनीय है-

"ताँगेवाला : यहाँ तो हमने हमेशा यही स्कूल देखा बाबू! वो देखिए, वो सामने....

शंभुनाथ : (क्षुब्ध होकर) क्या तुम उस टूटी-फूटी चारदीवारी की बात कर रहे हो...

ताँगेवाला : जी बाबूजी... और वो देखिए कैसे पढ रहे हैं बच्चे (बच्चों के द्वारा पहाड़े बोलने की आवाज़ें....)

शंभुनाथ : वे ऽऽ दुर्बल, कान्तिहीन रोगियों-सी सूरत वाले, फटे-मैले कपड़ों में ऊँघते, बच्चे-विद्यार्थी हैं?

ताँगेवाला : (उदासीन भाव से) जी बाबूजी... हम गरीबों के बच्चे.... ऐसे ही स्कूल... ऐसी ही दशा में पढ़ते हैं....।"[2]

'अतिथि देवो भवः' भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है। लेकिन आज यह मूल्य भी विलुप्त हो रहे हैं। नाटक में रात में शंभुनाथ रात भर टिकने के लिए गृहस्वामियों का

---

1. चित्रा मुद्गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 56
2. वही - पृ.सं. 57

दरवाजा खटखटाया। लेकिन 'आगे जाओ यहाँ जगह नहीं है' कहकर सभी ने तिरस्कार से मुँह मोड दिया। गाँव की धर्मशाला भी दुराचार में लीन थी। नाटक में सूत्रधार का कहना है "धर्मशाला धर्मशाला नहीं रही। जुआरियों, शराबियों, दुराचारियों का अड्डा बनी हुई है और गरीब भल आदमी वहाँ पाँव नहीं दे सकता।"[1] गाँव की इस दुर्दशा देखकर शंभुनाथ पूरी तरह टूट चुका है। वह अन्तर्द्वन्द्व में पड़ता है "कैसे निर्णय करूँ, क्या निर्णय करूँ। अपने पुत्रों के पास अमरीका लौट जाऊँ? वहाँ जाकर अपना शरीर त्यागूँ? उसी मिट्‌टी में मिल जाऊँ?.... कैसी साथ लेकर आया था.... अपना यह शरीर अपनी मातृभूमि को ही सौपूँगा.... अहँ, अब तक मेरी मातृभूमि थी। मेरा कोई देश था - अब मैं देशविहीन हूँ! मेरा कोई देश नहीं, मैं कहीं का नहीं।"[2] यहाँ एक प्रवासी भारतीय के देशप्रेम को पूरी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है।

आधीरात में गंगा-स्नान करने के लिए निकले वृद्धजनों को देखकर, उसकी भजन सुनकर शंभुनाथ अत्यंत संतुष्ट हो जाता है - "चलूँ, मैं भी इनके साथ हो लूँ! भगीरथी पतित पावनी गंगा में डुबकी लगा लूँ। जिसकी लहरों में डुबकी लगना, जिसकी गोद में अपनी मिट्‌टी विसर्जित करना... प्रत्येक हिन्दू अपना परम सौभाग्य समझता है....।"[3] शंभुनाथ अमरीका में अपनी पत्नी तथा पुत्रों को चिट्‌टी द्वारा जवाब दिया "अब मैं अपने देश में हूँ, भक्तगण मेरे भाई हैं.... गंगा मेरी माता। मेरी प्रबल इच्छा है इसी स्थान पर मेरे प्राण निकले और मेरी अस्थियाँ गंगा माता की लहरों को भेंट हो।"[4] आज की उपभोग

---

1. चित्रा मुद्‌गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 63
2. वही - पृ.सं. 64
3. वही - पृ.सं. 65
4. वही - पृ.सं. 65

संस्कृति ने प्रत्येक वस्तु को उपभोग के दायरे में लाकर खडा किया है। कला, साहित्य, संस्कृति, धर्म, संगीत, संबन्ध, मनुष्य सब आज केवल उपभोग की वस्तु बन गये हैं। इस सच को दर्शकों तक लाने में कहानी से ज्यादा नाटक आगे निकला है।

नाटक में नट, नटी तथा सूत्रधार का प्रयोग करते हुए यह नाटक संस्कृत नाट्य मंच की परंपरा को अपनाता है। नाटक में संगीत की खूब इस्तेमाल हुआ है। नाटक की शुरुआत नौटंकी कला वाद्य के 'किण, किण, किण, किण, घिन्ना, घिन्ना' शब्द से होती है। मंच में अमेरिका को दर्शाते समय पुराना पश्चिमी संगीत का प्रयोग हुआ है। ग्रामीण सौन्दर्य को मुखर करने के लिए ग्रामीण संगीत का प्रयोग, उदासी गीत, मटके पर उँगलियों की पडती थाप का संगीत आदि का प्रयोग हुआ है। ग्रामीण गीत का एक उदाहरण देखिए-

"गोरी चली रे नेइहरवा बलम सिसकी दै।
दै रोवैं, बागन में रोवैं।
बगीचा में रोवैं-
देहरी पर सिर दैं मारैं बलम, सिसकी दै, दै, रोवैं...।"[1]

यह गीत लोकगीत का सशक्त उदाहरण है।

ध्वनि प्रयोजन का खूब प्रयोग भी नाटक में हुआ है। पानी के जहाज़ के भोंपू, भोंपू की आवाज़ बन्द होते ही बन्दरगाह पर यात्रियों और खलासियों की हलचल का शोर, अचानक तेज़ दौड़ती हुई गाड़ी की सीटी, संग पटरियों की घडघडाहट का शोर, घोड़े की टापों का स्वर, गाँव की चक्की की 'पुक' 'पुक' स्वर, आधीरात को दर्शाने के लिए नेपथ्य

---

1. चित्रा मुद्गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 56

से गीदडों, झींगुरों और कुत्तों के भौंकने का स्वर, गायत्री मंत्र जापने का स्वर आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है। उसी प्रकार रेलगाड़ी की सीटी की आवाज़ उसका आगमन दर्शाता है। आवाज़ का धीरे-धीरे बढ़ना रेलगाड़ी के नज़दीक आने का एहसास देता है।

नाटक में सभ्य लोगों के लिए सभ्य भाषा का प्रयोग और ग्रामीण लोगों के लिए लोक बोली का प्रयोग हुआ है। शंभुनाथ के लिए नाटक में सभ्य भाषा का प्रयोग हुआ है - "देखो मीनाक्षी, घर-परिवार की कोई ज़िम्मेदारी मुझ पर शेष नहीं। विनय, रमेश, दिनेश, सौरभ और आदित्य ने मिलकर मुझे हर दायित्व से मुक्त कर दिया है।"[1] नाटक के एक ग्रामीण अंगनलाल का कहना है "स्वरूप चचुआ पारसाल लकवा में खतम हो गए.... आपके घर भी कोऊ नहीं रहा, कालिन्दी बुआ और उनका बेटवा रामहेत नाव से गंगा पर जाए रहे थे, सो ऽऽऽ नाव उलट गई....।"[2] अंगनलाल जैसे देहाती लोगों के लिए लोक भाषा का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार देखें तो कहानी से ज्यादा नाटक प्रभावशाली नज़र आता है।

3.2 भीष्म साहनी की कहानियों के नाट्यरूपान्तर

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी साहित्य को जिन रचनाकारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से एक व्यापक फलक प्रदान किया उसमें भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपना कथा परिवेश ज्यादातर शहरी मध्यवर्ग के जीवन को ही बनाया है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "सादगी और सहजता भीष्म जी की कहानी कला की ऐसी खूबियाँ हैं, जो प्रेमचन्द के अलावा और कहीं नहीं दिखाई देती हैं। जीवन की विडंबनापूर्ण स्थितियों की पहचान भी भीष्म साहनी में अप्रतिम है। यह विडंबना उसकी अनेक अच्छी कहानियों

---

1. चित्रा मुद्‌गल - यह मेरी मातृभूमि है - पृ.सं. 53
2. वही - पृ.सं. 61

की जान है।"[1] भीष्म जी ने हिन्दी साहित्य जगत को अपनी छह रंगमंचीय नाट्य रचनाओं - 'हानूश', 'कबीरा खडा बाज़ार में', 'माधवी', 'मुआवजे', 'रंग दे बसंती चोला' और 'आलमगीर' से समृद्ध किया है। बचपन से ही रंगमंच के प्रति उनका गहरा लगाव था। भीष्म साहनी ने अपनी कुछ ऐसी कहानियों का नाट्य रूपान्तरण किया है जिनमें नाटकीयता की मात्रा अधिक है। ये रूपान्तरण उन्होंने मुख्य रूप से आकाशवाणी और दूरदर्शन के लिए किये थे। परवेज़ अख्तर के निर्देशन में साहनी जी की 'साग-मीट', 'त्रास', 'अमृतसर आ गया है' कहानियों को 'नरमेध' शीर्षक से 'नटमंडप' ने मंचन किया था।

3.2.1 झुटपुटा

भीष्म साहनी की कहानियों का संसार विविधताओं से भरा है। 'झुटपुटा' दिल्ली के सिक्ख नरसंहार पर लिखी गई कहानी है। इसमें इंदिरा गाँधी की हत्या के बाद होनेवाले सिक्ख विरोधी दंगे की भयावहता और उसमें कहीं बचे हुए मानवीय मूल्यों का मार्मिकता के साथ प्रस्तुतीकरण हुई हैं। यह ऐसा ही एक दंगा था, जो नियोजित था और जिसमें हिन्दुओं ने सिक्खों को दुश्मनों की तरह मारा और उसे तबाह किया। पाकिस्तान बनने के बाद दिल्ली में शरणार्थियों के कई मुहल्ले बने और अब उसमें से सिक्ख मारे जा रहे हैं, उनके सामान लूटे जा रहे हैं।

कहानी का प्रमुख पात्र है प्रोफेसर कन्हैयालाल। वह दूध लेने आये लोगों की लाइन में डोलची लेकर खडे थे, वहाँ लोगों के बीच पिछले दिन हुए दंगे के बारे में आपसी बातचीत चल रही थी। लोग अभी भी अनिश्चय की हालत में कभी आतंकित होते हैं, कभी

1. विवेक द्विवेदी - भीष्म साहनी उपन्यास साहित्य - पृ.सं. 37

गुस्से में रहते हैं। सब में आत्म प्रताडना का भाव तो है लेकिन कोई प्रतिरोध नहीं करता। इस समय प्रभात का झुटपुटा था इसलिए कल हुई वारदात के अवशेष साफ-साफ दिखाई नहीं पड रहे थे। सारा का सारा मुहल्ला मल्बे में तब्दील हो चुका है। दूध अभी तक बूथ पर नहीं आया था। सेंटर से टेलिफोन आया कि दूध तो बहुत है पर उसे कैसे भेजें? क्योंकि सभी ड्राइवर सरदार है। ऐसे माहौल में सरदारों का निकलना मौत को गले लगाने जैसा था। इसी बीच खबर मिलती है कि एक बढई सिक्ख को जिन्दा जला दिया गया। इस प्रकार की तरह-तरह बातें सुनकर कन्हैयालाल का मन अनेक प्रकार की शंकाओं से ग्रस्त हो जाता है।

कहानी का अंत बहुत ही हृदयस्पर्शी है। कहानी के अंत में देख सकती है कि जिनको लूटा जा रहा था, जिनकी संपत्ति को क्षति पहूँचायी गयी थी, और जिनकी हत्या हो रही थी, उसी वर्ग का एक सिक्ख ड्राइवर बच्चों की चिन्ता में दूध का ट्रक लेकर पहूँचता है। दंगा और फसाद जहाँ विनाश कर चुका है, उसी बस्ती में एक सिक्ख सरदार द्वारा बच्चों की चिन्ता में दूध की गाड़ी को लेकर आना इसी बात का प्रतीक है कि मानवीय संबंध दंगे-फसाद में भी बने रह सकते हैं। इस प्रकार दहशत, रक्तपात, तनाव, हिंसा और धर्म तथा जातिगत द्वेष के बीच भी इन्सानी रिश्ते, मानवीयता और मानवीय संबंध किस तरह कायम रहती है इसका साक्षात्कार 'झुटपुटा' कहानी में विद्यमान हैं।

3.2.2 झुटपुटा - नाट्यरूपान्तर

हिन्दू-सिक्ख सांप्रदायिकता के भयावहता को ज्यादाधिक लोगों तक पहूँचाने के लिए भीष्म जी ने 'झुटपुटा' कहानी का सफल नाट्यरूपान्तरण बनाया है। नाटक की कथावस्तु कहानी की तरह ही है। कहानी और नाटक के अन्तर को समझाते हुए यह बात सामने आती है कि कहानी में कन्हैयालाल दंगे के सौफनाक हादसे को अपनी स्मृतियों के

माध्यम से पाठकों के सामने व्यक्त करता है वहीं नाट्यरूपान्तरण में पात्रों के आपसी संवादों के माध्यम से दंगे की वारदात पाठक यानी दर्शकों तक पहूँचती है। जैसे-

"एक : पिछले दो दिन जो कुछ शहर मे होता रहा है उससे लोग सहम गए हैं। अभी भी बहुत लोग डरे हुए हैं।

दूसरा : सामने सब्ज़ीवाले की दूकान आज भी नहीं खुली। टाट का पर्दा पडा हुआ है। मैं मक्खन-डबलरोटी लेने गया तो दूकानदान बोला, जो लेना है जल्दी से ले लीजिए, क्या मालूम आज फिर दूकानें बन्द हो जाएँ।

एक : जो कुछ हुआ है, बहुत बुरा हुआ है। ....कल तो हमारे मुहल्ले का रूप ही बदला हुआ था। ....किसे मालूम थाकि यहाँ पर बी दूकानें लूटी जाएँगी, मोटरों, गाडियों को आग लगाई जाएगी। वह सामने जली हुई मोटर देख रहे हो न! मेरी आँखों के सामने यह सब हुआ, सरदार, दवाइयोंवाले की दूकान भी लूट ली गई। और भी कितना कुछ हुआ।"[1] नाटक में बातें और अधिक स्पष्ट हो गया है।

कहानी की अपेक्षा नाटक में गुण्डा, तीन आदमी जैसे कुछ पात्रों की अधिकता है जो नाटक को गति प्रदान करने में सहायक है। कुछ अपवादों को छोड़कर संवाद ज्यों के त्यों है। उदाहरण के लिए कहानी में "दूकान सरदार की है मगर घर तो हिन्दू का है, तमाशबीनों में से एक आदमी बोला, इसलिए अलमारी बाहर खींच लाये हैं। इस पर एक और आदमी ने टिप्पणी की; इधर पीछे ड्राईक्लीनर की दूकान को आग नहीं लगायी।"[2] नाटक में इस संवाद को छोटा कर दिया गया है - "दूकान सरदार की है, पर घर तो हिन्दू

---

1. भीष्म साहनी - झुटपुटा - पृ.सं. 193
2. भीष्म साहनी - पाली (झुटपुटा) - पृ.सं. 48

का है। ....इधर पीछे, ड्राईक्लीनर की दूकान को भी आग नहीं लगायी।"[1] कहानी से ज्यादा नाटक उसकी संवाद शैली में आगे निकली है। कहानी के प्रत्येक मुद्दों को संवादों के ज़रिए बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास नाटक में हुआ है। दंगे और फसाद में घिरे देश की स्थिति को देखकर कन्हैयालाल कहता है "हमारा देश कैसी स्थिति में आ पहूँचा है। कभी-कभी मुझे लगता है कि हम सब किसी कगार पर खड़े है और एक झीनी काँच की दीवार हमें गिरने से बचाए हुए है। यह काँच की दीवार चटक गई तो बचाव का कोई भी साधन नहीं रहेगा और हम सीधे किसी अभाह गर्त में जा गिरेंगे।"[2] सांप्रदायिकता की भीष्म स्थिति का एहसास कन्हैयालाल के शब्दों में निहित है।

हिन्दू-सिक्ख सांप्रदायिकता के अनेक मुद्दे नाटक में निहित हैं। दंगे-फिसाद के नाम पर दुराचारियों ने जनता को किस प्रकार लूटा है इसका चित्रण नाटक में सशक्त रूप से हुआ है। जैसे-

"मलहोत्रा : लूटने लगे हैं। अन्दर घुस-घुसकर माल लूटने लगे हैं....।

बुढ़िया : और सभी लोग खड़े तमाशा देख रहे हैं.... वे जीण जोगियो....।

गुंडा : यहाँ से हट जाओ, बुढ़िया चली जाओ।

बुढ़िया : हाय, कैसा कहर फूटा है... अरी पुष्पा, तू कहाँ जा रही है?

पुष्पा : क्यों मौसी? सब लोग चीजें उठा-उठाकर ला रहे हैं, मैं क्यों न लाऊँ?

बुढ़िया : अपनी बेटी को भी साथ लेआई है? बेशर्म!

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झुटपुटा) - पृ.सं. 199
2. वही - पृ.सं. 202

पुष्पा : इसमें शर्म-वर्म की कोई बात नहीं। ...मुझे समझाती हो, मौसी, पहले उन्हें तो समझाओ। (बेटी से) जा री, तू भागकर जा, देर कर दी तो कुछ हाथ नहीं लगेगा।"[1]

यह दंगा मुख्य रूप से सिक्खों पर केन्द्रित था। सिक्खों को तबाह करना फिसादीयों का मुख्य लक्ष्य था। जैसे नाटक में-

"तीसरा : ....दूकान सरदार की है, पर घर तो हिन्दू का है। ...इधर पीछे, ड्राईक्लीनर की दूकान को बी आग नहीं लगाई। क्योंकि उसमें एक हिन्दू और एक सिक्ख दोनों साझीदार हैं।

मल्होत्रा : यह भी अच्छी रही।

तीसरा : उधर रणजीत नगर में एक टेलर मास्टर की दुकान है, वह सिक्ख है। कल उस दुकान को जलाने लगे तो किसी ने पुकारकर कहा, 'ओ कमबख्तो, दुकान सिक्ख की है, पर इसमें कपड़े तो ज़्यादा हिन्दुओं के ही हैं। इस पर उन्होंने आग नहीं लगाई। उसे भी छोड़ दिया।"[2]

हिन्दू-सिक्ख दंगे के आतंक के साये में नैतिक गिरावट की स्थिति साफ हो गयी है।

दंगे के बावजूद भी हिन्दू-सिक्ख के बीच जो मानवीय रिश्ते बने हुए थे वे टूटे नहीं हैं इसका चित्रण नाटक में हुआ है। सक्सेना की बेटी द्वारा हाथ में तीन डोलचियाँ लेकर दूध लेने आये लोगों की लाइन में खडे रहना इसका एक उदाहरण है-

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झुटपुटा) - पृ.सं. 198-199
2. वही - पृ.सं. 199

"कन्हैयालाल : बेटी, तुम तीन डोलचियाँ उठा लाई हो। तुमने यह लाइन देखी है? अगर सभी लोग तीन-तीन डोलचियाँ दूध लेना चाहेंगे तो कितने लोगों को दूध मिल पाएगा?

लड़की : (धीमी आवाज़ में) एक डोलची साथवालों की है, सरदार अंकल की, दूसरी ऊपरवालों की, वह भी सरदार अंकल की। तीसरी हमारी।

कन्हैयालाल : मैंने ठीक ही समझा था मल्होत्रा, लाइन में कई लोग दो-दो, तीन-तीन डोलचियाँ उठाए हुए हैं। ...मलहोत्रा, मुझे कभी-कभी लगता है जैसे हम लोग इतिहास के झुटपुटे में जी रहे हैं। आपसी रिश्तों के इतिहास का पन्ना पलटा जा रहा है, दूसरा खुल रहा है। इस अगले पन्ने पर, जाने हमारे लिए क्या लिखा होगा!"[1]

नाटक के अंत में सरदार ड्राइवर द्वारा दूध लेकर आना मानवीय संबंध की दृढ़ता को व्यक्त करनेवाला है। सरदार ड्राइवर का कहना है "बाबा, बच्चों को दूधों तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मन, देखा जाएगा, जो होगा। दूध तो पहूँचा आऊँ!"[2] शायद आज भी दुनिया ऐसे ही नेक दिलवालों की वजह से टिकी है।

नाटक में आवाज़ योजना का खूब प्रयोग हुआ है। सीढ़ियों पर से उतरने कदमों की आवाज़, शीशा तोड़ने की आवाज़, दरवाज़ा तोड़ने की आवाज़, ट्रक के इंजन के घरघराने की आवाज़, लौंडे-लपाड़ों की आवाज़, मोटर पर डंडे बरसाने की आवाज़, अलमारी को पीटने की आवाज़, शीशा तोड़ने की आवाज़ आदि नाटक को प्रभावशाली

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झुटपुटा) - पृ.सं. 206
2. वही - पृ.सं. 208

बना दिया है। इसके अलावा फेड आऊट (Fade out), फेड इन (Fade in), पोस् (Pause) जैसे टेक्निकल शब्दों का प्रयोग भी नाटक में हुआ है।

नाटक में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटक में बुढ़िया नामक पात्र की भाषा लोक भाषा है। जैसे, बुढिया कहती है "वे, जीण जोगियो, इन्हीं गुंडियाँ नू रोक दियो। इन्हा नू मना कर दियो।"[1] मलहोत्रा का कहना है "इनमें से जाना-पहचाना तो एक भी चेहरा नहीं है। सभी बाहर के लोग जान पड़ते हैं।"[2] अर्थात् कन्हैयालाल, मलहोत्रा जैसे पात्रों की भाषा काफी सुव्यवस्थित है। संपूर्ण नाटक इस बात को प्रमुखता देता है कि मानवता के नाम पर अब भी कुछ शेष है।

3.2.3 चीफ की दावत

'चीफ की दावत' भीष्म साहनी जी की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी में साहनी जी ने मध्यवर्गीय जीवन के अन्तर्विरोध और उसके खोखलेपन को बडी सूक्ष्मता के साथ उद्घाटित किया है। उपनिवेशीकरण ने संबंधों के बीच एक गहरी खाई पैदा की है। इसका जीता-जागता उदाहरण है शामनाथ की बूढ़ी माँ। माँ बेटे और बहू के लिए समस्या है। "स्वतंत्र भारत में घर और संबंध की परिभाषा बदल चुकी है। स्वतंत्र भारत में माँ का फालतू हो जाना कहीं से भी विकास का चिह्न नहीं था। यह बाज़ार और व्यापार की वह अहमियत थी, जिसकी चर्चा आजकल अधिक की जाती है। यह एक साथ संवेदना और मानवीयता का लोप था।"[3] कहानी में देख सकती है कि जो माँ पहले बेटे के लिए 'फालतू सामान की तरह' थी बाद में वही माँ सर्वाधिक मूल्यवान बन जाती है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झुटपुटा) - पृ.सं. 197
2. वही - पृ.सं. 197
3. रविभूषण - पल प्रतिपल (सं) देश निर्मोही - मार्च-जून 2001 - पृ.सं. 273

शामनाथ के घर चीफ की दावत की तैयारियों से कहानी शुरू होती है। वह और उसकी पत्नी शोभा घर की अनचाही वस्तुओं को कहीं छिपा देना चाहते हैं। वे दोनों घर की फालतू सामानों को अलमारियों के पीछे और पलंग के नीचे छुपाते हैं। तभी शामनाथ के सामने एक बहुत बडी समस्या खडी हो जाती है कि माँ का क्या होगा। पत्नी उसे पडोसियों के घर भेजना चाहती थी लेकिन शामनाथ माँ से अपनी कोठरी में छुपछाप रहने का आदेश देता है। वह माँ से यह आदेश भी देता है कि जब मेहमान लोग आ जाये तो उसे गुसलखाने के रास्ते बैठक में चली जाना है। वह माँ से यह भी कहता है कि जल्दी से सोना नहीं क्योंकि माँ की खर्राटों की आवाज़ दूर तक जाती है। अपनी माँ के विषय में एक बेटे का इस प्रकार का सोचना मानवीय संबंधों की पहचान को खोना ही है। माँ गलती से बरामदे में बैठी रही और खर्राटे लेकर सो जाती है। जब चीफ माँ को देखता है तब वह माँ के देशीपन से आकर्षित हो जाता है। वह माँ से एक पंजाबी गीत गाने का अनुरोध करता है। साथ में माँ के हाथ से बनी एक फुलकारी की माँग भी करता है। माँ बेटे के तरक्की के लिए ये सब कुछ करने के लिए राज़ी हो जाती है।

कहानी की विडंबना यह है कि जिसे तरक्की की राह में बाधक समझ गयी थी वही माँ शामनाथ की तरक्की का माध्यम बन जाती है। हमारी भारतीय संस्कृति में ‘माँ’ एक संस्कार है, सभी मानवीय संबंधों के साथ हमारा यह संस्कार जुडा हुआ है। अपने इस महान एवं श्रेष्ठ संस्कार की महिमा को समझे बिना आधुनिक शिक्षित पीढ़ी विदेशी संस्कृति के पीछे भाग रही है, वहाँ रिश्तों के लिए कोई मूल्य नहीं है। इस प्रकार संपूर्ण कहानी में उपेक्षित भारतीय संस्कृति तथा उपनिवेशीकरण के चंगुल में फँसे मध्यवर्गीय संस्कृति के प्रदर्शन प्रियता और ह्रास होते हुए मानवीय मूल्यों को पेश करने का अदम्य कोशिश की है।

3.2.4 चीफ की दावत - नाट्यरूपान्तर 'दावत'

'चीफ की दावत' कहानी को साहनी जी ने 'दावत' नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। नाटक और कहानी की शुरुआत भिन्न रूप से हुई है। नाटक की शुरुआत दफ्तर से लौट रहे शामनाथ से होती है। अस्त व्यस्त पडे हुए कमरे को देखकर नौकर पर भडकता है। कहानी में माँ की याद सहसा आ जाती है पर नाटक में भीष्म जी ने कंबल की बात कर माँ की बात उठाती है। कहानी हमेशा किसी के द्वारा कही जाती है। नाटक में शामनाथ और उसकी पत्नी के एक दिन की कहानी दर्शकों तक पहूँचता है। कहानी से ज़्यादा नाटक को और तीव्र बनाने की भरपूर कोशिश हुई है।

नाटक में पात्र ज्यादा है। कहानी से भिन्न होकर नाटक में सेठी, सविता, सूरी जैसे कुछ अन्य पात्रों को भी जोड दिया है। ये पात्र घर में होनेवाली दावत की शो-ऑफ के लिए आवश्य है। उनके संवादों से मध्यवर्गीय लोगों की गिरी हुई मानसिकता एवं सामूहिक अधपतन का परिचय मिलता है। नाटक में सेठी का कथन है - "ओ कमीने! इन दो घूँट शराब औरों से ज्यादा पी लेते तो तेरी कौन-सी नानी मरी जा रही थी।"[1] नाटक की संवाद योजना एकदम बडिया है।

नाटक में रोचकता आने के लिए बहुत सारी बातों को जोड दिया गया है। मेहमान के इन्तज़ार में खडे सामनाथ और शोभा के बीच जो बातें होती है यह इसका उत्तम उदाहरण है-

"शोभा : बरामदे में खाने का प्रबंध करके हमने ठीक नहीं किया। इधर किचन बहुत नज़दीक पड़ता है। बर्तनों की खट-पट और सब्जियों-भाजियों की गन्ध। तुम्हारा बॉस अगर किचन की तरफ़ बढ़ गया तो क्या होगा?

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 26

शामनाथ : लो, लोगों के आने का वक्त हो गया। (अपनी घडी की ओर देखता है) सात बजा ही चाहते हैं। (पत्नी लपककर खिड़की में देखती है) क्यों, क्या कोई आया है? होगा यही कि बॉस ही सबसे पहले पहूँच जाएँगे और हमारे देसी भाई बाद में धीरे-धीरे टहलते हुए पहूँचेंगे। (खींझकर) मैंने इसलिए अपने लोगों को सात का वक्त दिया है और बॉस और उनकी पत्नी को साढ़े सात का ताकि उनके आने से पहले कुछ लोग तो मौजूद हों।

शोभा : ठीक किया है।

सामनाथ : मगर देख लेना वैसा ही होगा जैसा हमारे भाई लोग सदा करते हैं।"[1]

वाकई इस दृश्य में अभिनय की संभावना अत्यधिक है।

चीफ की दावत के कारण शामनाथ को अपनी माँ घर की फालतू सामान की तरह लगती है। वह कूड़े की तरह माँ को इधर से उधर छिपाता है-

"शामनाथ : मेरी बात ध्यान से सुनो माँ। जब मेहमान आएँगे तो हम उन्हें सीधा बैठक में ले जाएँगे। तब तुम बरामदे में कुर्सी पर बैठी रहना। पर जब खाना काने वे बरामदे की ओर आने लगे तो तुम उठकर अपनी कोठरी में चली जाना। बरमादे में हम उन्हें खाना खिलाएँगे।

माँ : अच्छा बेटा।

शामनाथ : पर वहाँ जाकर सो नहीं जाना। तुम्हारे खर्राटों की आवाज़ बाहर सड़क तक सुनाई देती है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 24

माँ : (तनिक चुप रहने के बाद) क्या करूँ बेटा, जब से नाक का आपरेशन हुआ है, मेरे लिए नाक में से साँस लेना मुश्किल हो गया है।

शामनाथ : ठीक है, ठीक है। ...सुनो माँ। तुम अपनी कोठरी में जाने के बजाए गुसलखने के रास्ते, पीछे से बैठक में चली जाना। हम लोग यहाँ खाना खाएँगे, तुम बैठक में बैठी रहना। जब मेहमान जाने लगेंगे तो तुम अपनी कोठरी में चले जाना।"[1]

माँ बेटे के इस व्यवहार को बुरा नहीं मानती। वह उस घर में अपने आपको छिपाती फिरती है।

शामनाथ के लिए चीफ को खुश रखना ज़रूरी है क्योंकि चीफ खुश होकर शामनाथ को बडी नौकरी दे सकता है। नाटक में शामनाथ और शोभा के बीच के संवाद इसका प्रमाण है-

"शामनाथ : बॉस की बीवी खुश होगी तो बॉस खुश होगा। सीधी-सी बात है। बातों-बातों में उसे मेरे बारे में भी बता देना कि उसका पिता बहुत बड़ा रईस था, तीन बँगले थे जिनमें अंग्रेज़ हाकिम रहा करते थे। शहर में आनेवाली सबसे पहली मोटर मेरे बाप ने ही खरीदी थी। ...ज़रूर कहना, मौक़ा देखकर ज़रूर कर देना। इन बातों का बड़ा असर होता है।

शोभा : तुम बडे चुस्त निकले।

शामनाथ : यह चुस्ती किस काम की अगर बॉस हमारे साथ उखड़ा-उखड़ा रहे। चुस्ती तो तब कहना जब एक दिन हमारे अपने घर के सामने अरदली खड़ा होगा।"[2]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 117
2. वही - पृ.सं. 20-21

नौकरी में तरक्की पाने के लिए योग्यता की जगह खुशामद ही बडी चीज़ है।

प्रतिष्ठा और पद के लिए आदमी किस तरह संबंधों को कभी झुठलाता है तो कभी बनाए रखने का प्रयास करता है इसका सटीक चित्रण 'दावत' नाटक में हुआ है। शामनाथ यह देखकर कि बॉस, माँ से मिलकर बहुत खुश हुआ है तो वह माँ के प्रति अपना रवैया भी बदल जाता है-

"शामनाथ : सुनाओ माँ, सुनाओ। (बॉस से) इन्हें सचमुच बहुत से गीत आते हैं। बहुत अच्छा गाती हैं। बचपन में हमने इनके मुँह से कितने ही गीत सुने हैं।

माँ : मैं कुछ नहीं जानती। मैं गाना कहाँ जानती हूँ। बेटा मैंने कब गाया है?

शामनाथ : साहिब कह रहे हैं तो तुम गाओगी नहीं, माँ? यह कैसे हो सकता है। उनका कहा मोड़ दोगी?

माँ : मैं न पढ़ी-लिखी, बेटा। मैं कुछ नहीं जानती।

शामनाथ : (ज़ोर से) माँ। सर का कहा तो नहीं मानेगी ना। कोई टप्पे सुना दो, तुम्हें पंजाबी टप्पे बहुत आते हैं।"[1]

माँ तो माँ ही है, वह बेटे की खुशी में अपनी खुशी देखती है। बेटा माँ के वर्तमान के बारे में कभी नहीं सोचता। लेकिन माँ सदैव बेटे के उज्ज्वल भविष्य की कामनाएँ करती है। शामनाथ द्वारा अपनी माँ को गले लगाकर यह कहना कि "अरे माँ। माँ। तुमने तो रंग ला दिया। तुम नहीं जानती माँ, साहिब। बॉस कितना खुश गया है।"[2] वास्तव में उसकी स्वार्थी वृत्ति को ही दर्शाता है। शामनाथ की इसी मनोवृत्ति देखकर माँ जो कहती है वह नाटक में महत्वपूर्ण है-

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 39-40
2. वही

"माँ : तू मुझे हरिद्‍वार भेज दो बेटा। मैंने तुमसे पहले भी कहा था। तुम अपने बाल-बच्चों के साथ सुख से रहो। मुझे हरिद्‍वार भेज दो।"[1]

फुलकारी की तैयारी में शामनाथ अपनी माँ को हरिद्वार नहीं जाने देता है। कहानी के समान नाटक का अंत भी हृदयस्पर्शी है। माँ बेटे के उज्ज्वल भविष्य के लिए फुलकारी बनाने का वादा करती है-

"माँ : क्या सच तेरी तरक्की होगी? तेरी तरक्की होगी तो मैं फुलकारी बना दूँगी, जैसे भी होगा बना दूँगी। क्या सचमुच साहिब ने कुछ कहा है। उनके मुँह में घी-शक्कर मैं ज़रूर फुलकारी बना दूँगी, बेटा, जैसे भी होगा बना दूँगी।"[2]

माँ को आँखों से सूझता नहीं, पर वह बेटे की तरक्की के लिए फुलकारी बनने को तैयार हो जाती है।

रंगमंच की दृष्टि से थोडा मुश्किल दृश्य भी इस नाटक में है। जैसे ऊपरवाले कमरे से बच्चों का झाँकना, उनके बातचीत आदि-

"लड़का (रमेश) : कितनी बडी मोटर है। इसे चलनेवाला बाएँ हाथ बैठता है।

लड़की : यह सडक पर मुड़ती कैसी होगी? यह तो इतनी लंबी है। वह देख, डैडी का बाँस। देखा?

रमेश : यह तो छोटा-सा हैं। मैंने तो सोचा था बड़ा लंबा होगा मूँछोंवाला।

लड़की : पागल। ऊपर से छोटा नज़र आ रहा है।

रमेश : नाटा और मोटा।"[3]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 43
2. वही - पृ.सं. 44
3. वही - पृ.सं. 27

ऊपर से देखकर बच्चों के बीच उत्पन्न मासूमियत भरी बातें वाकई नाटक में नाटकीयता भर देती है।

दादी और पोते-पोती के रिश्ते की गहराई दिखाकर माँ-बेटे के रिश्ते की खाई को भी आईने की तरह आफ करते हैं। जैसे-

"रमेश : पापा, हम तो दादी माँ से कहानी सुनेंगे। (रमेश दादी माँ के गले लिपट जाता है) सुनाओगी ना, दादी माँ?

शामनाथ : आज कोई कहानी-वहानी नहीं होगी। माँ ने तुम्हें बिगाड रखा है। माँ, तुमने इनके साथ लाड लड़वाती रहती हो तभी ये बिगड़ रहे हैं।

माँ : पहले तुम्हें बिगाड़ती रही हूँ ना, अब तेरे बच्चों को बिगाड़ रही हूँ। (बच्ची से) नहीं, निम्मो बेटा, आज हमारे घर मेहमान आएँगे ना, आज मैं भी जल्दी सो जाऊँगी, तुम भी जल्दी सो जाना।

बच्ची : हम तो जल्दी नहीं सोएँगे।

रमेश : और हम तुम्हें भी, जल्दी नहीं सोने देंगे।"[1]

मंच सज्जा का खूब प्रयोग नाटक में हुआ है। अस्त-व्यस्त पडे बैठक, सोफे पर कंबल, सिगरेट के टुकड़ों से अडी हुई तिपाई आदि चीफ की दावत के पहले के घर का दृश्य है। बाद में चीफ को स्वागत करने की तैयारी में डाइनिंग टेबल पर नया कपडा बिछाता है; दो बढ़िया गुलबन मेज़ पर रखती है जिनमें गुलदस्ते सजे हैं, बढिया कटलरी सेट निकालकर मेज़ पर चमचमाते छुरियाँ, काँटें आदि रखती है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 23

नाटक में दावत के समय प्रत्येक पात्र की वेशभूषा का चित्रण भी हुआ है। सजे हुए बाल और बढ़िया साडी पहनते हुए शोभा प्रवेश करती है। वह शीशे के सामने खड़े होकर चेहरा देखती है और बैग में से लिपिस्टिक निकालकर होठों पर हल्का सा फेरती है। शामनाथ नकटाई बाँधता हुआ दाखिल होता है, साथ में बढ़िया सूट, सँवारे हुए बाल और चमचमाते जूते। माँ सफेद सलवार कमीज़ पहनकर अपनी सिर को ज्यादा एहलियात से ढँक लेती है।

नाटक में ध्वनि संयोजन का प्रयोग भी हुआ है। खर्राटे भरने की आवाज़, घंटी बजने का स्वर, प्लेटों के खनकने की आवाज़, औरतों की टुनटुनाती हँसी, बतियाने की आवाज़ें, दरवाज़े पर ज़ोर से खट-खटाने का स्वर आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है।

नाटक की भाषा कहानी की तरह ही है। नाटक में माँ के लिए देहात की भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे माँ का कहना है "हाय मेरी जीभ जल जाए, बेटा, तुमसे जेवर लूँगी। मेरे मुँह से तो यों ही निकल गया।"[1] शामनाथ, शोभा, बॉस, बॉस की पत्नी जैसे पात्रों की भाषा में अंग्रेज़ीयत का बोलबाला है। जैसे-

"शोभा : आई थिंक शी शुड पुट ऑन गुड क्लॉथ्स। इन केस द बॉस सीस हर बाई चांस शी शुड भी प्रापरली ड्रस्ड।"[2]

"बॉस की पत्नी : हॉ, किट्टी पार्टी में सभी रम्मी खेलती हैं। मुझे फ्लाश ज्यादा पसंद है। उसमें एक्साइटमेंट ज़्यादा होती है।"[3]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 18
2. वही - पृ.सं. 17
3. वही - पृ.सं. 31

नाटक में एक पंजाबी गीत का प्रयोग भी हुआ है। जैसे-

"हरिया नी मात, हरियानी भैणा
हरिया ते भागी भरिया ए
जिस दिहाड़े नी मेरा हरिया जो जामिया
ओह दिहाड़ा भागी मारिया ए।"[1]

यह विवाह का गीत है, बेटे के विवाह के समय माँ गाती है।

3.2.5 झूमर

'झूमर' स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी हुई कहानी है। स्वाधीनता संग्राम में देश के लाखों लोगों ने सक्रिय भूमिका निभाते हुए अपने देश के लिए जीवन बलिदान किया। स्वतंत्रता के पश्चात देशभक्तों को सरकार की ओर से मुआवजा मिलनेवाला है यह खबर सुनकर कुछ लोग देशभक्त होते हुए भी कितने स्वार्थी बन जाते हैं इसका प्रभावशाली चित्रण 'झूमर' कहानी में हुई है। कहानी का नायक अर्जुनदास देश के लिए अपना सब कुछ न्योछावर करनेवाला है। भीष्म जी ने इस कहानी में स्वाधीनता संग्राम में हिस्सा लेनेवाले देशभक्तों के साथ-साथ एक ऐसा युवक का चित्रण भी किया है, जिसकी रुचि नाटक और रंगमंच में अत्यधिक थी।

अर्जुनदास की भी रुचि नाटकों के मंचन में थी। अपने देश के लिए उसने बहुत त्याग किया था। नाटकों के मंचन से ही उसने अब तक अपना जीवन व्यतीत किया है। जिस नाट्य समारोह में अर्जुनदास अतिथि के रूप में आया था, उस नाट्य समारोह को

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (दावत) - पृ.सं. 40

आरंभ होने में अभी कुछ समय बाकी था। अर्जुनदास नाटक देखने के लिए अपनी पत्नी कमला और कुछ पुराने रंगकर्मियों को भी साथ लेकर आया है। वहाँ बैठे-बैठे अर्जुनदास को अपनी पिछली जिन्दगी की याद आता है। यौवन के दिनों में परिवार को भूलकर वह स्वतंत्रता के आन्दोलन में जुड गया था। इसी कारण उसे दो साल जेल में रहना पडा। अर्जुनदास के घर के सभी लोग उसके स्वाधीनता संग्राम के लिए किए गए काम की हँसी उडाते थे। उस समय अर्जुनदास ये सब सुनकर हँस दिया करता था। क्योंकि उसे अपने इस की सार्थकता में गहरा विश्वास था। पर अब वर्षों बाद उसका विश्वास शिथिल पडने लगा। उसके अंदर एक प्रकार की अपराध की भावना बढने लगी थी। उसे कई बार यही लगता कि उसने अपना सारा जीवन खुद के लिए बिताया है। तभी रंगमंच की ओर से घंटी की आवाज़ सुनाई थी।

नाटक मंडली का कार्यक्रम आरंभ हुआ था। एक युवक मंडली का नेतृत्व कर रहा है। देश की विकट स्थिति लोगों की आँखों के सामने रखने लगा है। वह युवक झोली पसारे दर्शकों की ओर बढने लगा। तब एक स्त्री कमला, जो अर्जुनदास की पत्नी है और उसके संघर्षमय जीवन के सहयोगी भी, अपनी संपत्ति का एकमात्र साधन सोने का झूमर उतारकर युवक की झोली में समर्पित कर देती है। कमला के पास वही एकमात्र झूमर का जोड़ा था, जो उसने अपने लिए बेटी के शादी के समय बनवाया था। झूमर देने के बाद कमला अपनी आँखें पोछकर सिर पर का अपना पल्लू ठीक कर रही थी। युवकों की सेवानिवृत्ति और कर्तव्यनिष्ठा के प्रति कमला बहुत प्रभावित हुई थी। अर्थात् हर युग में, हर पीढ़ी में ऐसे लोग भी होते हैं जो आदर्शों की रक्षा करने के लिए अपने जीवन को समर्पित करते रहते हैं।

3.2.6 झूमर - नाट्यरूपान्तर

'झूमर' कहानी और नाटक के कथ्य पक्ष एक होने पर भी दोनों की शुरुआत अलग-अलग ढंग से हुई हैं। कहानी की शुरुआत मुख्य अतिथि के रूप में आये अर्जुनदास के सोच से होती है तो नाटक की शुरुआत एक युवक के नाटक प्रस्तुत करने के भाग-दौड से होती है। नाटक में कहानी के कुछ अंशों को छोड दिया गया है। कहानी में रेलयात्रा, अर्जुनदास का जेल जाना आदि का ज़िक्र हुई है लेकिन नाटक में मंचीय सीमा को ध्यान में रखकर छोड दिया गया है। ऐसा होने पर भी कहानी के मकसद को नाटक में सुरक्षित रखने का प्रयास भीष्म जी की ओर हुआ है।

'झूमर' नाटक में साहनी जी ने स्वोक्ति की शैली को अपनायी है। सभी स्वोक्ति अर्जुनदास की है। इन स्वोक्तियों में नाटक से जुडी कई बातें सामने आती हैं। नाटक में समय की सीमा है पर कहानी में नहीं। इसलिए अर्जुनदास की स्वोक्तियाँ ज्यादा सजीव बन पड़ी है।

अभिनय कला को लेकर अर्जुनदास की सोच नाटक में विचारणीय है-

"अर्जुनदास : अभिनय-कला कहाँ से कहाँ पहूँच चुकी है, परन्तु हमारा रंगमंच अभी भी पुराने ढर्रे पर चल रहा है। धूल-भरा मैदान, फटी-पुरानी दरियाँ, फटे-पुराने पर्दे, सामने का पर्दे ऐसा है जो स्टेज को पूरी तरह ढक ही नहीं पाता। ....ऐसे ही रंगमंच पर मैंने अपनी जिन्दगी बिता दी है। ....यहाँ भी यही होगा अगर संवाद अच्छे हुए तो नाटक चल निकलेगा, या फिर गीतों के बल पर। वे असरदार हुए तो नाटक जम जाएगा, वरना नहीं। हम लोग केवल भावना के बल पर नाटक का अभिप्राय दर्शकों के दिल में उतारना

चाहते हो, अब यह नहीं चलेगा। लोग नफासत माँगते हैं। साज-सज्जा माँगते हैं। मनोरंजन माँगते हैं।"[1]

साहित्य और समाज के अंतसंबंध को दिखाने में यह संवाद महत्वपूर्ण है। फिल्म और नाटक के भेद को भी नाटक में साफ तरीके से व्यक्त किया है - "फिल्म में सिर्फ एक बार खर्च होता है, फिर तो कमाई है। पर नाटक में हर बार खर्च और उसके अनुकूल कमाई नहीं। ....मुश्किल से चन्दा करके तो नाटक खेल पाते हैं, और नाटक के बाद लोगों के सामने झोली फैला देते हैं तब भी कुछ आमदनी हो जाती है।"[2] कला एवं साहित्य के प्रति होनेवाले उपेक्षा मनोभाव को ही नाटक व्यक्त करते हैं।

अर्जुनदास आदर्शवाद पर अटूट विश्वास रखनेवाला था। नाटक को वह अपना जीवन मार्ग समझा था। लेकिन धीरे-धीरे उसे एहसास हुआ कि आदर्शवाद झूठा है, उससे उसे जिन्दगी में कुछ नहीं मिला। जैसे नाटक में उसका कहना है-

"अर्जुनदास (स्वतः) : यह नाटक-वाटक को भूल जाओ, इसमें न पैसा है, न ख्याति है, न कोई भविष्य है। हाँ, कला है, समाज-सेवा है, जन-जीवन से जुडना है, उनकी आशाओं-आकांक्षाओं को व्यक्त करना है, उनके सपनों को वाणी देना है। लोगों को देश की धड़कन महसूस करना है, पर इसमें तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा, केवल तुम्हें इस बात का आश्वासन कि तुमने एक सार्थक काम किया है, लोगों को सचेत किया है, ...जिन आदर्शों का दामन पकड़कर मैं दसियों साल पहले इस रास्ते पर आया था, वे अपनी सार्थकता खो चुके हैं?"[3]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झूमर) - पृ.सं. 176
2. वही - पृ.सं. 174
3. वही - पृ.सं. 185

एक कलाकार के आत्मसंघर्ष को ही अर्जुनदास के कथनों में देख सकता है।

'झूमर' नाटक में फ्लैश बैक शैली का खूब इस्तेमाल हुआ है। अर्जुनदास का यौवन, वैवाहिक जीवन सबका पता फ्लैशबैक के रूप में प्रस्तुत है।

नाटक में अर्जुनदास की पत्नी कमला एक सशक्त नारी पात्र के रूप में सामने आती है। अर्जुनदास की जिन्दगी का एक-एक पडाव कमला के शब्दों से व्यक्त होता है। जैसे : अर्जुनदास के नौकरी करने के बारे में कमला कहती है "तुम्हें घर-परिवार की चिन्ता होती तो तुम नौकरी करते। तुम तो आदर्शवाद के घोड़े पर सवार तीसमार खाँ बने घूम रहे थे! ज़मीन पर तुम्हारे पाँव ही नहीं टिकते थे। ...ले - देकर किताबों की दूकान खोल ली। यह काम नाटक खेलने के आड़े नहीं आता था। पर, दुकान खोल लेना एक बात है, उसे चलाना दूसरी बात। इनके नाटक के साथी मुफ़त में पुस्तकें उठाकर ले जाते। वही पर नगाडों की बैठक जमने लगी, वहीं पर रिहर्सलें होने लगीं। सभी इनके पॉकेट से चाय पीते और गप्पे हाँकते। रंगकर्मियों का ताँता लगा रहा। इससे छुटकारा तब हुआ जब मैं स्वयं दुकान पर बैठने लगी। मेरे लिए दुकान पर बैठने का मतलब था कि घर पर भी पिसती और दुकान पर भी।"[1] अर्जुनदास की देशभक्ति की आलोचना भी कमला करती है।

'झूमर' नाटक के अंदर जिस नाटक खेलने की तैयारी हो रहा है उसमें देशप्रेम का असीम वर्णन देखने को मिलता है। नाटक में अभिनेताओं द्वारा भारत माँ को लेकर शपथ लेता है - "माँ, हम शपथ लेते हैं कि तन-मन से तेरी सेवा करेंगे, हमारी देशसेवा से तेरा माथा ऊँचा होगा। अपने खून-पसीने से देशवासियों के लिए उज्ज्वल भविष्य का निर्माण

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झूमर) - पृ.सं. 183

करेंगे। अपने पूर्वजों को, महान मनीषियों और नेताओं का नाम रोशन करेंगे।..."[1] नाटक का यह दृश्य प्रत्येक भारतवासियों को अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करनेवाला है।

नाटक में आवाज़ योजना खूब प्रयोग हुआ है। घंटी की आवाज़, बिजली की कड़क, रंगमंच की ओर से माइक्रोफोन टेस्ट करने की आवाज़ आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है। नाटक के मंचीय उपकरणों में भारत की महान विभूतियों के चित्र भगवान कृष्ण, भगवान राम, महर्षि व्यास, गौतम बुद्ध, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति; भारतमाता के सपूत कवि कबीर, नानक, तुलसीदास, सूरदास, सम्राट अकबर; आधुनिक युग की विभूतियाँ स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, बंकिम बाबू, स्वामी दयानन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा राममोहन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लोकमान्य तिलक और सबसे ऊपर महात्मा गाँधी का चित्र, साथ में जवाहरलाल नेहरु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, भगत सिंह, मौलाना आज़ाद, वल्लत्तोल, सुब्रह्मण्य भारती जैसे देश के प्रकाश स्रोतों का चित्र भी महत्वपूर्ण है।

कहानी से भिन्न होकर नाटक में संगीत का प्रयोग किया गया है-

"सुनो हिन्द के रहनेवालो
सुनो, सुनो!
ये किन बच्चे की चीखे हैं
किस दुखिया माँ की आहें हैं
किस बेवा दुल्हन की खामोश निगाहे हैं।
हम हिन्दू हैं, हम मुस्लिम हैं
हम सब सब दुखियारे
सब एक ही विपदा के मारे।"[2]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (झूमर) - पृ.सं. 187
2. वही - पृ.सं. 188

देशप्रेम से ओतप्रोत इस नाटक को सुचारु ढंग से प्रस्तुत करने में इन गीतों का प्रयोग सफल निकली है।

भीष्म जी ने कहानी में प्रयुक्त भाषा को ही नाटक में उठाया है। नाटक में अंग्रेज़ी के कुछ टेक्निकल शब्दों का इस्तेमाल हुआ है जैसे : Soliloquy continues hereafter, pause, the song is over, Long pause आदि।

3.2.7 खून का रिश्ता

'खून का रिश्ता' कहानी में अर्थ के पीछे पडकर लोग मानवीय संबंधों को किस प्रकार भूल रहे हैं इस यथार्थ को वाणी देती है। वर्तमान के अर्थ केन्द्रित मध्यवर्गीय समाज में खून के रिश्तों की कोई एहमियत नहीं रही है। इस कडवी सच्चाई को 'खून का रिश्ता' कहानी अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है। कहानी का नायक है चाचा मंगलसेन, जो गरीब है। मंगलसेन को अपनी हैसियत पर बडा नाज था क्योंकि किसी ज़माने में वह फौज में रह चुका था। इसलिए अब भी वह सिर पर खाकी पगडी पहनता है। क्योंकि उसे लगता है कि खाकी रंग सरकारी रंग है। मंगलसेन अपने चचेरे भाई के घर एक आश्रित के रूप में रहता है। वहाँ तो सभी उसका मज़ाक उठाते हैं क्योंकि मंगलसेन गरीब है। यहाँ तक कि घर के नौकर भी उसका मज़ाक उठाते हैं। किराया न वसूलने के कारण बाबू जी मंगलसेन को थप्पड़ मारने की बात करते हैं। अपने ऊपर होनेवाले सारे अपमान के घूट पीने के लिए वह मजबूर है।

मंगलसेन आज बहुत खुश है। क्योंकि आज उसके भतीजे वीरजी का सगाई होनेवाली है। वीरजी के मन में चाचा के प्रति स्नेह था। मंगलसेन तैयार होकर सगाई में

बाबूजी के साथ चला जाता है। सगाई की रस्म पूरी करने के बाद समधी अंदर से एक थाली ले आए जिस पर लाल रंग का रुमाल ढका था। बाबूजी ने रुमाल उठाया तो नीचे चाँदी के थाल में चाँदी की तीन कटोरियाँ और तीन छोटे-छोटे चाँदी के चम्मच भी। थाली मंगलसेन अपने कंधों पे उठा लेता है और बाबूजी के पीछे-पीछे चलता हुआ घर आ जाता है। परिवार के सभी सदस्य थाली में रखी चीजों को देख रहे थे। तीन कटोरियाँ और दो चम्मच देखकर शक होता है क्योंकि यह हिसाब ठीक नहीं है। बाबूजी को पता था कि तीन चम्मच थे। वह मंगलसेन से पूछता है। बाबूजी मंगलसेन को चोर समझकर उस पर गरज पडता है। एक चोर की तरह मंगलसेन की तलाशी की जाती है। मंगलसेन ने अपने ऊपर चोरी के इल्जाम को लगते देख तो खडे-खडे गिर पडा। उसी वक्त वीरजी का साली दरवाजे पर आकर वीरजी की बहन मनोरमा के हाथ में चौदी का चम्मच देता हुआ कहता है कि चम्मच गलती से हमारे यहाँ रह गया था।

मंगलसेन के जीवन की विडंबना तो यह है कि खून का रिश्ता होने के कारण जिस परिवार को वह अपना मानता है, वही उसे सबके सामने असमानित और प्रताडित करता है। गरीब मंगलसेन को सारी निष्ठा के बावजूद भी चोर समझा जाता है। यह बात पाठक को झकझोर देता है। समाज में व्यक्ति की हैसियत उसके ज्ञान, अनुभव या योग्यता पर निर्भर न होकर उसकी आर्थिक स्थिति पर निर्भर होती है इस सच्चाई को 'खून का रिश्ता' कहानी सिद्ध करती है।

3.2.8 खून का रिश्ता - नाट्यरूपान्तर

'खून का रिश्ता' कहानी और नाटक दोनों ज्यों की त्यों है। कुछ दृश्य ऐसे होते हैं जो लिखने से ज्यादा दिखाने में असरदार होते हैं यह तथ्य 'खून का रिश्ता' नाटक के

संदर्भ में सच है। कहानी से ज्यादा नाटक प्रभावशाली दिखाई पडता है। उदाहरण के लिए नाटक में हम देख सकता है कि चाचा को बाबूजी से डाँट मिलती है। तब घर की माहौल ही कुछ और हो जाता है-

“बाबूजी : (चाचा से) आज रामदास के पास गए थे? किराया दिया उसने या नहीं?

चाचा : (लापरवाही से) बाबूजी, वह अफ़ीमचीं कभी घर पर मिलता है, कभी नहीं। आज घर पर था ही नहीं।

बाबूजी : एक थप्पड़ मैं तेरे मुँह पर लगाऊँगा, तुमने क्या मुझे बच्चा समझ रखा है?

(Silence Pause)

छह महीने का किराया उस पर चढ़ गया है, तू करता क्या रहता है?

(Silence Pause)

माँ : और पराठा डालूँ, मंगलसेन जी?

चाचा : (उखड़ी हुई आवाज़ में) नहीं भौजाई जी, बस जी।”[1]

पराठा को चाचाजी हाथ से ढकता है। यह क्रिया उसके मन की व्यथा को सूचित करता है।

मंगलसेन के पास न धन-दौलत है और न घर बार। घर के सभी लोग उक पर उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते हैं। चाचा, वीरजी के सगाई डलवाने के लिए जाना चाहती है लेकिन बाबूजी उसे रोक लेता है। यह दृश्य बहुत ही दर्दनाक है-

“चाचा : मैंने खा लिया। ....तो चार बजे चलेंगे ना, सगाई डलवाने।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (खून का रिश्ता) - पृ.सं. 269

बाबूजी : तू जा, अपना काम देख, ज़रूरत हुई तो तुम्हें बुला लेंगे।

माँ : (धीमी आवाज़ में) देखो जी, नौकरों के सामने मंगलसेन की इज्ज़त-आबरू का कुछ तो ख्याल रखा करो। आखिर तो खून का रिश्ता है। कुछ तो मुँह-मुलाहिज़ा रखना चाहिए। दिन भर आपका काम करता है। इस तरह बेसाबरूई किसी को नहीं करनी चाहिए।"[1]

माँ का यह कथन परिवार में मंगलसेन की स्थिति क्या है, इसे स्पष्ट कर देती है।

सगाई डलवाने के लिए चाचा और बाबूजी लडकी के घर जाते हैं। वहाँ का हर एक संवाद नाटकीयता से युक्त है। जैसे लड़की के बारे में चाचा का पूछताछ करना-

"समधी : और दूध लाऊँ चाचा जी? थोडा-सा और।

चाचा : हाँ, आधा गिलास और ले आओ। .... लडकी कुछ पढ़ी-लिखी भी है या नहीं? हमारा बेटा तो एम.ए. पास है।

समधी : जी, आपकी दया से लड़की ने इसी साल बी.ए. पास किया है।

चाचा : घर का काम-धन्धा बी कुछ जानती है या सारा वक्त किताबें ही पढ़ती रहती हैं?

समधी : जी, थोडा-बहुत जानती है।

चाचा : थोड़ा बहुत क्यों?

समधी : आपके घर आएगी तो और भी ज़्यादा जान लेगी।"[2]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (खून का रिश्ता) - पृ.सं. 270
2. वही - पृ.सं. 274

साहनी जी कहानी के कुछ अंशों को यूँ ही छोडना नहीं चाहते थे इसलिए नाटक में उसने नैरेटर का इस्तेमाल किये हैं। चम्मच खो जाने पर वीरजी की जो प्रतिक्रिया है उसे नाटक में नैरेटर यों व्यक्त करता है-

"नैरेटर : चम्मच खो जाने पर वीरजी को बेहद गुस्सा आ गया। प्रभा ने चम्मच भेजा और वह उन तक पहूँचा ही नहीं। प्रभा के प्रेम की पहली निशानी ही खो गई। वीर जी भी सहसा आवेश में आ गए। आव देख न ताव, मंगलसेन को दोनों कंधों से पकड़कर झिझोंड़ दिया।"[1]

कहानी के विवरणात्मक अंश को नैरेटर द्वारा नाटक में दो-तीन वाक्यों में समेट लिया है।

मंगलसेन को चोर समझकर उसकी तालाशी करने के संदर्भ को नाटक में बहुत नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया है-

"बाबूजी : (गिरजकर) जेब तो देखो, इसकी? मनोरमा, देखों इसकी जेब।

मनोरमा : इस जेब में तो नहीं है, पिताजी।

बाबूजी : यह तुम्हारे हाथ में क्या है?

मनोरमा : यही निकला है जेब में से - बीड़ियों की गड्डी, माचिस, छोटा सा पेंसिल का टुकड़ा, मैला-सा रूमाल।

बाबूजी : दूसरा जेब भी देख।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (खून का रिश्ता) - पृ.सं. 278

मनोहम : (After a slight pause) कुछ खनका है। इसी जेब में है, चोर पकड़ा गया! आपने सुना, वीर जी?.... हाय नहीं, यह तो टूटा हुआ चाकू है जो चाबियों के गुच्छे से लगकर खनका था।

माँ : छोड़ दे मनोरमा, जाने दे। सबका धर्म अपने-अपने साथ है। (मंगलसेन से) आपसेचम्मच अच्छा नहीं है, मंगलसेन जी, लेकिन यह सगाई की चीज़ थी।

बाबूजी : (गरजकर) दोनों कान खुलकर सुन ले, मंगलसेन, मैं तेरे से पचास रुपए चम्मच के ले लूँगा, इसमें कोई लिहाज़ नहीं करूँगा।"[1]

वर्तमान जीवन का सत्य यह है कि यदि आपके पास पैसा नहीं है तो आप के साथ वही व्यवहार किया जायेगा जैसे नौकरों के साथ होता है। चाचा मगलसेन के साथ ऐसा ही हुआ है।

नाटक में वीरजी को एक आदर्शवादी युवक के रूप में प्रस्तुत किया है। वीरजी के मन में चाचा के प्रति आदर का भाव था। मंगलसेन के साथ सबका मज़ाक करना उसे अच्छा नहीं लगता। वीरजी अपनी शादी तय करने के लिए मंगलसेन को भेजना चाहते हैं, लेकिन माँ घर के अन्य सदस्यों के साथ भी उसका विरोध करती है। वीरजी इस पर माँ से जो कहता है वह वास्तव में उच्च विचार है। वीरजी का कहना है "माँ जी, अभी तो आप कह रही थीं खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचा जी गरीब हैं इसीलिए?"[2] साहनी जी शादी के फिज़ूल खर्च पर वीर के ज़रिए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। नाटक में वीर अपने घरवालों से कहता है "बाबूजी, आप अजीब बातें करते हैं। क्या आप खुद नहीं

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (खून का रिश्ता) - पृ.सं. 279
2. वही - पृ.सं. 271

कहते कि ब्याह-शादियों पर पैसे बर्बाद नहीं करना चाहिए। अब अपने बेटे की सगाई का वक्त आया तो सब सिद्धान्त ताक पर रख दिए। .....बस, आप अकेले जाइए और सवा रुपया लेकर सगाई डलवा लाइए।"[1] वीरजी का यह कथन लोगों को सोचने के लिए मज़बूर करते हैं।

कहानी से भिन्न नाटक में दो तीन पात्रों की अधिकता है, जो लड़की के समधी के रूप में प्रस्तुत है। वे हमेशा चाचा को देखकर दबी आवाज़ में यही कहता है कि "लड़के के चाचा हैं, दूर के। घर में टिके हुए हैं। लाला जी ने आसारा दे रखा है....।" सब कहीं मंगलसेन उपेक्षित है।

नाटक में मंच को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया है एक में बाबूजी का घर है और दूसरा सगाईवाले का घर। सगाईवाले घर की चहल-पहल को दर्शाने के लिए बीच में संगीत की हल्की-हल्की धुने सुनाई पड़ती है। नाटक में कहानी की भाषा का प्रयोग ही हुआ है। नाटक में बीच-बीच में प्रत्येक वातावरण व संदर्भ को मूर्त करने के लिए 'Slight pause', 'Short pause', 'Steps are coming nearer', 'Foot steps moving away' जैसे टेक्निकल शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। नाटक में शब्द योजना का प्रयोग भी हुआ है। सीढ़ियों पर चढ़ने की आवाज, हँसने की आवाज़, थाली परोसने की आवाज़, दूर से बड़बड़ाने की आवाज़, ढोलक बजने की आवाज आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है।

3.2.9 कंठहार

'कंठहार' भीष्म साहनी जी की मनोवैज्ञानिक कहानी है। कहानी के केन्द्र में एक मध्यवर्गीय परिवार है जिसमें एक ऐसी माँ प्रस्तुत है जो एक ओर बेटी सुषमा की बीमारी

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (खून का रिश्ता) - पृ.सं. 266

से विचलित है दूसरी ओर वह अपनी बेटी को बोझ भी समझती है। सुषमा, मालती की विकलांग बच्ची है, जिसकी देखभाल करनेवाली अधेड़ उम्र की एक माई है। मालती अपनी बेटी को देवी अभिशाप मानती है। लेकिन यदि बचपन में उसकी नियमानुसार मालिश की जा रही होती तो, ठीक तरह से देखभाल करते तो उसकी रीढ़ की हड्डी टेढ़ी नहीं हुई होती।

मालती को बेटी से अधिक अपनी चिन्ता है। इस परेशानी को मन से निकालने के लिए वह अपना ध्यान किसी और चीज़ में लगाने की कोशिश करती है। वह सजती-सँवरती है और लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अच्छी-अच्छी साडियाँ पहनती है। वह बडे-बडे जेवराह भी पहनती है ताकि सभी उसकी साडी, जेवर के बारे में पूछें, न कि उसकी कमियों को कुरेंदें। घर में मेहमानों के आने पर रमेश और मालती अपनी विकलांग बच्ची को कहीं छिपाना चाहते हैं। वह सुषमा को कमरे में बन्द करने के बारे में सोचता है। माँ-बाप के पास अपनी बच्ची के लिए थोड़ा सा समय बिताना भी मुश्किल कार्य है। वे दोनों सुषमा की इलाज करने के लिए उसे किसी न किसी प्रकार ठीक करने के वास्ते कई डाक्टरों से मिलवाते हैं। अंत में सुषमा की देखभाल के लिए वे उसे नेर्सिंग-होम भिजवाती है। मालती माँ होकर भी माँ की भूमिका में नहीं है। उसके लिए परिवार नहीं, सामाजिक स्टाटस ही प्रमुख है। वह स्वतंत्र भारत का वह विशिष्ट वर्ग है जो मानवीय गुणों से वंछित एवं धन के पीछे भागनेवाले है। 'कंठहार' नाटक के ज़रिए इस सच्चाई को और अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास भीष्म जी की ओर से हुई है।

3.2.10 कंठहार - नाट्यरूपान्तर

'कंठहार' कहानी को जब नाटक के ढाँचे में रखा तो उसमें भीष्म जी ने आवश्यकतानुसार बदलाव लाया है। कहीं पर कुछ दृश्य जोड दिया तो कहीं कुछ दृश्यों को

हटा भी दिये हैं। नाटक की शुरुआत मालती के परिचय से होता है। जैसे "बडे आईने के सामने खडी मालती, जड़ाऊ हीरो का हार गले में पहने, अपने को निहार रही है। हार पहनने पर उसका रूप निखर आया है। उसका सौन्दर्य और सज-धज चकाचौध करनेवाले हैं।"[1] मालती अपनी प्रशंसा के प्रति सचेत है और उसमें गौरव भी महसूस करती है। उसकी प्रतिक्रिया विनम्रता की ओर न होकर आत्माभिमान की ओर अधिक है। नाटक में हर पात्र का प्रवेश बहुत ही सहज ढंग से किया है। उदाहरण के रूप में, सुषमा चिल्लाकर दूध के प्याले को फेंकती है और उन टुकड़ों को बटोरती हुई माई का परिचय लेखक कराते हैं।

'कंठहार' कहानी में रेलवे स्टेशन पर बच्चों के आने का दृश्य नहीं है पर नाटक में ऐसा एक दृश्य है जिसमें माँ-बाप को अपनी बेटी की बीमारी का पहला लक्षण दिखाता है-

"मालती : सुषमा ऐसे क्यों चल रही है? इसे कहीं चोट लगी है, क्या?

शोभा : नहीं माँ, कुछ दिन से दीदी की तबीयत ठीक नहीं, कहती है, पाँव उठाती है तो आसानी से उठता नहीं।

रमेश : स्कूल में डॉक्टर को दिखाया था?

शोभा : हाँ पापा, डॉक्टर ने आपके नाम चिट्ठी दी है।

दूर से सुषमा चली आ रही है, नाजुक-सी सुन्दरा, 14-15 साल की युवती, बडी हँस-मुख है। नज़दीक करती है तो गिर पडती है, रमेश लपककर उसे सँभाल लेता है। ....माँ-बाप से बडे प्यार से मिलती है।"[2]

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (कंठहार) - पृ.सं. 347
2. वही - पृ.सं. 354

अरुण और शोभा दौडकर माँ-बाप को लिपटना, सुषमा का धीरे-धीरे चलकर आना यह दृश्य वाकई नाटक को पूर्णता और स्पष्टता देता है।

सुषमा का अच्छा दिन, फिर उसका अस्पताल में भर्ती होना, माँ-बाप का परेशान होना ये सभी दृश्य नाटक को सजीव बनाता है। सुषमा की अच्छे दिन का चित्रण नाटक में यों चित्रित है। बेटी की बीमारी की वजह से उससे नफ़रत करनेवाली एक माँ का चरित्र इस रचना की विशिष्टता है। घर में मेहमानों के आने पर मालती अपनी विकलांग बच्ची को कही छिपाना चाहती है। अंत में उसे कमरे में बन्द करने के बारे में सोचती है-

"मालती : क्यों? बन्द क्यों नहीं कर सकते?

रमेश : सभी मेहमान उसके बारे में पूछेंगे, उससे मिलना चाहेंगे।

मालती : मेहमानों से मैं कह दूँगी कि वह सो रही है, कि डॉक्टर ने हिदायत दी है कि सात बजे तक उसे सुल दिया करें। उसके लिए भी तो यही बेहतर है।

रमेश : अभी सात भी नहीं बजे हैं और वह बिफरने लगी है, मेहमानों के रहने चीखने-चिल्लाने लगेगी तो क्या होगा?

मालती : मैं कह दूँगी नई दवाई का असर है। (उसके अंदर बेचैनी उठती है, सहसा उत्तेजित, उद्विग्न हो उठती है) मुझे कभी चैन से बैठने भी दोगे या नहीं? जब भी घर में मेहमान आते हैं, बावैला मच जाता है।"[1]

मालती अपनी बेटी की बीमारी को अपने लिए बहुत बडा बोझ मानती है। उसे अपनी बेटी से ज्यादा पार्टी प्रमुख है। बच्ची की तबीयत खराब होने पर रमेश मालती से

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (कंठहार) - पृ.सं. 350

घर पर रुकने के लिए कहता है। लेकिन मालती पार्टी पर जाना चाहती है। इस संदर्भ को नाटक में भीष्म जी ने बडी तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया है-

"रमेश : तुम रुक जाओ, मालती। मैं पार्टी पर अकेला चला जाता हूँ। बच्चे भी नहीं जाएँ।

मालती : और कुछ देर देख लेते हैं। अगर इसकी तबीयत सँभल गई तो मैं भी चलूँगी।

रमेश : हाँ, मगर हमारे चले जाने के बाद इसकी तबीयत बिगड़ गई, तो?

मालती : इसे भी इस वक्त ही बीमार पड़ना था।...."[1]

सुषमा को अस्पताल में भर्ती करने पर डाक्टर जो कहता है वह मालती के चरित्र को पूर्ण रूप से उद्घाटित करता है। क्योंकि डाक्टर ने माँ-बाप से कहा कि बच्ची का अच्छी ध्यान रखना ज़रूरी है। डॉक्टर का कहना है "आपने ध्यान नहीं दिया, बच्ची की पीठ टेढ़ी हो रही है। मैंने ताकीद भी थी कि इसकी पीठ पर पेटियाँ बँधी रहे, इसे सीधा लिटाया जाए, वकायदा मालिश की जाए, आपको एक Trained Nurse रखनी चाहिए थी। बच्ची की स्थिति अच्छी नहीं है। इसे हम बिल्कुल तदुरुस्त कर सकें इसकी मुझे कम उम्मीद नज़र आती है। हाँ अपना काम करने लायक हो जाए, किसी को मोहताज न रहें, यह भी बहुत है (मालती की ओर देखकर) लेकिन आपके सहयोग के बिना कुछ भी संभव नहीं होगा।"[2] माँ-बाप के लिए सुषमा एक अमानवीय वस्तु के समान है।

मालती के मन में सुषमा के प्रति नफरत तो है लेकिन दूसरी ओर एक माँ के नाते अपनी बेटी के प्रति विचलित भी है। जैसे-

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (कंठहार) - पृ.सं. 360
2. वही - पृ.सं. 363

"मालती : बेचारी, वर्षों से खाट के साथ जुडी है। ये दिन उसके हँसने-खेलने के थे। हमें चाहिए, हाथों से खूब दान करवा दें, इसी अस्पताल को कुछ रकम दे दो। किसी गरीब लडके का वज़ीफा बाँध दो। मैं तो कहूँगी, किसी अस्पताल में इसके नाम पर कमरा बनवा दो, कम से कम इसके पीछे इसका नाम तो बना रहेगा।"[1]

यह कहते हुए मालती का गला रूँध जाता है। आँखें छलछला जाती है। एक माँ की ममता, प्यार, करुणा को ही उसकी शब्दों में देख सकती है।

सुषमा के चरित्र नाटक को पूर्णता प्रदान करती है। सुषमा अपनी परिवार से बहुत प्यार करती है। अपनी माँ को जान से ज्यादा प्यार करती है। नाटक का अंतिम दृश्य इसका बयान करता है। सुषमा के कमरे को माई साफ करती है। तब मालती का ध्यान पलंग के नीचे पडी तरह-तरह चीज़ों पर पडती है - "छोटे-छोटे मणके, माँ के बालों की लट, पाँच-सात तस्वीरें, दो तीन पत्र। एक चित्र में नन्हीं सुषमा माँ की गोढ़ में बैठी है। नीचे सुषमा टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा है 'मैं और मेरी मम्मी। दूसरे चित्र में रमेश ने नन्हीं सुषमा को कन्धों पर उठा रखा है और मालती पास में खड़ी है। दो चित्र केवल मालती के जिनमें सुषमा रंग भरती रही है गालों पर सुर्खी, होठों पर लाली, आँखों में काली लकीर। नीचे लिखा है 'मेरी प्यारी मम्मी'। 'मेरी सबसे सुन्दर मम्मी।' टेढे-मेढे अक्षरों में सुषमा ने मालती को पत्र लिखा है - 'मेरी प्यारी मम्मी, मैं तुम्हारे साथ कभी नहीं बोलूँगी। मैं सारा दिन तुम्हारे कदमों की आवाज़ सुनती रही पर तुम एक बार भी मेरे पास नहीं आई। तुम क्यों नहीं आई?"[2] एक बच्चे की मासूमियत को ही सुषमा के शब्दों में पाई जाती है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (कंठहार) - पृ.सं. 374
2. वही - पृ.सं. 383

फ्लैशबैक की शैली नाटक में और अधिक नाटकीयता भरती है। मालती के पुराने दिनों की याद, सुषमा के अच्छे दिन सबका चित्रण फ्लैशबैक के ज़रिए हुई है। नाटक में मेज़, कुर्सी, आड़ के लिए कुछ कार्डबार्ड आदि उपकरणों का प्रयोग हुआ है। कहानी की भाषा नाटक में भी प्रस्तुत है। ध्वनि संयोजन का प्रयोग नाटक की एक ओर खूबी है। ग्लास टूटने का स्वर, मालती के सैंडल पटपटाने का स्वर, हँसी की आवाज़, बच्चों के गाने का स्वर, चीजें फैंकने का स्वर आदि नाटक को और अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

3.2.11 निमित्त

'निमित्त' कहानी में भीष्म जी ने देश-विभाजन की व्यथा का जिक्र किया गया है। विभाजन के समय हिन्दू और मुसलमानों की जो मानसिकता थी उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास साहनी जी ने किया है। देश विभाजन की व्यथा को भीष्मजी ने स्वयं भोगा है। इसलिए वह पूछती है कि "धर्म तो मनुष्य को बेहतर इनसान बनने, उनके मानवीय गुणों का विकास करने, उसे सभ्य और संस्कृत बनाने की प्रेरणा देता है, दृष्टि की विशालता देता है, इन्सानों को जोड़ने की, उसे दूसरों के खून का प्यासा बनाने की प्रेरणा कहाँ देता है?"[1] 'निमित्त' कहानी के लिए उसका शीर्षक उचित है क्योंकि कहानी के प्रमुख पात्र एक बुज़ुर्ग है जो हमेशा निमित्त पर विश्वास रखनेवाले थे। भीष्मजी उस बुज़ुर्ग को माध्यम बनाकर देश-विभाजन से जुड़े हुए विषय में व्यंग्य का पुट भर देता है।

देश-विभाजन के समय वह बुज़ुर्ग व्यक्ति राजगढ़ के एक फैक्टरी में मैनेजर थे। दंगा-फसाद को लेकर वह केवल यही कहता है सब भाग्य का खेल है। उनके अनुसार

---

1. भीष्म साहनी - आज के अतीत - पृ.सं. 292

जिसके भाग्य में लिखा था कि फसादों से बचकर निकलना है वे बचकर निकल आता है और जिसे मरना था वे मारे जाते हैं। इस बुजुर्ग की बातों को सुनकर उनसे मिलनेवाले समझते हैं कि भाग्यवादी लोग जिन्दगी के पचड़ों से दूर रहते हैं। कहानी में एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है जहाँ दंगा-फसाद के कारण इमामदीन नामक एक बूढ़ा पटियाला अपने परिवार के पास जाना चाहता है। इमामदीन मुसलमान है, इसलिए हिन्दू लोग उसे मारना चाहता है। लेकिन बुजुर्ग व्यक्ति के कहने से शेरसिंह नामक ड्राइवर इमामदीन को ऑफिस की गाडी लेकर छोड़ने जाता है। उसी समय इमामदीन को मारने के लिए उसकी खोज में कुछ लोग बुजुर्ग की फैक्टरी में आता है। वे बुजुर्ग से पूछता है एक हिन्दू होकर भी मुसले को क्यों जाने दिया? इस पर पुजुर्ग कहता है यदि उसके भाग्य अच्छा है तो वह बच जाएगा, अगर तुम लोगों की किस्मत अच्छी हुई तो वह तुम्हारे हाथ में पड जाएगा। वे लोग शेरसिंह की गाड़ी का पीछा करने लगे। जैसे ही शेरसिंह की गाड़ी के पास वे पहूँचे तो शेरसिंह ने उससे झूठ कहा कि वह इमामदीन को मुसलमान होने के कारण मार डाला। वे लोग लौट गए। उधर इमामदीन गाडी के सीट के नीचे सोया हुआ था। इमामदीन बच गया और शेरसिंह उसे छोड़कर वापिस आ गया। इमामदीन के बचने की खबर सुनकर बुजुर्ग ने फिर से यही कहा कि सब 'निमित्त' का खेल है। इस प्रकार संपूर्ण कहानी एक ऐसी बुजुर्ग व्यक्ति की मानसिकता को स्पष्ट करता है जो हर चीज़ को भाग्य पर छोड देता है। दूसरे रूप में यह कहानी भाग्य के भरोसे पर हाथ रखकर बैठे रहनेवाले व्यक्तियों पर तीखा व्यंग्य भी करती है।

3.2.12 निमित्त - नाट्यरूपान्तर

नाटक केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता वह जनजागरण का एक सशक्त माध्यम भी होता है। इस सच्चाई को समझने की वजह से ही शायद भीष्म जी ने

नाट्यरूपान्तरण का उठाया था। 'निमित्त' नाटक में यह साफ दिखाया गया है कि दंगा या फसाद हो या और कुछ, जिसके मन में इनसानियत का थोडा सा भी अंश हो वह कभी भी धर्म और मजहब के पीछे नहीं भागेगा। इस कथन से नाटक शुरू होता है। नाटक के शुरू-शुरू में ही भाग्यवादी बुजुर्ग का चरित्र हमारे सामने आता है। उनके अनुसार मठरियाँ खाना भी भाग्य पर आधारित है-

"भाभी : खाओ जी, ताज़ा मठरियाँ है, बिल्कुल खालिस घी की बनी हैं।

मैं : नहीं भाभी जी मेरा मन नहीं है। मैंने पहले ही बहुत खा लिया है।...

भाभी : इतनी अच्छी मठरियाँ लाई हूँ और तुम इनकार किए जा रहे हो। और नहीं तो मेरा ही दिल रखने के लिए ही एक मठरी खा लेते।

बुजुर्ग : मैं तो यह मानता हूँ कि दाने-दाने पर मोहर होती है। जो मठरी खाना इसके भाग्य में लिखा है तो यह खाकर ही रहेगा।"[1]

उनके अनुसार सब बात पहले से तय होती है कौन सी चीज़ कहाँ जाएगी। कहानी के संवाद को नाटक में उसी रूप में रख गया है। कहीं-कहीं उसका विस्तार किया गया है। देश विभाजन की विभिषिका को बुजुर्ग और इमामदीन के संवादों में साफ दिखाई पडता है-

"इमानदीन : साहिब सभी तरफ आग जल रही है। सभी रास्ते बन्द हो गए हैं।

बुजुर्ग : फिर

इमामदीन : मैं अपने गाँव नहीं जा सकता। मुझे कुछ मालूम नहीं मेरे बाल-बच्चों का क्या हुआ है? आप मुझे पटियाला भेज दो।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (निमित्त) - पृ.सं. 95

बुजुर्ग : पटियाला? पर तुम्हारे बाल बच्चे तो गाँव में हैं न?

इमामदीन : क्या मालूम वे पटियाला पहूँच गए हो, मुझे वहीं पर मिल जाएँ।"[1]

देश विभाजन की व्यथा को भीष्मजी ने स्वयं भोगा है इसलिए नाटक में प्रसंग आने पर वह इसका उल्लेख अवश्य करते हैं।

विभाजन के समय हिन्दू और मुसलमानों की मानसिकता को नाटक में भीष्म जी ने सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। इमामदीन की रक्षा करनेवाले बुजुर्ग पर हिन्दू लोग गरज उठते हैं-

"बलवई-1 : ओ मैनेजर, तुमने अपनी कौम के साथ गद्‌दारी की है। हमारे शिकार को यहाँ से भगा दिया है।

बलवई-2 : क्यों जाने दिया उस मुसले को? तुम कौन हो उसे फैक्टरी की कार में भेजनेवाले? तुम्हारे बाप की गाड़ी है?

बुजुर्ग : भाई, वह फैक्टरी का पुराना मुलाज़िम है, अपने बाल-बच्चों की खोज में पटियाला गया है। मेरे पाँव पकड़कर गिडगिडाता रहा, मैंने जाने दिया।

बलवई-1 : वह तुम्हारा क्या लगता है? उसे क्यों जाने दिया?

बलवई-2 : क्या तुम हिन्दू नहीं हो? मुसले को जाने दिया?

बुजुर्ग : बिगडते क्यों हो भाई, फैक्टरी की दो कारे हैं, चाहो तो दूसरी कार तुम ले जाओ.... अगर उसके भाग्य अच्छे हुए तो वह भागकर निकल जाएगा अगर तुम्हारी किस्मत अच्छी हुई तो वह तुम्हारे हाथ पड जाएगा।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (निमित्त) - पृ.सं. 100

बलवई-1 : हम इस फैक्टरी को आग लगा देंगे। यहाँ तुम मुसलों को पनाह देते रहे हो।

बलवई-2 : हिन्दू होकर मुसलों को पनाह देते हो?"[1]

हिन्दू-मुस्लिम एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये है इस यथार्थ को नाटक वाणी देते हैं।

नाटक में शेरसिंह को एक ईमानदार व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया है। शेरसिंह एक हिन्दू है लेकिन उसके मन में मुसलमान के प्रति द्वेष नहीं है। इसका प्रमाण है शेरसिंह द्वारा ईमामदीन की रक्षा करना है। बलवइयों का गिरोह आने पर ईमानदीन, शेरसिंह से उसे छोडकर चले जाने को कहता है। लेकिन वह मानती नहीं और ईमामदीन से कहता है-

"शेरसिंह : अब कोई वक्त नहीं है। सुन इमामदीन, तू खिसककर सीट के नीचे सो जा, जल्दी कर, नीचे लेट जा। चुपचाप लेटा रह। मैं ट्रकी और गठरियाँ निकाल रहा हूँ।"[2]

वह ईमामदीन की ट्रकी और गठरियों पर आग लगा देता है और बलवइयों के पूछने पर यों कह दिया :

"बलवई-2 : कहाँ है मुसला?

शेरसिंह : कौन-सा मुसल?

बलवई-2 : जिसे तुमने पनाह दे रखी है। इमामदीन मिस्त्री और कौन?

शेरसिंह : मुसला वह रहा।

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (निमित्त) - पृ.सं. 104-105
2. वही - पृ.सं. 106

बलवई-1,2,3 : कहाँ?

शेरसिंह : वह पेड़ के नीचे।

बलवई : वह तो आग है। वहाँ तो धू-धू करके आग जल रही है।

शेरसिंह : वही है। ....मारकर आग में झोंक दिया, साले को।"[1]

शेरसिंह ने यह कहानी बलवइयों के आँखों में धूल झोकने के लिए बनाई थी। नाटक का अंतिम दृश्य बहुत ही प्रभावशाली है जो शेरसिंह के चरित्र को वाकई में मूल्यवान बना देता है।

"इमामदीन : खुदा तुझे सलामत रखे, शेरसिंह.... तूने अपनी जान जोखिम में डालकर मुझे बचा लिया है।

शेरसिंह : गुरु महाराज का हज़ार-हज़ार शुक्र है तू बच गया, नहीं तो मैं जिन्दगी भर अपने को माफ़ नहीं कर पाता। ....वह सामने कैम्प का फाटक है, बेखबर होकर चला जा, गुरु महाराज ने चाहा तो तेरे बाल-बच्चे भी तुझे मिल जाएँगे। तेरा सामान तो नहीं बचा, पर तू बच गया, यही बहुत है....।"[2]

शेरसिंह के एक-एक वाक्यों में मानवीयता की झलक दिखाई पडता है।

कहानी के समान नाटक भी 'निमित्त' शीर्षक को सार्थक बना दिया है। "वह भी निमित्त, मैं भी निमित्त, मैंने उसे मोटर दी, शहर से बाहर भेज दिया, मेरा इतना ही निमित्त था, आगे शेरसिंह का निमित्त था, वह उसे किले के फाटक तक छोड़ आया...."[3] - बुजुर्ग

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (निमित्त) - पृ.सं. 113
2. वही - पृ.सं. 113
3. वही - पृ.सं. 114

के इस कथन से नाटक समाप्त हो जाता है। 'निमित्त' शब्द नाटक में आदि से अंत तक परिलक्षित हो उठता है।

नाटक की भाषा कहानी के समान ही है। बीच-बीच में मज़हब, बख्शी, किस्मत, काल-ओ-गारत जैसे उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है। नाटक में दो-तीन स्थानों पर 'दाने-दाने पर मोहर लेती है जैसे मुहावरे का प्रयोग किया है। मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हुए भीष्म जी ने भाषा को बडे ही प्रभावपूर्णता से प्रस्तुत किया है।

नाटक में ध्वनि-संकेतों का भरपूर प्रयोग हुआ है। पिर्च-प्यालों की आवाज़, घंटी बजने की आवाज़, दरवाज़ा खुलने की आवाज़, मोटर का इंजन घरघराने की आवाज़, मोटर का दरवाज़ा बन्द करने की आवाज़, कार स्टार्ट करने की आवाज़, मोटर के दूर जाने की आवाज़, ढ़ोल बजने की आवाज़, माचिस जलाए जाने की आवाज़, धू-धू करती आग की आवाज़ आदि नाटक को सार्थक एवं प्रभावशाली बना दिया है।

'निमित्त' नाटक को मंच पर प्रस्तुत करना थोडा मुश्किल काम है। क्योंकि मोटर गाड़ी की उपस्थिति इस रचना की विशेषता है। मंच पर इसे प्रस्तुत करना थोड़ा मुश्किल है। लेकिन भीष्म साहनी के इसका रूपान्तरण तो मुख्य रूप से धारावाहिक के लिए किया है।

3.2.13 सागमीट

वर्तमान युगीन पूँजीवादी व्यवस्था में पैसे के बल पर उच्चवर्ग के लोग गरीब लोगों का शारीरिक और मानसिक शोषण करते रहते हैं इस तथ्य का प्रभावपूर्ण निरूपण 'सागमीट' कहानी में हुई है। कहानी का नायक है जग्गा। वह एक अफसर के यहाँ रसोईघर में काम करता है। वह नौकर अफसर और उसकी पत्नी प्रमिला को इसलिए पसंद आता

है कि जग्गा सागमीट अच्छा बनाता है। जगा के साथ उनकी युवा पत्नी सरस्ता भी रहती है। जब जगा दोपहर में अफसर के दफ्तर के काम के लिए निकल जाता है तब अफसर का छोटा भाई जगा की पत्नी के साथ अवैध संबंध स्थापित करता है। अफसर की पत्नी इस घटना को देख लेती है लेकिन चुपचाप रह जाती है।

एक दिन जग्गा इस अवैध संबंध को जान लेता है। वह अत्यधिक दुखी होकर आत्महत्या कर लेता है। वह अपने स्वामी के परिवार के अत्याचार की व्यथा किसी से न कहकर अपने मृत्यु के साथ उसे लेकर चला जाता है। उसकी मौत के कारण बने लोगों की जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आया। अफसर अपने भाई बिक्की के अपराध को बहुत सी सरल भाव से लेता है। अपने भाई के अवैध संबंध को वह पहले से जानता है फिर भी खामोश रहता है। वह भाई की जान को जग्गा की जान से बढ़कर समझता है।

'सागमीट' कहानी आरंभ से अंत तक पाठकों को जिज्ञासा की कोटी तक ले जाती है। कहानी बहुत छोटा है फिर भी पाठकों पर अपना प्रभाव ज़रूर डालती है। इस कहानी में सर्वहारा वर्ग के प्रति शोषक वर्ग कितना कठोर और निर्मम व्यवहार करता है इसे हू-ब-हू पेश की गयी है। यह कहानी केवल जग्गा की मौत से जुडी हुई नहीं है अपितु निम्नवर्ग पर अत्याचार करते शोषक वर्ग के मनोवृत्ति का द्योतक भी है। इस प्रकार यह कहानी वर्ग विभाजित समाज में फैल रही अमानवीयता और घृणा को व्यक्त करती है।

3.2.14 सागमीट - नाट्यरूपान्तर

कहानी एक ऐसी विधा है जिसकी शुरुआत कहाँ से होती है यह पता ही नहीं चलता। 'सागमीट' की कहानी खाने की चीज़ साग-मीट से होती है। भीष्म जी ने इस कहानी

को एकालाप शैली में लिखी है जिसमें अफसर की पत्नी अपनी एक सहेली के साथ बातें करती रहती है। बात करते-करते 'जग्गा' नामक नौकर पर आ जाती है, जो साग-मीट बनाने में माहिर था। कहानी की इस शुरुआत को नाटक उसका अंतिम दृश्य बनाया। सागमीट कहानी की नाट्यरूपान्तर का अन्त यह कहते हुए होता है कि "सागमीट का पूछा तो बीच में मुए जग्गे की बात चल पड़ी।"[1] नाटक की शुरुआत प्रमिला और चाची के बीच के संवाद से होता है।

नाटक की शुरु-शुरू में नौकरों के जीवन पर दृष्टि डाली गयी है। प्रमिला और चाची के बीच के संवाद इसकी पुष्टि करते हैं-

"प्रमिला : आजकल नौकरों का कोई भरोसा नहीं चाची। नौकर रखने का अब जमाना ही नहीं रहा।

चाची : यह मथुरा सात रोटियाँ सवेरे और सात रोटियाँ शाम को गिनकर खाता है। बीच में इसे दो बार चाय भी चाहिए। और घर में जो मिठाई हो, वह भी इसे दो। पर मैं कहता हूँ, टिका हुआ तो है।

प्रमिला : ठीक है चाची। आज किसी नौकर का भरोसा थोडे ही है किसी वक्त भी उठकर कह देते हैं मैं जा रहा हूँ।"[1]

नाटक में नौकर जग्गा के चरित्र के माध्यम से यह दिखलाया है कि किस प्रकार घरेलू नौकर अपना सब कुछ भूलकर दिन-रात परिवार की सेवा करते हैं। इस क्रम में उसे वह सब कुछ सहना पडता है, जिसे उचित नहीं कहा जा सकता।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 74
2. वही - पृ.सं. 48

साहनी जी ने अनावश्यक लगनेवाले भागों को नाटक से हटा लिया है। कहानी में बिक्की का हमेशा जगा की कोठरी में घुसने और एक दिन जगा के द्वारा यह दिखाई पडने की बात कही गयी है। पर नाटक में इसके बदले जग्गे की पत्नी परमेश्वरी और बिक्की के बीच संवाद होता है-

"परमेश्वरी : मुझे बख्श दो जी, मैं आपके पाँव पडती हूँ। मेरा आदमी मुझे मार डालेगा।

बिक्की : मेरे रहते तुम्हें डरने की क्या ज़रूरत है, परमेश्वरी? इदर आ जा, मेरे पास। .....इधर कोने में दुबकर बैठ गयी है। (हँसकर) मैं तुम्हें खाने तो नहीं आया हूँ। (Pause) यह ले, तेरे लिए कुछ पैसे लाया हूँ। आ जा, आ जा।

परमेश्वरी : नहीं जी, आप जाओ जी।...

बिक्की : चिल्लाएगी तो अपना ही काम बिगाडेगा। मैं घडी-दो-घडी के लिए ही तो तेरे पास आता हूँ। अभी लौट जाऊँगा, किसी को पता भी नहीं चलेगा।

परमेश्वरी : भगवान के लिए आप जाओजी।

बिक्की : चला जाऊँगा, चला जाऊँगा, आँख भरकर तुम्हें देख तो लूँ। आ जा, आ जा, अब मान भी जा, नहीं तो मैं खींचकर तुम्हें ले आऊँगा तो तुम्हें अच्छा लगेगा?"[1]

यह संवाद इस बात की पुष्टि करता है कि सारी गलती बिक्की है। कहानी में जगा की पत्नी का नाम सुरस्ता है तो नाटक में उसे परमेश्वरी नाम दी गयी है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 57-58

कहानी में मेहमानों का आना, उनके द्वारा खाने की तारीफ करना आदि का केवल संकेत है। पर नाटक में यह एक पूरा दृश्य है। जैसे-

"मेहमान-1 : ऐसा तर माल रोज़ खाते हो तभी तुम्हारी तोंद निकल आई है।

मेहमान-2 : भाभी से साँठ-गाँठ बढाओं अगर तुम भी यही तर माल खाना चाहते हो। यह तो अपनी ही तोंद बढाएगा।

मेहमान-1 : क्यों, भाभी जी, हम कभी-कभार आ जाया करें सागमीट खाने? यह आपका घरवाला तो निपट कंजूस आदमी है, इसे तो खुद ही भकोसने की पड़ी रहती है। इतना बढ़िया खाना बनाती हो भाभी, और हमें कभी याद तक नहीं करती हो! यह जुल्म नहीं तो क्या है?"[1]

हर युग में स्त्री का शोषण होता रहता है। पुरुष के लिए स्त्री केवल शरीर है। राजेन्द्र यादव के अनुसार "स्त्री हमारे लिए आज भी देह पहले है, कुछ और बाद में। हम केवल शरीर के आधार पर उसका पहला मुल्यांकन करते हैं।"[2] नाटक में बिक्की का कथन इसकी पुष्टि करता है। जैसे "तेरे शरीर से तो महक आती है- "फूलों की महक। यह महक ही मुझे मतवाला बना रही हूँ।"[3] परमेश्वरी बेचारी बिक्की की हवस की शिकार बन गई है।

पुरुष हमेशा स्त्री को गलत स्थापित करने के लिए तटस्थ है। नाटक में चाचा का कथन इसका प्रमाण है - "अव्वल तो कौन जाने बिक्की अपने आप अन्दर गया था या जग्गे की घरवाली उसे इशारा करती रही थी। ताली एक हाथ से तो नहीं बजती।.... औरत

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 64
2. राजेन्द्र यादव - स्त्री मुक्ति का सपना, (सं) अरविंद जैन - पृ.सं. 531
3. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 58

बढ़ावा देती है, तभी मर्द बहकता है। लड़की इशारा भी कर दे तो आदमी बौरा जाता है, और बिक्की तो अभी बच्चा है। कोठरी के बाहर पर्दा लटका रहता है, क्या मालूम पर्दे की ओट में खड़ी उसे इशारे करती रही हो!"[1] जब जग्गा की कोठरी से पत्नी को मारने-पीटने की, गाली-गालौज की कोई आवाज़ नहीं निकलती तो चाची का कथन इस बात की पुष्टि करती है कि औरत ही औरत की शत्रु है। चाची कहती है "ऐसा शरीफ़ आदमी भी किस काम का, जो अपनी घरवाली को काबू में नहीं रह सकता। दो थप्पड़ उसके मुँह पर लगाता, वह अपने आप सीधे रास्ते पर आ जाती। दस तरीके हैं औरत को सीधे रास्ते पर लाने के।"[2] अगर स्त्री ही स्त्री का साथ छोड़ दे तो वह अत्याचारों का प्रतिरोध कैसे कर सकेगी? फिर उसके गौरव की बात, उसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ी।

भाषा पर साहनी जी ने ध्यान दिया है। नाटक में बोलचाल की भाषा का प्रयोग ज़्यादाधिक हुआ है। कहानी के समान नाटक में भी उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग हुई है। 'मुरव्वत', 'आफ़त', 'शरीफ़ज़ादी', 'असर-रसूख', 'हिरासत' जैसे शब्द नाटक को प्रभावशाली बनाया है। नाटक में ध्वनि प्रयोजन का खूब इस्तेमाल हुआ है। दूर जाते कदमों की आहट, छम-छम करते कपड़ों की आवाज़, दरवाजा थुलने की आवाज़, घंटी बजने की आवाज़, रेलगाड़ी की आवाज़ आदि नाटक को एकदम पेरफेक्ट बनाया है। रेलगाड़ी की सीटी की आवाज़ उसका आगमन दर्शाता है। आवाज़ का धीरे-धीरे बढना, रेलगाड़ी का नज़दीक आने का एहसास देता है। दुर्घटना को भी आवाज़ के माध्यम से चित्रित किया गया है। जैसे - "रेलगाड़ी की आवाज़ तेज़ी होती जा रही है, फिर धीरे-धीरे धीमी पड़ने लगती है, मानो

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 72
2. वही - पृ.सं. 60

उसे ब्रेक लगाई गई हो। पहिए घिसटने की आवाज़।"[1] यह दृश्य वास्तव में दर्शकों के मन को उद्विग्नता की चोटी तक ले जाता है।

3.2.15 मकबरा शाह शेर अली

'मकबरा शाह शेर अली' संसार की नश्वरता को बयान करनेवाली कहानी है। इस कहानी के ज़रिए भीष्म जी यह बात स्पष्ट करना चाहती है कि आदमी जो सोचता है जिन्दगी में उसके विपरीत ही होता है। कहानी में भीष्म जी ने पीढ़ियों द्वारा कहानी कहे जाने की परंपरा का उल्लेख किया है।

शाह शेर अली ने यह मकबारा खुद अपने जीते जी अपने लिए बनवाया था। उस समय इसे खाली कब्रवाला मकबरा कहा जाता था। शाह शेर अली बडा महत्वाकांक्षी राजा था। शेर अली बचपन में अपने पिता के साथ राजधानी में घूमते समय एक अनूठा मकबरा देखा। तभी तो उसके दिमाग में एक अनुपम मकबरा बनाने की इच्छा सवार हुई थी। शेर अली ने बरसों तक राज्य किया। फिर अपनी इच्छानुसार तेरह साल में मकबरा बनवाया, जिसकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। बडी संख्या में सैलानी आने लगे।

एक दिन शेरअली ने देखा कि राज्य के सिपहसालार मकबरे को देख रहा है। तभी उसे सिपहसालार के बारे में संशय हुआ। सिपहसालार उसके मकबरे को हथियाने के लिए आया है इस संदेह से शेर अली ने सिपहसालार को मार डाला। इसके बाद शेर अली हर किसी को शक की नज़रों में देखने लगा। इसी शक से विह्वल होकर एक दिन शेर अली पागल हो जाता है। कुछ दिनों बाद शेर अली की लाश मकबरे के बडे फाटक के पास

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (सागमीट) - पृ.सं. 66

मिली। शेर अली की मृत्यु के बाद उसके बेटे शाहजादा मुराद और अन्य बंधुओं ने निर्णय लिया कि मकबरा की कब्र को पहले की तरह खाली इस दिया जाए। क्योंकि अब यह मकबरा उन लोगों की नज़र में एक अभिशप्त स्थल बन चुके हैं। शेर अली के शव को उसके माँ-बाप की कब्रों के निकट ही दफनाया गया। वर्तमानकाल में तो वह मकबरा एक खंडहर बन गया है। शाह शेर अली जो मकबरा अपने लिए बनवाया था वह उसके मरने के बाद भी उसे नसीब नहीं हुआ।

3.2.16 मकबरा शाह शेर अली - नाट्यरूपान्तर

'मकबरा शाह शेर अली' नाटक वर्तमान से शुरू होता है। इसमें एक लडका अपने दादा के साथ मकबरा देखने आता है। नाटक की शैली वर्तमान से फ्लैशबैक तक चलनेवाला है और इसे दिखाने के लिए दादा ज़ोर-ज़ोर से साँस लेता है। यह एहसास दिलाता है कि वे दोनों बहुत दूर से मकबरा देखने के लिए आये हैं।

बुजुर्ग और लडके के बीच के संवाद से ही नाटक शुरू होता है। लडका दादा से कई सवाल पूछता है जैसे, "क्या यह मकबरा बहुत पुराना है, दादा? क्या आपके दादा ने शाह शेर अली को देखा था? तो यह सच्चा किस्सा है, दादा?....।"[1] दादा जवाब देते-देते, दोनों हज़ारों साल पीछे चले जाते हैं। शेर अली और उसके पिता के बीच के संवाद से महत्वाकांक्षी शेर अली का चरित्र सामने आता है-

"शेर अली : बापू, आपने राजधानी देखी है?

अध्यापक : हाँ बेटा, देखी है। राजधानी में हुकूमत की सज-धज होती है, माहौल में सारा वक्त बादशाह की सत्ता का भास होता रहता है।

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (मकबरा शाह शेर अली) - पृ.सं. 211

माँ : कहो तो कुछ खाना साथ में बाँध दूँ?

शेर अली : नहीं माँ, साथ में खाना तो मज़दूर लोग ले जाते हैं, पोटलियों में बाँधकर। राजधानी की सडकों पर क्या हम पोटली उठाए घूमेंगे?"[1]

शेर अली का बाप एक मामूली अध्यापक था। उसकी माँ भी गरीब देहातिन भी। लेकिन शेर अली अपने जीवन में सुख-सुविधा चाहनेवाला था। वह अपने आपको शाहज़ादा मानता है।

इस नाटक में नैरेटर (Narrator) की भूमिका महत्वपूर्ण है। शेर अली के जीवन की एक-एक पडावों को नैरेटर के कथन से समझ सकते हैं। जैसे - "शेर अली, सचमुच शाह शेर अली बनकर तख़्त पर बैठा। बादशाह के सिपाहियों ने हथियार डाल दिए। शाह सजदानी से भाग गया। और शेर अली सचमुच रियासत के तख्त पर बैठा।"[2] शेर अली की मकबरा बनने की इच्छा, उसका निर्माण और उसकी सफलता सबका चित्रण नाटक में नैरेटर के माध्यम से हुआ है।

शेर अली अपने मकबरे को लेकर कितना महत्वाकांक्षी है उसका चित्रण नाटक में ज्यों हुआ है-

"शेर अली : हमारा मकबरा हमारे महल से कहीं ज़्यादा शानदार होना चाहिए।... हमारे महल में तो हमारे बाद हमारा जानशीन रहेगा, कोई और बादशाह रहेगा। लेकिन हमारी कब्रगाह में तो सिर्फ हम ही रहेंगे, सदा-सदा के लिए हम ही रहेंगे। इसलिए कहा कि वह इमारत ज़्यादा शानदार होनी चाहिए।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (मकबरा शाह शेर अली) - पृ.सं. 214
2. वही - पृ.सं. 221

वज़ीर : हुज़ूर!

शेर अली : उसके लिए संगमरमर बाहर से मँगवाओ। चार ऊँची मीनार हो, नीले रंग का बड़ा गुम्बद हो। यह मकबरा उस पहाड़ी के दामन में बनेगा। कुछ ऊँचाई पर, जो दूर-दूर से नज़र आए। बुदबुदाता है - मकबरा, शाह शेर अली! मकबरा शाह शेर अली! लोग इसी नाम से इसे जानेंगे। दुनिया इसी नाम से इसे जानेगी। सफेद संगमरमर इस्तेमाल किया जाएगा। दूर से लगे जैसे हीरा चमक रहा है।"[1]

मकबरे को लेकर शेर अली के मन में जो मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है उसे नाटक में शेर अली के स्वतः कथन में साफ नज़र आता है - "खुशबन्द ताला, कितना अच्छा होता अगर मकबरा बन जाने पर ही मेरा जनाज़ा भी उठ जाता, मेरे दो बेटे ताबूत को कन्धा देते, उमरा-वुज़रा आँसू बहाते हुए जनाज़े के साथ होते। पूरे अदब-कायदे से मेरी लाश को कब्र में उतार दिया जाता। इस वक्त मैं कब्र में मीठी नींद सो रहा होता। किसी साज़िश को पनपने का मौका ही नहीं मिलता अब तो चारों तरफ दुश्मन ही दुश्मन नज़र आने लगे हैं। सभी अपने खंजर छिपाया हुए हैं, किसी दिन मेरे सीने में झोंकने के लिए!.... मुझे अच्छा लगता है जब हज़ारों लोग, पाँत बाँधे, मेरे मकबरे को देखने आते हैं। मेरा मकबरा? पर.... यह मेरा कहाँ हुआ? अभी तक तो यह मेरा नहीं है। नहीं-नहीं, यह मेरा ही है। मैं ही इसमें दफनाया जाऊँगा। किसी की हिम्मत नहीं कि इसे मुझसे छीन सके.... किसी की हिम्मत नहीं।"[2] शेर अली की यह मानसिकता वाकई नाटक में नाटकीयता पैदा करनेवाला है।

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (मकबरा शाह शेर अली) - पृ.सं. 224
2. वही - पृ.सं. 237

अन्त तक आते-आते नाटक में नाटकीयता और अधिक ज़ोर पकडती है। नाटक के अंतिम दृश्य में पागल होकर शेर अली मकबरे की ओर भागने का चित्र प्रस्तुत है। सैलानियों के बीच के संवाद इसका प्रमाण है-

"पहला सैलानी : लगता है, कोई पागल है। देखो तो कैसे कपड़े पहन रखे हैं, कुर्ता छाती पर से खुला हुआ, चोगे की लटकती डोरी ज़मीन पर घसीटती हुई, चोगे के पल्ले घुटनों से टकराते हुए, नंगे पाँव, बाल उलझे हुए.... महल के पहरेदार उसे पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

एक और सैलानी : अरे रे! यह शाह शेर अली है! हाँ, हाँ वही है, मैंने पहचान लिया है।

दूसरा सैलानी : या खुदा, इसने कैसा हुलिया बना रखा है?"[1]

नाटक में शेर अली के पागलपन को थोड़ा और बल देने के लिए शोक संगीत बजाया जाता है। यह शोकगीत वास्तव में शेर अली का त्रासद अन्त दर्शाता है और उनकी कहानी का अन्त भी। नाटक के अंत में बच्चे का पूछना कि "क्या यह सच है दादाजान, कि जब गुम्बद के नीचे हू-हू करती हवा चलती है तो खँडहर में से गूँजती-सी आवाज 'शाह शेर अली! शेर अली!' सुनाई देती है?"[2] यह सवाल इस बात को सूचित करता है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य की इच्छाएँ खत्म नहीं होती।

भीष्म जी ने कहानी में प्रयुक्त भाषा को ही नाटक में भी उपयोग किया है। इसकी सबसे बडी विशेषता है उर्दू-फारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग। नाटक में बीच-बीच में इन शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। जैसे नाटक में शेर अली का कहना "तुम तो बड़े ज़हीन तालिब

---

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (मकबरा शाह शेर अली) - पृ.सं. 243
2. वही - पृ.सं. 244

इल्म हुआ करते थे, अभी तक कस्बों में ही बैटे हो क्या? रियाज़ी के सवाल तो तुम खडे-खडे हार कर दिया करते थे।"[1] कहानी के समान नाटक में भी फ्लैशबैक शैली का प्रयोग किया है।

नाटक में ध्वनि संकेतों का खूब इस्तेमाल हुआ है। चलते कदमों की आवाज़, साँस लेने की आवाज़, फौज का शोर, घोड़ों की टाप, घोड़ागाडी की आवाज़, मौसीकी की धुन, घुँघरुओं की आवाज़, हाँफने की आवाज़ आदि नाटक को मौलिकता प्रदान की है।

3.3 नाटक बाल भगवान - स्वदेश दीपक

स्वदेश दीपक समकालीन हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक है। वे आदमी के अंतर्गत के अंधेरे पक्ष के विशिष्ट कथाकार है। 'बाल भगवान' स्वदेश दीपक जी की बहुचर्चित कहानी है। यह एक ऐसी कहानी है जिसमें धार्मिक अंधविश्वास, स्वार्थों के लिए धर्म के इस्तेमाल और उसके पीछे छिपी क्रूरता को अत्यन्त कुशलता के साथ उजागर किया है। 'धर्म' एक ऐसा शब्द है जिसे मानव ने सर्वाधिक दुरुपयोग किया है। "धर्म के नाम पर सर्वाधिक युद्ध हुए, सर्वाधिक हत्याएँ हुई, सर्वाधिक शोषण हुआ और सर्वाधिक उत्पीडन भी। ....मानव का समस्त पाखंड, समस्त अंधविश्वास धर्म से ही जुडा हुआ है तथा मानव को अपनी श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ भी अंततः धर्म से ही प्राप्त हुई है।"[2] बाल भगवान कहानी अविकसित दिमागवाले सिद्धड के माध्यम से धर्म के इस दुरुपयोग को हमारे सामने दर्शाती है।

कहानी में गाँव के एक शराबी पंडित के अविकसित दिमागवाले बेटे सिद्दड को गाँव का एक चालाक किस्म का मास्टर बाल भगवान के रूप में प्रचारित करके अपना

1. भीष्म साहनी - संपूर्ण नाटक 2 (मकबरा शाह शेर अली) - पृ.सं. 226
2. नरेन्द्र मोहन - धर्म और सांप्रदायिकता - पृ.सं. 15

उल्लू सीधा करता है। गाँववालों के विश्वास के भावनात्मक वेग को धार्मिक स्वांग करनेवाला व्यक्ति है मास्टर। मास्टर का कहना है हारे हुए आदमी के लिए अंधविश्वास सच और सहारा होता है। सारे देश ने धर्म का संबल पकड़ रखा है। ऐसी धार्मिक आस्था जो मनुष्य को क्रिया शून्य और आसली बना देती है। जीवन की सभी प्रकार की समस्याओं का कारण ढूँढने के बजाय, कमियों को दूर करने की बजाय अपने आप को ईश्वर पोषित करते रहते हैं। क्योंकि भगवान का नाम ही दुनिया का सबसे बडा व्यापार है। भारत में लाखों करोडों रुपये भगवान के नाम पर खर्च होते हैं।

3.4 बाल भगवान - नाट्यरूपान्तरण नाटक बाल भगवान

'नाटक बाल भगवान' स्वदेश दीपक जी की इसी बाल भगवान कहानी पर आधारित है। कहानी के कथानक को नाटक में उसी प्रकार प्रस्तुत किया गया है। धर्म आज मानव केन्द्रित बनता जा रहा है। वह हर सुख-दुःख में ईश्वर का स्मरण करता है। धर्म के प्रति यह समर्पण अनेक बार अंधविश्वास और अंधश्रद्धा तक पहूँच जाता है। नाटक में यह दिखाया गया है कि देश के तथाकथित शिक्षित लोग भी उतने ही अंधविश्वासी हैं जितने ग्रामीण अशिक्षित। सेठ के पुत्र जो पढे-लिखे है सिद्दड पर विश्वास करते हैं "माता जी। न मत करो। हमारी क्या औकात कि भगवान कुछ दें। दिन भनी इज़ फार प्रसाद। सारे गाँव में बाँटे। यहाँ भगवान के अवतार लिया। दिस प्लेस इज़ सेकेरेड।"[1] सेठ के पुत्र के चरित्र से गुज़रने के बाद हमारे मन में यह सवाल उठता है कि नई शिक्षा और नव विकसित युगीन चेतना से प्रत्यक्त प्रभाव ग्रहण करने के बावजूद भी व्यक्ति आँखें मूँदकर ईश्वरनुमा आदमी के चरणों पर अपने आपको सुरक्षित रखना क्यों चाहता है।

---

1. स्वदेश दीपक - नाटक बाल भगवान - पृ.सं. 71

नाटक का बाल भगवान मात्र एक प्रतीक है। आज हर शहर में हर गाँव में हमें ऐसे लाखों बाल भगवान मिलेंगे जिसको माध्यम बनाकर लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। सिद्धड को बाल भगवान बनाने की साजिश में उसके सगे और पराए सब शामिल हैं। जैसे नाटक में सिद्धड की माता डरते-डरते पति से पूछती है क्या सचमुच में लडके में भगवान का वास हो गया है? इसके उत्तर के रूप में पंडित (पति) कहते हैं "तुझे इससे क्या लेना है? लोग मानते हैं तो मानने दे। साल भर में इतनो रुपए हो जाएँगे कि ज़मीन भी अपनी होगी और मकान भी अपना।"[1] सभी अपने बारे में सोचते हैं। सिद्धड की सहज, सरल और भोली स्वतंत्रता को सभी ने अपने लिए बंधक बना लिया है।

भूख जो भारतीय समाज की यथार्थ है भारतीय संस्कृति में असामाजिक पक्षों में एक है। भूख की पूर्ति के लिए आदमी हर विषम परिस्थिति के साथ किसी भी कीमत पर कोई भी समझौता कर लेने को प्रस्तुत हो जाता है। यही तथ्य मास्टर के कथन से स्पष्ट हो जाता है। जैसे - "भूखा आदमी हमेशा सच बोलेगा। आदमी को भूख इतना कमज़ोर और निहत्था नहीं बनाती, जितना भूख का भय।"[2] ये लोग सिद्धड को भी भूखा रखती है ताकि उन्हीं के हित की पूर्ति के लिए। भूख से तडपकर वह घरों के दरवाजों के आगे गलियों के कुत्तों की तरह रोज़ मँडराता है। भूख से तडपकर पेट में अलसर की बहुत बडा फोडा जो कभी भी फटा सकता है सिद्धड दिन-ब-दिन कमज़ोर हो जाता है। लेकिन कोई इसका परवाह नहीं करती। सब के लिए अपना मतलब ही प्रमुख है। नाटक के अंत में हम देख सकते हैं कि पंडित के सिद्धड से काग्रेस शब्द कहने के लिए विवश करता है। लेकिन बेचारे के मुँह से आवाज़ नहीं निकला। पंडित उसके फूले पेट पर लात मारता है। सिद्धड पेट

---

1. स्वदेश दीपक - नाटक बाल भगवान - पृ.सं. 56
2. वही - पृ.सं. 64

पकडकर पागलों की तरह मंच पर घूमता है। मुँह से खून की धार निकलती है और हमेशा-हमेशा के लिए गिर जाती है।

समय के साथ भारतीय नारी की हैसियत में बदलाव आया है। लेकिन सिद्धड की माँ घर की चार दिवारी में घुटती तरह तरह के निषेधों को सहनेवाली नारी है। पंडित के लिए वह शरीर की भूख शमन करने का उपकरण मात्र है। नाटक में मास्टर कथन देखिए “औरतें और पशु तो जन्मजात मूर्ख होते हैं ताडन के अधिकारी।”[1] मास्टर पुरुष वर्चस्ववाद का सच्चा प्रतिनिधि है।

आज के युग में बदलते जीवन परिवेशों के अनुरूप हमारे जीवन मूल्यों में भी भारी परिवर्तन आ चुकी है। स्वार्थ परता, आत्मचिन्तन, कृत्रिमता, जैसे अनैतिक विचारों से आदमी बेकार हो गया है। समकालीन भारत में जबकि धार्मिक पाखंड समूची मनुष्यता को ललिता जा रहा है वहाँ ‘नाटक बाल भगवान’ का महत्व निर्विवाद है।

कहानी से भिन्न होकर नाटक में अनेक प्रकार की रंग प्रयोग हुए है। नाटक मुख्यतः तीन अंकों में विभाजित हैं। पहले अंक में चार दृश्य, दूसरे अंक में तीन दृश्य तथा तीसरे अंक में चार दृश्य समाहित है। प्रत्येक दृश्य के अंत में अतरालिका (इंटरल्यूड) की परिकल्पना की गयी है। “पूर्व कथन (प्रोलॉग) और ‘अंतरालिका’ (इंटरल्यूड) नाटक बाल भगवान की विषयवस्तु, संरचना और नाटकीय प्रभाव का अभिन्न अंग है : इसलिए नाटक को मंचित करते हुए इन्हें काटना विषय और विधा के साथ अन्याय होगा।”[2] कहानी की शुरुआत प्रकृति के विभिन्न प्रकार के भाव भंगिमा से होती है। नाटक पूर्व कथन से शुरू

---

1. स्वदेश दीपक - नाटक बाल भगवान - पृ.सं. 39
2. स्वदेश दीपक - नाटक बाल भगवान - भूमिका

होता है। वहाँ हम अंधविश्वास के ढेर सारे आचारों से परिचित होते हैं जैसे बलि आदि। नाटक में दीर्घ संवाद का प्रयोग हुआ है। नाटक में एक-एक पात्र के प्रवेश नाटकीयता से भरपूर है। नाटक के प्रत्येक संवाद आज के मानव की गिरी हुई मानसिकता को दर्शाने में सशक्त है। संवादों की सहज शक्ति के कारण नाटक कहानी से ज्यादा प्रभावशाली बन गया।

नाटक में ध्वनि संकेतों का खूब प्रयोग हुआ है। शुरुआत में पशु को बलि देने की आवाज़ सुनाई पडता है। इसके अलावा नगाडे की आवाज़, बर्तन गिराने की आवाज़ पुजारिनों के जापने का स्वर, कीर्तन भजन की धुन आदि। नाटक में एक दृश्य में एब्सर्ड नाटक शैली का प्रयोग हुआ है जैसे "सरकार वह चुनें, जो काम करती हो, न्याययुद्ध में विजय हमारी ही होगी।"[1] नाटक में एक स्थान पर मूक अभिनय का प्रयोग भी हुआ है, जैसे मंच पर क्रिकेट खेलने का मूक अभिनय। नाटक में प्रकाश योजना का भरपूर प्रयोग किया गया है। पूर्व कथन के समय में मंच पर अँधेरा छाया हुआ है। धीरे-धीरे प्रकाश की किरणें आ जाती है। मंच पर पशु को बलि देने का संदर्भ में मंच पर स्थिर प्रकाश है, धीरे-धीरे प्रकाश केवल बेचारी पशु पर केन्द्रित हो गया। फिर मंच पर अंधेरा छा गया। इस प्रकार प्रत्येक दृश्य के आरंभ में मंच पर अंधेरा ही अंधेरा है। समय और संदर्भ के अनुसार उसमें प्रकाश योजना की गई है।

नाटक की एक ओर खूबी है संगीत। नाटक की शुरुआत में बलि संगीत बजाया जाता है। यह बलि संगीत वास्तव में उस बलि का बकरे का त्रासद अन्त दर्शाता है। भजन मंडली वैषणो देवी की भेंट करते समय पंजाब की लोकगीत शैली में भजन गाती है। जैसे-

---

1. स्वयं प्रकाश - नाटक बाल भगवान - पृ.सं. 92

"लाली मेरे लाल की
जित देखों तित लाल
लाली देखन मैं गई
मैं भी हो गई लाल।"[1]

यह गीत नाटक को ज्यादा प्रभावशाली बना दिया है।

3.5 और अंत में प्रार्थना - उदयप्रकाश

उदयप्रकाश हिन्दी के जाने माने जनवादी साहित्यकार है। उनकी कहानियों में समसामयिक माहौल का एक तीखा चित्रण है। 'और अंत में प्रार्थना' उदयप्रकाश की लंबी कहानी है। प्रस्तुत कहानी नव फासीवाद पर आधारित है जो फिलहाल भारत की सबसे बडी चुनौती बन गयी है। यशपाल ने सूचित किया था - "हमारे देश में मौजूद सांप्रदायिक मजहबी और सांस्कृतिक भेद हमारे समाज में मेडों की तरह खडे होकर हमें एक कोने से रोके हुए हैं। परन्तु साथ ही, उतने ही बल से शायद इससे भी अधिक ज़ोर से हम अपने समाज को छिन्न-भिन्न किए रहनेवाली इन मेडों को मज़बूत बनाए रखने की भी बुलंद किए रहते हैं।"[2] सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र में जडें जमाते नव फासीवादी संघ परिवार पर वार करने के साथ-साथ उदयप्रकाश ने भ्रष्टाचार में आंकन डूबे सासन व्यवस्थी को बी प्रकारान्तर से पर्दाफाश किया है। साथ ही अयोध्या और उससे उत्पन्न अन्य विभिन्न समस्याओं पर भी कहानी के नायक डॉ. वाकणकर के ज़रिए व्यक्त करने की कोशिश की गयी है।

---

1. स्वयं प्रकाश - नाटक बाल भगवान - पृ.सं. 34
2. यशपाल - न्याय की संपर्क - पृ.सं. 23-24

3.6 और अंत में प्रार्थना - नाट्यरूपान्तर

उदयप्रकाश जी की इस बहुचर्चित कहानी को डॉ. गिरीश रस्तोगी ने उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया। यह प्रस्तुति आज के राजनैतिक सामाजिक माहौल के बीच एक संवेदनशील, स्वतंत्र, चिन्तन, निष्ठा और मूल्योंवाले आदमी के तनाव तथा उसकी लडाई को दिखाती है। नाटक के नायक डॉ. वाकणकर पेशे से डॉक्टर है। डाक्टरी के पेशे के साथ-साथ हिन्दुओं के पुनर्जागरण के लिए भी काम करते रहा था। डॉ. वाकणकर के अनुसार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का दायित्व देश में हिन्दुओं की एकता व जागृति साबित करना है। संघ में डाक्टर का अटूट विश्वास था। लेकिन धीरे-धीरे यह विश्वास टूटने लगता है। उसका संदेह सही स्थापित हुआ कि सत्ता में संघ के आने पर भी शासन में कोई बुनियादी फर्क नहीं हुआ। वह कहता है "यह सच है कि हमारे देश में भी हिन्दू किसी ओर के द्वारा नहीं सबसे ज्यादा हिन्दुओं द्वारा ही मारे जा रहे हैं.... यह सवाल बार-बार मेरे सामने आ खडा होता है कि अगर भविष्य में कभी हिन्दू राष्ट्र बना तो वह किस हिन्दू राष्ट्र का होगा।"[1] वह अन्त में पहचानता है कि हमारे समाज में धर्म के लिए नहीं बल्कि सत्ता के वास्ते सांप्रदायिक दंगे हो रहे हैं - "मुझे दिखाई दे रहा है कि हमारे देश में हर रोज़ हज़ारों हत्याएँ हो रही है - नकली दवाओं, जहरीली शराब, गुडों और अपराधियों के संगठित गिरोहों, पुलिस द्वारा दमन और सरकार द्वारा गोली - बारी से। सबका धर्म और संप्रदाय से कोई लेना-देना नहीं है। एक पूरा भ्रष्ट और अपराधी तंत्र बन चुका है, जिसकी हिंसा और लूट के सामने इस चीज़ का कोई मतलब नहीं है कि सामनेवाला हिन्दू है या मुसलमान या किसी और संप्रदाय का। बंगाल देश में भी मुसलमानों ने ही मुसलमानों का संहार किया था।

---

1. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर - पृ.सं. 67

हज़ारों औरतों से बलात्कार किया था और मुहाजिरों को उनके घर-गाँव से उजाडकर खानाबदोश बन दिया था।"[1] आज सांप्रदायिकता का विस्तार संसदीय राजनीति का एक हिस्सा बन गया है।

जिस प्रकार हमारी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व शैक्षिक व्यवस्था भ्रष्ट है उसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्र भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। नाटक में हम देख सकता है प्राथिक स्वास्थ्य केन्द्र विधानपुर के वरिष्ठ चिकित्सक और इंचार्ज डॉ. डी.एन. मिश्रा नया बजट मिलते ही एक्सपायरी के बाद की दवाइयों को फर्जी फर्मास्यूटिकल कंपनियों के ऐजेंट से कमीशन बेसिस पर खरीदा करते थे। जब डाक्टर की गलती से किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो पैसे देकर मामला खतम कर दिया जाता है। सरकारी अस्पताल के डाक्टर प्राइवट प्राक्टीस करके पैसे कमाते हैं। डाक्टर वाकणकर इस प्रकार की अनीतियों के साथ देनेवाला नहीं है। उसकी मानवीयता पर अन्य लोग मज़ाक उडाते हैं।

उदयप्रकाश जी अपनी इस कहानी को जिस मक्सद के लिए लिखा है वही मक्सद नाटक में भी देख सकता है। "यह प्रस्तुति आज के समय में लगातार बढ़ती हुई मूल्यहीनता, संवेदनहीनता, अमानवीय और अराजक तत्वों के, हिंसा और घृणा के विरुद्ध ऊँचा स्वर उठाती हुई देश और समाज के प्रति नाटक और रंगमंच के दायित्व का निर्वाह करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अधिक से अधिक पहूँचाई जाएगी।"[2] यह प्रस्तुति उत्तर प्रदेश की पूर्वांचल की सांस्कृतिक धारा, बोली और यहाँ के लोक जीवन से जुडी हुई है। कहानी के संवाद को नाटक में उसी रूप में रखा गया है। कहीं कुछ हटा दिया, कहीं-कहीं उसका विस्तार भी

---

1. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर - पृ.सं. 68
2. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर (निर्देशकीय वक्तव्य) - पृ.सं. 46

किया गया है। नाटक में दीर्घ संवाद का प्रयोग भी हुआ है। संवाद इतने तीक्ष्ण है कि प्रत्येक पात्र की मानसिकता को समझने में बहुत ही सहायक है। संवादों में कहीं-कहीं अंग्रेज़ी का प्रयोग हुआ है जैसे-

"डाक्टर-1 : डोंट बी सो क्रुअल डॉ। कम औन। कभी-कभी अपने कुलीग्ज़ और फ्रेण्ड्स का मन भी रख लेना चाहिए।

डाक्टर-2 : इतना कट ऑफ रहते हैं आज जिन्दगी से।

दिनेश : क्या यही बात है यहाँ भी? मैं समझता था आप सब किसी वर्ल्ड प्रांब्लम पर या नेशनल प्रोब्लम पर - या अपने प्रोफेशन पर बात करेंगे।"[1]

संवादों के ज़रिए नाटकीय तनाव को प्रस्तुत करने का प्रयास लेखिका ने किया है। भावों उतार चढाव, तनाव, संघर्ष सभी की तीव्रता संवादों के अनुसार पाठक व दर्शक अनुभूत करते हैं।

गीत योजना एक ऐसा तकनीक हैं जो वातावरण को अधिक सजीव और गतिमय बना देता है। नाटक में डुमरी गाँव का चित्रण किया है। वहाँ लोकगीतों का प्रचलन है। जैसे-

"इ गाँव कवन हइ भाई, एके देबा तुही बतलाई।
कइसन लडके जइसे बीहड़ जंगलते ना।।
इ हइ डुमरी गाँव ए भाई, आवास, आवा एकरि बाति बसाई।
इहाँ चउदह बारिस में भडले ब्लेम ठेलवा ना।।"[2]

---

1. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर (निर्देशकीय वक्तव्य) - पृ.सं. 55
2. गिरीश रस्तोगी - तीन नाट्यरूपान्तर - पृ.सं. 67

नाटक को पूर्वांचल से, इधर के लोक से जोडने की कोशिश की गई है। इस क्षेत्र की मूल धुनों, गीतों-चंगेरा, कहखा, विदेसिया को लेकर गीतों को भोजपुरी में रचकर व्यंग्य और त्रासदी दोनों को व्यक्त किया गया है।

निष्कर्ष

आज हिन्दी नाट्यलेखन और रंग प्रस्तुति अपने निरन्तर विकास और उत्कर्ष की अनेक मंज़िलें पारकर प्रौढ़ता की ओर अग्रसर है। इसी प्रौढता का उत्तम उदाहरण है 'कहानी का रंगमंच'। कहानी का रंगमंच हिन्दी साहित्य की एक नूतन शाखा के रूप में विकसित होता जा रहा है। कहानी को उसकी मूल स्वरूप को विकृत किए बिना नाटक के रूप में बदल देती है। कहानी कहना आसान है पर उसे दर्शकों के सामने प्रस्तुत करना हो तो रंगमंच के बारे में थोडा बहुत ज्ञान तो होना ज़रूरी है। कहानी के रंगमंच की सबसे बडी खूबी यह है कि इसमें एक विशाल पाठक वर्ग और दर्शक-वर्ग आपस में जुड जाते हैं। अपने विचारों को आदान-प्रदान करते हैं। वहाँ एक प्रकार की सामूहिक एकता हम देख सकते हैं। हमारे हिन्दी साहित्य में अनेक ऐसी कहानीकार है जिनकी कहानियाँ एक अमूल्य धरोहर हैं। मुंशी प्रेमचन्द, भीष्म साहनी, उदयप्रकाश, स्वयंप्रकाश जैसे महान कहानीकारों की कहानियाँ कहानी प्रेमियाँ ने अवश्य पढी होंगी। किन्तु दृश्य-श्रव्य कला के माध्यम से इसे अधिकाधिक लोगों तक पहूँचाया जा सकता है। इसी कार्य के निर्वाह कहानी का रंगमंच करता है।

❖❖❖

चौथा अध्याय

उपन्यास का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

चौथा अध्याय
उपन्यास का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

उपन्यास का रंगमंच हिन्दी रंगमंच के क्षेत्र में नया है। यह एक आन्दोलन के रूप में उभरता व तेज़ी से लोकप्रिय होता जा रहा है। उपन्यास का शिल्प और नाटक का शिल्प दोनों में खास अन्तर है। नाटक के शिल्प संबन्धी विस्तृत चर्चा पहले हो चुकी है। उपन्यास माने एक घना जंगल, उस जंगल को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना कोई आसान कार्य नहीं है। "हमारे यहाँ एक कहावत हैं कि उपन्यास हथेली पर रकी हुई रंगभूमि है, अर्थात् पाठक सबसे पहले उसे पढते हुए अपनी निकटतम कल्पना में अनुभूत करता है।"[1] जब उपन्यास अकेले में पढा जाता है तो पाठकों के सोचने का अंदाज़ अलग-अलग हो सकता है। रूपान्तरकार इसमें रंग शिल्प और दृश्य-सज्जा की दृष्टि से पुनःसृजन की शर्त पर उपन्यास से नवसाक्षात्कार करता है। उपन्यास का आकार, घटनाओं - पात्रों की अनेकता और विस्तार, विभिन्न विषय और स्थितियाँ आदि को ज्यों-त्यों नाटक में लाना संभव नहीं होता। इसके लिए चिन्तन-मंथन की लंबी प्रक्रिया चलती रहती है। उपन्यास के मूल बिन्दुओं को पकडने का प्रयास जो नाटककार करता रहता है उसे अनदेखा भी नहीं किया जा सकता। साहित्य के क्षेत्र में अनेक ऐसे उपन्यास भी निकले हैं जो प्रकाशित होने के बाद भी चर्चा के विषय नहीं बने, लेकिन मंचन के बाद सर्वाधिक चर्चित हुए। इस अध्याय में हिन्दी के

---

1. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना - पृ.सं. 25

'छिन्नमस्ता', 'रागदरबारी', 'महाभोज', 'दिव्या', 'सुहाग के नूपुर', 'कभी न छोडे खेत', 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'गोदान', 'मैला आँचल' जैसे उपन्यासों के नाट्यरूपान्तरों का अध्ययन किया गया है।

4.1 गोदान - प्रेमचन्द

प्रेमचन्द शायद हिन्दी के पहले कथाकार है जिनकी रचनाओं में साहित्यकार और उसके सामाजिक कर्तव्य का समीकरण सबसे अधिक स्पष्ट है। उनसे पहले किसी अन्य लेखक ने अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मुश्किलों की इतनी गहरी और प्रामाणिक पड़ताल नहीं की है। "प्रेमचन्द ने दरअसल देश और समाज की असली हकीकत को पहचान लिया था। वह जान गये थे कि साम्राज्यवादी अंग्रेज़ी ताकतों के जाने के बाद सूदखोर महाजनों का पूँजीवादी तबका ही आगे चलकर गरीब भारतीय जनता का खून चूसेगा। उनके उपन्यास और कहानियाँ भी इस अप्रिय सच्चाई का साक्ष्य बनते हैं। प्रेमचन्द बताते हैं कि सत्ता के केन्द्र में चाहे जो भी शक्ति आ जाए वह शोषक ही होगा और निरक्षर, अज्ञानी जनता हमेशा शोषित ही रहेगी।"[1] प्रेमचन्द के अनुसार मुक्ति भावना वैयक्तिक नहीं है। वे सबकी मुक्ति का कामना करनेवाले थे।

गोदान प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यात्मक उपन्यास है। प्रेमचन्द ने भारतीय किसान के प्रतीक के रूप में होरी को उसके केन्द्र में रखा है। गोदान कथा के आरंभ से अन्त तक भारतीय किसान की व्यथा कथा प्रस्तुत है। उपन्यास में होरी के माध्यम से महाजनी सभ्यता के पुरातन विचार अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, मर्यादावाद आदि के जंजाल में

1. हेमन्त कुकरेती - हिन्दी उपन्यास : नया पाठ - पृ.सं. 56

फँसी एक गरीब किसान की त्रासदी को दर्शाया गया है। गोदान होरी की कहानी है। एक ऐसे किसान की कहानी जो पाँच बीघा ज़मीन को जोतते हुए वर्ष भर किराया, ब्याज, टैक्स और बेगार के असह्य बोझ के कारण कभी किसान और कभी मज़दूर बना चक्कर काटता रहता है। होरी की एकमात्र अभिलाषा है एक छोटी सी ज़मीन का टुकडा और एक गाय। वह अपनी इस छोटी सी आशा को पूरा करने के लिए जिन्दगी में सभी आवश्यक समझौता करता भी है। लेकिन उसका यह सपना पूरा नहीं होता। उसे वर्गीय समाज की क्रूर ताकतों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है। उपन्यास में होरी की पत्नी धनिया को एक कर्मठ नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रेमचन्द ने कृषक जीवन की करुण कथा के साथ साथ नगर के नागरिकों की कथा को भी इसमें सम्मिलित किया है। दोनों तरफ के खोखलेपन को प्रेमचन्द ने जाँचा-परखा और उपन्यास में स्थान दिया है। ग्राम कथा होरी पर आश्रित है तो शहरी कथा रायसाहब पर। दोनों अपनी-अपनी मर्यादा और मरजाद के लिए समाज के व्यूह में फँसे हुए हैं। दोनों का शोषण सामंतवादी, साम्राज्यवादी शक्तियों के द्वारा होता है प्रेमचन्द यही दिखाना चाहते हैं। वस्तुतः गोदान में नगर जीवन का चित्रण गौण रूप में हुआ है। प्रायः आलोचकों ने गोदान की नगर कथा को ज़रूरी नहीं माना है। ग्राम कथा अपने ढंग से अपनी गति से चलती है और नगर कथा उससे एकदम अलग अपने ढंग से और अपनी गति से चलती है। किसान चेतना का महाकाव्य होते हुए भी गोदान में स्त्री चेतना की अभिव्यक्ति को भी स्थान मिला है। भारतीय मध्यवर्ग, शिक्षित और संपन्न मध्यवर्ग की कमजोरियों को संक्रमणकालीन परिस्थितियों के साथ उभारने में यह उपन्यास सफल निकला है। निश्चय ही गोदान हिन्दी साहित्य की एक अभूतपूर्व रचना है, कालजयी रचना है।

4.2 'गोदान' उपन्यास का नाट्यरूपान्तर

प्रेमचन्द द्वारा 1936 में सृजित उपन्यास गोदान 36 अनुच्छेदों में विभक्त है। प्रेमचन्द ने अपने समग्र जीवन बोध और सार को इस उपन्यास में वर्णित किया है। एक महत्वपूर्ण रचना अपने समय की तमाम सृजनशीलता को प्रभावित करे यह सहज एवं स्वाभाविक है। लेकिन दूसरी कला-विधाएँ उसे रूपान्तरित करने को लालायित हो जाएँ, ऐसा कम ही होता है। निश्चय ही 'गोदान' में ऐसा कुछ है जो 'नाटकीय अभिव्यक्ति' की माँग करती है। 'गोदान' हिन्दी में शायद अकेला ऐसा उपन्यास है जिसके सबसे अधिक नाट्य रूपान्तर किये गये हैं। इसका मुख्य कारण है 'होरी' का चरित्र। 'होरी' वर्षों से हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग बन चुका है। होरी जहाँ एक ओर भारतीय किसान को उसकी समग्रता में चरितार्थ करता है, वही तमाम कमज़ोरियों के बावजूद उसके चरित्र में जो उदात्तता है - वह उपन्यास को एक महाकाव्यात्मक आयाम देती है। और शायद इसीलिए होरी को 'मूर्त' करने के लिए गोदान के अनेकानेक नाट्य रूपान्तर किये गए हैं। सबसे पहले श्री अमृतलाल नागर ने इसे लखनऊ में मंचित कराया। फिर श्री विष्णु प्रभाकर ने 'होरी' नाम से इस उपन्यास का नाट्य रूपान्तर प्रकाशित करवाया, जिसे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली ने मंचित किया। अनामिका कला संगम कलकत्ता के लिए श्रीमती प्रतिभा अग्रवाल ने भी 'गोदान' का नाट्य रूपान्तरण किया है। कदाचित् और भी नाट्य रूपान्तरण इस उपन्यास के हुए हो।

4.3 होरी - विष्णु प्रभाकर

'होरी' को केन्द्र बनाकर विष्णु प्रभाकर ने सन् 1954 में 'होरी' नामक नाटक लिखा था। जो उसी समय से विविध मंचों में सफलतापूर्वक खेला जाता रहा। अनेक

प्रख्यात निर्देशकों ने इसे प्रस्तुत किया। विष्णु प्रभाकर जी का कथन है "प्रस्तुत नाटक 'होरी' प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' का नाट्यरूपान्तर है। उनके पुत्र श्री अमृतराय के कहने पर यह रूपान्तर मैंने सन् 1954 में किया था। यह संयोग की बात है कि 1955 में दिल्ली आर्ट थिएटर ने इसका मंचन किया।"[1] रेडियो और दूरदर्शन पर भी इसको कई बार प्रस्तुत किया गया। इसके अलावा कई भाषाओं में इसके अनुवाद भी हुए हैं।

'गोदान' उपन्यास 371 पृष्ठोंवाला, बहुत सारे पात्रोंवाला एक बृहद उपन्यास है। 'होरी' नाटक में विष्णु प्रभाकर जी ने इस बृहद उपन्यास को 87 पृष्ठों में समेटने का साहस किया, जिसकी कथा दो अंकों में विभाजित हैं। ग्रामीण और शहरीय जीवन का समन्वय करनेवाले प्रेमचन्द के इस उपन्यास में से निर्देशक ने समयावधि, स्थान और कार्य व्यापार की दृष्टि से शहरीय प्रसंगों और अतिरंजनापूर्ण कुछेक भावुक ग्राम्य दृश्यों का भी संयोजन किया। "प्रेमचन्द जी अगर स्वयं इस नाटक को लिखते तो निश्चय ही वह इस अंश को छोड देते। समय की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रभाव की दृष्टि से भी।"[2] क्योंकि होरी का शहरी जीवन से कोई संबन्ध नहीं है। प्रेमचन्द ने जब 'गोदान' लिखना शुरू किया था "वह दौर सामाजिक और सांस्कृतिक धरातल पर जहाँ नवजागरणकालीन सक्रियताओं का था वही राजनीतिक धरातल पर देश निर्णायक लड़ाई के लिए छटपटा रहा था। आर्थिक मोर्चे पर भी अजीब कशमकश थी। खेती व्यवस्था नष्ट होने के कगार पर थी। किसान और ज़मींदार को महाजनी अजगर निगल रहा था। गाँवों के साथ-साथ शहरों के अर्थतंत्र पर पूँजीवादी शिकंजा अपना जोर आजमा रहा था। शहरों में निम्न और मध्यवर्ग दोनों ही बेहाल थे। उनके चारों तरफ अज्ञानता और गरीबी का अंधेरा छाया हुआ था। ....अपनी ही ज़मीन पर

1. विष्णु प्रभाकर - होरी, भूमिका
2. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.सं. 6

वह किसान की तरह नहीं एक बँधुआ मज़दूर की तरह मज़दूरी कर रहा था।"[1] इस भयावह सच्चाई को 'गोदान' में प्रेमचन्द ने कई कोणों से देखा है। उस सच्चाई को 'होरी', 'गोदान' जैसे नाट्यरूपान्तरणों ने जनसाधारण तक पहूँचाने का, उसे ज्यादाधिक प्रभावशाली बनाने का कार्य किया।

गोदान उपन्यास की मुख्य कथा होरी के जीवन की त्रासदी है। इसलिए नाटक में होरी के जीवन को उसकी दुर्बलताओं को ज्यादाधिक दर्शाने का प्रयास नाटककार ने किया है। इसमें पटवारी-साहूकार - पंडित और दारोगा की सम्मिलित शोषक शक्ति से टकराकर होरी के क्रमशः टूटने-बिखरने, किसान से मज़दूर बनने और अंततः गोदान करने की कभी न पूरी होनेवाली भोली महत्वाकांक्षा के लिए चुपचाप मर जाने की करुण कथा का बडा हृदयग्राही चित्रण हुआ है। धनिया का विरोध और गोबर का विद्रोह इनका उपयोग होरी के बाहर से निरीह पर भीतर से अटूट मनःस्थिति को रेखांकित करने के लिए उपयोगी सिद्ध हुये हैं। पटवारी, साहूकार जैसे शोषक शक्तियाँ किस तरह किसान को चूस-चूसकर बंधुआ मज़दूर बनाती है और क्यों देहात की नई पीढ़ी शहरों की ओर भागती है - भारतीय गाँव की इस व्यापक समस्या को एक परिवार की त्रासदी के माध्यम से बिना अतिरंजना और अतिभावुकता की हदें छुए खुबसूरती से नाटक पेश करता है।

'होरी' नाटक का प्रमुख पात्र है होरी। होरी समूचे देश के अनपढ़, निर्धन, धर्मभीरु, अंधविश्वासी, रूढिवादी किसान का प्रतीक चरित्र है। आज भी भारतीय किसान में इनमें से अधिकांश गुण देख सकते हैं। होरी साहूकारों, बिरादरी के चौधरियों द्वारा सताया जाता है। और वह इस भावना को इस रूढ़ सोच के बल पर झेल जाता है कि अमीर-गरीब तो

1. हेमन्त कुकरेती - हिन्दी उपन्यास : नया पाठ - पृ.सं. 58

भगवान के यहाँ से बनकर आते हैं। वह कहता है "हमारा जन्म इसलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएं और बडों का घर भरें।..."[1] गाँव का किसान अपनी कोई छोटी आशा भी नहीं रख सकता, जैसे होरी ने रखा है। होरी की आशा थी कि अपने द्वार पर एक गाय को बाँधने की। भोला के गाय को देखकर वह कहता है "कैसे सिर हिलाती, मस्तानी, मन्द गति से झूमती चली जाती है। जैसे बाँदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा सुभ होगा वह दिन जब यह कामधेनु मेरे द्वार पर बँधेगी।"[2] उसी के चक्र में उसे भूमिधर किसान से भूमिहीन किसान-मज़दूर बनना पडता है।

नाटक की शुरुआत पृष्ठभूमि से उद्घोषक की टिप्पणी से होती है - "यह नाटक जो आपके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है, हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' के नायक 'होरी' की कहानी है। मूल रूप से यह नाटक नहीं है, बल्कि उपन्यास का नाट्यरूपान्तर है।"[3] यह नाटक वैसे तो बनारस के आसपास के गाँव की कहानी है। लेकिन किसान बनारस का हो या भारत के किसी अन्य प्रदेश का, उसकी मूलभूत भावनाएँ व समस्याएँ समान ही हैं।

झुनिया को आश्रय देने के कारण धनिया और होरी बरबाद हो जाते हैं। बिरादरी उनका दुश्मन हो जाती है। उपन्यास में इसका विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है। नाटक में नेपथ्य से उद्घोषक द्वारा होरी की इस बुरी हालत का बयान प्रस्तुत करती है - "बेचारा होरी ! आखिर बेटा भी चला गया। रोने से तो समस्या का हल होता नहीं यह वह अच्छी तरह जानता है। क्योंकि उसे दो बेटियों का विवाह करना है। और घाव पर नमक छिडकने की तरह मँगरु

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.सं. 19
2. वही - पृ.सं. 15
3. वही - पृ.सं. 9

साह मुकद्दमा जीत गया है, होरी पर डेढ़ सौ रुपए की डिगरी हो गई। ....ऐसे समय में उनकी समधन आकर उनकी सहायता करती है, उन्हें रुपए देती है। एक दिन वो रुपए लौटाने तो होंगे। पर अभी तो उनके सहारे एक बेटी की शादी हो जाती है। दूसरी बेटी के लिए भी प्रस्ताव आता है। वह अधेड़ है पर पैसे वाला है। स्वास्थ्य भी अच्छा है। वे चाहते तो नहीं पर विवश होकर छोटी बेटी की शादी उससे कर देते हैं, तभी रूढा हुआ बेटा भी घर लौट आता है।"[1] होरी के मन में अपनी ज़मीन नष्ट होने का डर दूर नहीं होता।

'होरी' नाटक में होरी का बेटा गोबर शहर जाकर अपना रहन-सहन भी आधुनिक बना देता है। वह होरी को समझाता है कि भगवान ने नहीं इन्सान ने गरीब-अमीर बनाए है। वह यह भी बताता है कि किसान को अपना भाग्य खुद बनाना होगा। वह कहता है - "यहाँ बैठकर क्या करूँगा। कमाओ और मरो, इसके सिवा यहाँ और क्या रखा है। थोडी-सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे तो वहाँ भूखा नहीं मर सकता। यहाँ तो अकल कुछ काम ही नहीं करती।"[2] 'होरी' में गोबर ही गाँव और शहर के श्रमजीवियों को जोड़ने वाला है।

'होरी' में धनिया को एक विद्रोही स्त्री चरित्र के रूप में उठाया गया है। होरी की धर्मपत्नी के रूप में तथा एक ग्रामीण नारी के रूप में धनिया का चरित्र उपन्यास के समान नाटक में भी अत्यन्त प्रभावशाली है। नाटक में धनिया ही एक मात्र ऐसी नारी है, जिसके संवादों में आवेश एवं जोश भरे हुए हैं। इन संवादों के ज़रिए उसके तथा होरी के स्वभाव के विभिन्न आयामों को खुलास मिलते हैं। जैसे - "घर के परानी रात-दिन मरे और दाने-

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.सं. 83
2. वही - पृ.सं. 68

दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुली भर रुपए लेकर चला है इज़्ज़त बचाने। ऐसी बडी है तेरी इज़्ज़त। दारोगा तलाशी ही तो लेगा। ले ले जहाँ चाहे तलाशी। एक तो सौ रुपए की गाय गई उस पर से यह पलेथन, वाह री तेरी इज़्ज़त।"[1] धनिया किसी से नहीं डरती। इसलिए वह विद्रोही बनकर होरी से पूछती है "मैं कहती हूँ तुम इतने भोंदू क्यों हो? तुम्हारे मुँह में जीभ नहीं है कि उन पंचों से पूछते तुम कहाँ के बडे धर्मात्मा हो। दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन से फँसा है। पटेश्वरी ने ब्याज खा-खाकर हज़ारो की संपत्ति बना ली है। झिंगुरी सिंह की दोनों औरतें घूँघट की ओर सत्तर घाट का पानी पीती है।"[2] वह ग्रामीण पुरुषों की वासनाओं को चुपचाप सहने के लिए तैयार नहीं है। उसमें प्रतिरोध की शक्ति है। नाटक के अंत में गोदान माँगनेवालों से वह कहती है - "महाराज, घर में न गाय है, न बछिया है न पैसा। आज जो सुतली बेची थी उसके यही बीस आने पैसे हैं, यही इनका गोदान है।"[3] यह सुनकर सब लोग सिर झुका लेते हैं और सुबक उठाते हैं। धनिया का प्रस्तुत कथन किसी शिक्षित, शाक्तीकृत नारी की विद्रोही चेतना से कम नहीं है।

'होरी' नाटक की एक प्रमुख विशेषता है उद्घोषक। उपन्यास की विराट भूमि को नाटक के समयक्रम में समेटने की शक्ति उद्घोषक की टिप्पणी में है। नाटक की शुरू से लेकर अंत तक उद्घोषक की टिप्पणी महत्वपूर्ण हैं। वह घटनाओं की श्रृंखला को जोड़ता है वातावरण का निर्माण करता है। नाटक की सीमित अवधि के भीतर रहकर वह कुछ घटनाओं की सूचना देते हुए कथावस्तु को आगे बढाता है। उद्घोषक भी नाटक का एक मुख्य पात्र बन जाता है।

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.सं. 46
2. वही - पृ.सं. 55
3. वही - पृ.सं. 57

प्रकाश योजना इस नाटक की एक और खूबी है। कथा गति के अनुसार कभी धीमी प्रकाश, कभी अंधकार जैसे "बोलते-बोलते मंच पर अंधकार उतरने लगता है। दो क्षण बाद प्रकाश की रेखाएँ उभरती हैं। पूर्ण प्रकाश होने पर होरी घर के चबूतरे पर बैठा चिल्म पी रहा है।"[1] एक अन्य संदर्भ में "मंच पर अँधेरा और गहरा होता है। समय की सूचना देने को धीरे-धीरे गहराती है।"[2] रात को दर्शाने के लिए पृष्ठभूमि से जुगुनुओं की चमक दिखायी पडती है।

उपन्यास के समान नाटक में पात्रों की हैसियत के अनुकूल नाम तय हुए हैं - होरी, धनिया, झुनिया, गोबर, मातादीन आदि। उनकी वेशभूषा भी उनकी आर्थिक सामाजिक हैसियत के अनुरूप हैं। नाटक की भाषा उपन्यास के समान ग्रामांचल की भाषा है। इसमें मुख्यतः देशी बोली का प्रयोग हुआ है। "भगवान कहीं गौंसे बरखा कर दे और डाण्डी भी सुभीते से रहे तो एक गाय ज़रूर लूँगा। और पछाँई लूँगा।"[3] ग्रामीण परिवेश के नाटकों में प्रदेश विशेष की बोली या आंचलिक शब्दों का रचनात्मक उपयोग ज्यादा बहतर होगा। जो प्रदर्शन को ज्यादा प्रमाणिक, विश्वसनीय, सहज और प्रभावशाली बना देता है। प्रस्तुत नाटक भाषा की इस विशिष्टता से उल्लेखनीय है।

'होरी' नाटक में यथार्थवादी रंगमंच को अपना लिया है। जिसमें होरी के यथार्थ जीवन को मंचीय उपकरणों के साथ सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है। टूटे-फूटे घर, नालियाँ, दाएँ-बाएँ पगडंडियाँ। ऐसे ही एक कच्चे घर का दृश्य मंच के बीचों बीच उपस्थित

---

1. विष्णु प्रभाकर - होरी - पृ.सं. 15
2. वही - पृ.सं. 28
3. वही - पृ.सं. 11

होता है। दरअसल नाटक होरी अपने समय की सभी मानवीय और प्रतिगामी विचारधाराओं को एक साझा मंच देने में सक्षम निकला है।

4.4 गोदान - प्रतिभा अग्रवाल

गोदान उपन्यास का गत 50-60 वर्षों में कई रूपांतर किये गये और खेले गये। "गोदान में ग्रामीण और शहरी दो कथानक समानांतर चलते हैं जिनके माध्यम से प्रेमचन्द ने बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतवर्ष विशेषकर उत्तरप्रदेश के ग्रामीण जीवन एवं उनके संघर्षों, स्वाधीनता आन्दोलन, औद्योगीकरण एवं उसकी समस्याओं, सामाजिक - आर्थिक विषमता आदि का विस्तृत एवं गहरा चित्रण किया है जिसका आधार उनका स्वानुभव था, केवल सुनी-सुनाई या कपोल-कल्पना नहीं। गोदान का महत्व उसके इस बृहत् पटल और भावों तथा परिस्थितियों के गंभीर आंतरिक वर्णन के कारण है। ऐसे कथानक का मंचायन करने की इच्छा होना स्वाभाविक था।"[1] गोदान जैसे एक महाकाव्यात्मक उपन्यास का नाट्य रूपान्तर काफी कष्टप्रद कार्य है जिसे श्रीमति प्रतिभा अग्रवाल ने बखूबी निभाया है। कलकत्ता की सुप्रसिद्ध नाट्य संस्था अनामिका ने 4 अप्रैल 1976 को प्रतिभा अग्रवाल जी द्वारा रूपान्तरित 'गोदान' नाटक को रवि दवे के निर्देशन में मंचित करने का प्रयास किया। यह प्रस्तुति काफी सराही गयी। आज तक इसके कलकत्ता तथा अन्य शहरों में लगभग 70-80 प्रदर्शन किये गये हैं।

उपन्यास की मूल भावना तथा उपन्यासकार प्रेमचन्द के आदर्श को सुरक्षित रखते हुए नाटक 'गोदान' को दो सवा घंटों में बरकरार रखा है। जिसके लिए 'होरी' नाटक के

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - गोदान, आमुख

समान इस नाटक में भी शहरी अंश को एकदम छोड़ दिया गया। नाट्यालेख के केन्द्र में हमारे देश का जीवन और उसके केन्द्र में होरी का संघर्षमय जीवन है। 'गोदान' के मंचन पर हिन्दुस्तान स्टान्टर्ड (Hindustan Standard) पत्रिका पर एक प्रतिक्रिया इस प्रकार आई थी - "GODAAN, the Hindi Classic by Munshi Premchand is a ruthless treatment of life in the Indian village. There is melodrama in the sheer accumulation of mishaps, unhappy coincidence and the suddenness of happenings; It went to the credit of Anaamika, and particularly Mrs. Pratibha Agarwal, who adopted the novel into a play and acted one of the main roles, that the authenticity of a mode of living emerged through the melodramatic plot. Ravi Dave, who directed had taken care to concentrate on typage"[1] 'गोदान' नाटक की कथा होरी की अभाव ग्रस्त जीवन है उसका सुख-दुःख, स्वार्थ और त्याग सभी इसमें निहित है। गाय खरीदने की अदम्य इच्छा को होरी अपनी एकमात्र लालसा मानता है। लेकिन अंत में होरी सवा रुपये का गोदान करके जीवन के यथार्थ को नतमस्तक स्वीकार करता है और अंतिम सांस लेता है।

'गोदान' नाटक की कथा मुख्यतः दो अको में बाँटी गयी है। पहले अंक में तीन और दूसरे अंक में सात दृश्य हैं। पहले अंक में घटनायें धीरे-धीरे बढ़ती हैं, कुछेक महीनों में सीमित हैं। जबकि दूसरे में कई वर्षो का समय निकल गया होता है। अतः समय का अंतराल दिखलाने के लिए दृश्य परिवर्तन आवश्यक था। वैसे तो दृश्य स्थल एक ही है होरी, हीरा और शोभा के घरों के बीच की खुली जगह, जिसमें होरी की झोंपड़ी का सामने

---

1. Hindustan standard, 1976, गोदान फ्लेंप से

का हिस्सा और हीरा-शोभा की झोंपड़ी का पिछवाड़ा पडता है। सारा क्रियाकलाप यहीं घटता है।

गोदान उपन्यास के प्राण हैं होरी और धनिया उसे उसी रूप में नाटक में भी प्रस्तुत किया गया है। होरी के रूप में आदित्य विक्रम और धनिया के रूप में प्रतिभा अग्रवाल का जीवंत अभिनय नाटक में छा गया है। जिसके श्रम से श्यामल धरती धानी चुनरिया ओढ़ती है। उसकी अभावग्रस्त आँखों की पीड़ा प्रायः अनदेखी रह जाती है। इसी का प्रतीक है होरी, जो किसान है। पर शोषण की चक्की में पिस कर वह मज़दूर बन गया। होरी का कहना है "महतो, हम लोगों की जिन्दगी में और क्या है? मन की सब साध मन में रह जाती है।"[1] होरी जीवन भर संघर्ष करता रहा है। मेहनत भी करता रहता है। वह धनिया से कहता है "धनिया, अब हिम्मत पस्त हो गयी। सारी जिन्दगी जूझते बीत गयी पर कोई इच्छा तो पूरी न हुई। बेटा घर छोडकर चला गवा, विटियन का ब्याह न कर सका। कर्ज का बोझ सिर पर लदा है, अब तो लगता है कि खेत भी हाथ से निकल जायेगा, मकान तो गिरवी रखा ही है। यही खेत के बचाने के लिए हमने का नहीं किया पर ऊ भी न बचा। हमरी नैया कैसे-कैसे पार लगेगी, धनिया?"[2] किसान जीवन का असली त्रासदी होरी के दमन और शोषण से त्रस्त जीवन में छिपी है। होरी का दमन और शोषण करनेवाले उसके परिवेश के हिस्से हैं।

नाटक में संवादों को मुहावरे युक्त एवं ग्रामीण परिवेश के परिचायक बनाया है। कहीं-कहीं संवादों को जोडा गया है - जैसे "अरे हाँ अभी ध्यान आया, हमरे ससुराल में एक मेहरिया है, उसका आदमी छोडकर कलकत्ता चला गया है। देखने-सुनने में अच्छी है, कहो

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - गोदान - पृ.सं. 11
2. वही - पृ.सं. 79

तो बात चलावें?"[1] कहीं कुछ संवादों को छोड भी दिया है। 'होरी' नाटक की अपेक्षा 'गोदान' नाटक में गोबर का चरित्र और अधिक प्रभावशाली है। उसके एक-एक शब्दों में नयी पीढी का विद्रोह दिखाई पडता है। जैसे - "काका, ई महाजनन को हैजा हो जाएगा तो दूसरे महजन आयेंगे, उनकी कड़ी नहीं टूटेगी, समझे। वह तो तबै टूटेगी जब हम कड़े पडेंगे।"[2] नाटक में होरी की बेटीयाँ रूपा और सोना का प्रत्यक्ष रूप से मंच पर कोई भूमिका नहीं है, केवल नेपथ्य से उनकी आवाज़ मात्र सुनायी पडती हैं।

धनिया का चरित्र भी विद्रोही चेतना से ओतप्रोत है। जैसे वह होरी से कहती है - "तुम झूठमूठ मालिक की खुसामद में लगे रहते हो। हम उनका खेत जोतते हैं तो बदले में लगान देते हैं, इसमें कौन सा अहसान है? हम काहे रोज़ उनका तलवा सहलावें, उनकी हाजरी बजावें?"[3] नाटक में गीत योजना का प्रयोग नहीं हुआ है। लेकिन दो स्थानों पर नाटककार ने इस पर टिप्पणी की है। गोबर को लडका पैदा होने के अवसर पर नाटककार टिप्पणी देती है कि "कलाकार यदि गा सकते हो तो यहाँ पर धनिया और पुनिया ढोल लेकर सोहर गा सकती है।'[4] उसी प्रकार दृश्य सात में यह नोट दी गयी है कि "यहाँ पर चाहें और संभव हो तो फाग के गीत का दृश्य जोड़ सकते हैं - गांव के कुछ लोग बैठकर फाग गायें - उसके बाद उठकर चले जायें और तब झुनिया और गोबर की बातें आरंभ हों।"[5] ऐसी ऐसी छूट नाटककार ने कलाकार को सौंप दिया है।

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - गोदान - पृ.सं. 12
2. वही - पृ.सं. 71
3. वही - पृ.सं. 9
4. वही - पृ.सं. 62
5. वही - पृ.सं. 72

नाट्य रूपांतर में प्रयुक्त भाषा के संबन्ध में कहे तो प्रेमचन्द जी ने उपन्यास 'गोदान' में खडीबोली का प्रयोग किया है। जिसमें आसिरबाद, सोभा, असाद, अरथ, धरम, पोसरी आदि प्रयोगों के द्वारा आशीर्वाद, शोभा, आषाढ़, अर्थ, धर्म, पटेश्वरी आदि कुछ शब्दों के खड़ेपन को कम किया है। इसके अलावा हमरे-तुमरे (हमारे-तुम्हारे), ई-ऊ (यह-वह), हियो-हुआं (यहाँ-वहाँ), खुसामद (खुशामद), काहे (क्यों), असनान (स्नान), सरीक (शरीक), आवै (आप ही), ओके (उसको), हाजरी बजावें आदि शब्दों का प्रयोग करके भाषा को उत्तरप्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा का स्वाद छिलवाने का प्रयत्न किया है। जैसे "खुशामद तो अपनी गरज से करते थे कोई हमरे दुलार से नहीं।"[1] वैसे भाषा का मूल ढाँचा, वाक्य विन्यास, शब्द चयन सब खडीबोली के ही हैं।

नाटक 'गोदान' में यथार्थवादी रंगमंच को अपनाकर सारी गतिविधियों को सशक्त ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। यह रूपांतर मंचोपयोगी है जो मंच पर सफल भी हो रहा है।

4.5 बाणभट्ट की आत्मकथा - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान, समालोचक एवं सृष्टा है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' 1946 में लिखी द्विवेदी जी का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसमें मध्यकालीन कथा के आधार पर आधुनिक युग की समस्याओं को स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से देखा गया है। यह द्विवेदी जी जैसे प्रतिभावान के लिए ही संभव था कि वह बाणभट्ट जैसे प्रखर उद्भट विद्वान रचनाकार के जीवन को अपने उपन्यास का उपजीव्य बनाया।

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - गोदान - पृ.सं. 23

द्विवेदी जी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सातवीं - शताब्दी के प्रख्यात कवि बाणभट्ट को कथानायक बनाया है। उसके जीवन के आधार पर उस समय के समाज, धर्म, राजनीति, आचार-विचार, रीति-नीति तथा जीवन के अनुभवों को युगीन परिवेश के साथ अंकित किया है। दूसरे रूप में कहें तो उपन्यास में हर्षकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व राजनीतिक पक्ष के एक-एक तंतुओं को उभारने की कोशिश की गई है। इसके अलावा वसन्तोत्सव, मदनोत्सव, पुत्र जन्मोत्सव, उपनयन, नामकरण, अन्तेयेष्टि संस्कार आदि का चित्रण भी उपन्यास में निहित है। प्रकृति का विराट स्वरूप आदि से अंत तक उपन्यास में विद्यमान है। उपन्यास में अध्यायों को 'उच्छवास' नाम दिया गया है, इसमें कुल-मिलाकर बीस उच्छवास हैं। उपन्यास कथामुख से सुरू होता है, जिसमें 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का इतिहास व्यंजित है और अंत में उपसंहार भी दिया गया है।

निपुणिका 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास का सबसे सशक्त, प्रभावशाली एवं काल्पनिक पात्र है। निपुणिका साधारण होने के बावजूद एक असाधारण नारी थी। नारी की मुक्ति के लिए अपने जीवन का सर्वस्व वह लगा देती है। निपुणिका मृत समान बाण में भी जीवन का संचार करती है। अभिशप्त वर्ग की निपुणिका उच्च संस्कारों से संपन्न होते हुए भी दुर्भाग्य ने उसको कदम-कदम पर छला है। उसी की सहयोग से बाण भट्टिनी को मुक्त कराने में सफल होता है। अंत निपुणिका उपन्यास का केन्द्रस्थ पात्र है। वह आरंभ से अंत तक मुक्ति की कामना हेतु तत्पर रहती है। निपुणिका का जीवन संघर्षरत होने के कारण वह साहस की प्रतिमूर्ति दिखती है। निपुणिका के समान भट्टिनी, महामाया आदि नारी पात्रों को भी उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

बाणभट्ट की आत्मकथा इतिहास और कल्पना का अद्भुत समुच्चय है। इसमें एक ओर तो सातवीं शताब्दी की भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों

का सांगोपांग वर्णन हुआ है तो दूसरी ओर मानव मन की उदात्त भावनाओं एवं आस्थाओं का जीवंत परिदर्शन भी इसमें उपलब्ध है।

4.6 बाणभट्ट की आत्मकथा - नाट्यरूपान्तर

'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के इसी नाम के उपन्यास का नाट्यालेख है। रूपान्तरकार अमिताभ श्रीवास्तव और निर्देशक एम.के. रैना के सहयोग से यह नाट्यालेख सफल निकला है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास और उसके नाट्यालेख बहुत सारे प्रयोगों से ओतप्रोत हैं। फिर भी उपन्यास की मूल संवेदना को नाटक में ज्यों का त्यों उभारने की कोशिश रूपान्तरकार ने की है। उपन्यास में वर्णित पर्व, त्योहार व प्रकृति के विराट स्वरूप आदि को नाटक में बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं।

बाण का ग्रन्थ हर्षकालीन समाज का दर्पण है। इस दर्पण को माध्यम बनाकर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक प्रस्तुत किया गया है। यह एक ऐसा समय था जहाँ सांप्रदायिकता, जाँत-पांत, प्रांतवाद जैसे अनेक समस्याएँ उग्र रूप धारण कर चुकी थी। अंग्रेज़ी शासन की कूटनीति के कारण भारतीय जनता निराश हो गई थी, जीवन की अपनी उमंग खो बैठी थी। नाटक में रूपान्तरकार ने महामाया के जरिए ऐसे दिशाहीन समाज को दिशा प्रदान करने का उसके अंदर नई शक्ति जागृत करने का प्रयास किया गया है। नाटक में महामाया का कथन तो देखिए - "अमृत के पुत्रों, संयम से काम लो। म्लेच्छवाहिनी का सामना राजपुत्रों की वेतनभोगी सेना नहीं कर सकेगी। क्या ब्राह्मण और क्या चांडाल, सबको अपनी बहु-बेटियों की मान-मर्यादा के लिए तैयार होना होगा। म्लेच्छावाहिनी पहली बार नहीं आ रही है, अन्तिम बार भी नहीं आ रही है। तुम यदि आज तुवरमिलिन्द और

श्रीहर्षदेव की आशा पर बैठे रहोगे, तो संभवतः आज यह विपत्ति टल जाए; परन्तु कल नहीं लेगी। तुवरमिलिन्द और श्रीहर्षदेव सदा नहीं रहेंगे; परन्तु तुम्हें सदा रहना है। अमृत के पुत्रों, मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा, महाराजा और सामन्त स्वार्थ के गुलाम बनते जा रहे हैं। प्रजा भीरू और कायर होती जा रही है। विद्वान और शीलवान् नागरिकों की बुद्धि कुंठित होती जा रही है। अपने-आपको बचाओ, धर्म पर दृढ़ रहो, न्याय के लिए मरना सीखो, ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक एक हो जाओ। अमृत के पुत्रों, राजपुत्रों की वेतनभोगी सेना की आशा छोड़ो, मृत्यु का भय माया है।"[1] आर्यवर्त को दस्युओं ने गुलाम बनाया था, वह अंग्रेज़ों के द्वारा बनाये गये गुलामी का प्रतीक था।

भारतीय समाज रूढ़ियों, परंपराओं आदि से ग्रस्त था। इसलिए नाटक में बाबा कहता है - "किसी से न डरना। गुरु से भी नहीं; मंत्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं; वेद से भी नहीं।"[2] क्योंकि डरना मौत के समान है। यह युगचेतना का ही प्रतिबिंब है।

हर्षकालीन समाज में जनता जाँति-पांति तथा ऊँच-नीच की भावना से पीडित है। पुनर्विवाह एवं अंतर्जातीय विवाह हर्षकाल में वर्जित था। नाटक में इस तथ्य को प्रामाणित करते हुए चन्द्रदीधिति भट्टिनी कहती है - "मैंने अनेक देश, अनेक समाज, अनेक जातियाँ देखी है। परन्तु आर्यवर्त जैसी विचित्र समाज व्यवस्था कहीं नहीं देखी। यहाँ इतने स्तरभेद हैं कि मुझे आश्चर्य होता है लोग यहाँ जीते कैसे हैं?..... तुम यदि किसी पवन कन्या से विवाह करो तो यह इस देश में एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्त्र स्तर है वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो तीन होंगी।

---

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 184
2. वही - पृ.सं. 162

.....भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं उनकी निचाई का कोई आरपार नहीं। परन्तु इनमें सब समान हैं। पश्चिम की स्त्रियों में रानी से लेकर परिचारिका तक के और गणिका से लेकर वार विलासिनी तक के सैकडों भेद नहीं है। वो सभी रानी है और सभी परिचारिका।"[1] भट्टिनी के इस कथन में जातिवाद के विरुद्ध मानवतावादी स्वर मुखरित है। नाटक में इसे काफी ज़ोर दिया गया है।

तत्कालीन शासन में दंड का विधान बहुत कठोर था। अपराधी को सूली पर लटका दिया जाता था। इसका उल्लेख नाटक में सुगतभद्र के कथन से स्पष्ट होता है। जैसे बाण से सुगतभद्र का कहना है "राजदण्ड कठिन होता है वत्स। तूने साहस का काम किया है।"[2] राज्य की दंड व्यवस्था का सामना करने की शक्ति जनता में नहीं थी इसलिए जनता राजदंड से भयभीत रहती थी।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक में भट्टिनी और निपुणिका जैसे दो स्त्री-चरित्रों के माध्यम से स्त्री-मुक्ति की नई परिभाषा प्रस्तुत की गयी है। नाटक में वर्णित घटनाओं का कार्य काल ईसवीं सन् की छठी शताब्दी है। उस समय स्त्री केवल उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। उसे जबरन अपहृत किया जाता था। पशुओं की तरह खरीदा-बेचा जाता था। उनकी हैसियत दासी से अधिक नहीं थी। भट्टिनी उसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह किसी मामूली व्यक्ति की बेटी, बहन या पुत्री नहीं है। वह सम्राट तुअर मिलिन्द की कन्या है यानी एक सम्राट की पुत्री भी उस समाज में सुरक्षित नहीं थी। बाण के समय में स्त्री पर अत्याचार दस्यु और सामंत करते थे लेकिन आधुनिक समय में समूचा पुरुष मेधावी समाज सामंती मानसिकता में बँधा हुआ महसूस होता है।

---

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 194-195
2. वही - पृ.सं. 153

भट्टिनी एक अपहृत युवती है। राजकुल से संबन्धित होते हुए भी उसका जीवन पतित नारियों के साथ बीत आया है। अतः भट्टिनी कहती है, "जिस दिन नगरहार के मार्ग में दस्युओं ने इस अभागे शरीर का स्पर्श किया उस दिन तक मुझे देवपुत्र की कन्या होने का अभिमान था। पूरे एक महीने अपने पिता का नाम ले लेकर रोती रही। बाद में मुझमें से वो अभिमान चला गया। आज भगवान की बनाई और लाखों कन्याओं की भाँति मैं भी एक मनुष्य कन्या हूँ। वैसी ही प्रताडित, अपमानित, शोषित, कलंकित सामान्य नारी।"[1] भट्टिनी एक स्त्री, निपुणिका की मदद और बाणभट्ट के साहस के कारण मुश्किलों से बची रहती है। भट्टिनी के बारे में बाणभट्ट के शब्द अत्यन्त मार्मिक है - "कौन कहता है देवी, कि आप कलंकित सामान्य नारी हैं? पार्वती के समान निर्मल अंतःकरण, गंगा के समान पावन विचारधारा, कैलाश के समान शुभ्र चरित्र और मानसरोवर के समान विशाल हृदय हैं आप। देवी स्यारों के स्पर्श से सिंह किशोरी कलुषित नहीं होती। असुरों के गृह में जाने से लक्ष्मी घर्षिता नहीं होती। चींटियों के स्पर्श से कामधेनु अपमानित नहीं होती।"[2] भट्टिनी नारी जीवन की महानता को बाणभट्ट के कारण समझने लगती है। वह बाण से कहती है - "भट्ट, मैं देवी नहीं हूँ। हाड़-माँस की नारी हूँ। मैं विघ्नस्वरूपा हूँ, परन्तु मैं जानती हूँ मेरा विघ्नस्वरूपा होना ही विश्व का परित्राण है। तुम्हारे कारण ही मुझे ये ज्ञान प्राप्त हुआ है। मैं चन्द्रदीधिति है - सौ-सौ बालिकाओं के समान एक सामान्य नारी।"[3] नाटक में भट्टिनी के चरित्र उसके प्रेम, त्याग और बलिदान के कारण महान बन पड़ा है।

---

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 166
2. वही - पृ.सं. 166
3. वही - पृ.सं. 178

निपुणिका 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की सर्वश्रेष्ठ नारी पात्र है। समूचा नाटक उसके चरित्र से प्रभावित है। निपुणिका ने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। उसने अपना सब कुछ भट्टिनी को समर्पित कर दिया है। उसने अपने जीवन में जो कुछ चाहा, जो कुछ सोचा, उसे वह प्राप्त न कर सकी। उसका व्यक्तित्व आदि से अन्त तक शोकाकुल है।

नाटक के नारी पात्रों में महामाया सामाजिक विषमता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अन्य नारियों की तुलना में महामाया में यह अंतर है कि अन्य नारियों का उद्धार बाणभट्ट के द्वारा होता है, लेकिन महामाया अपना उद्धार स्वयं करती है। महामाया अवधूत मत में दीक्षित सन्यासिनी है। इससे पूर्व वह गृहलक्ष्मी थी। वह गृहस्थ जीवन छोडकर विराग की उच्च भूमि पर पहूँच गई थी। उसका चरित्र नारी जाति की अन्तः पीडा का द्योतक है। महामाया भैरवी जीवन भर रोती है। उसकी पीडा इन शब्दों में उजागर होती है - "इस उत्तरापथ में लाख-लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नहीं चल रहा है?"[1] वह सीधे पुरुष समाज को स्तब्ध करते हुए कहती है - "मैं तुम्हारे देश की लाख-लाख अपमानित, लांछित और दंडित बेटियों में से एक है। और इस घृणित व्यवसाय का प्रधान आश्रय सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर है? आपमें से किसे नहीं मालूम कि महाराजाधिराज की चामरधारिणियाँ और करकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगाई हुई, खरीदी हुई कन्याएँ हैं? क्या इन अभागिनियों के पिता नहीं थे? क्या वे अपनी माओं की नयनताराएँ नहीं थीं?"[2] उसके ये जलते हुए शब्द एक स्त्री के आँसू है। वह पुरुषों की उस मानसिकता को कटघरे में खडा करती है जो स्त्री को साथी भाव से नहीं देखती बल्कि निम्न श्रेणी की दासी के रूप में प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

---

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 183
2. वही - पृ.सं. 183

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में पात्रों की अधिकता है। उपन्यास के सारे पात्रों को नाटक में प्रस्तुत करना थोडा मुश्किल है। इसलिए नाटक में बाणभट्ट, भट्टिनी, निपुणिका, महामाया, कृष्णवर्धन, सुत भद्र, लोरिक देव जैसे मुख्य पात्रों को ही उभारा गया है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक में नायक तो स्वयं बाणभट्ट ही है। वह एक ऐसा व्यक्ति है जो भीड में रहते हुए भी अकेला है। नाटक में बाणभट्ट का कथन इसका उल्लेख करता है - "यद्यपि बाणभट्ट नाम से मेरी प्रसिद्धि है; पर यह मेरा वास्तविक नाम नहीं। मेरा निरंतर यही प्रयास रहा कि लोग इस इतिहास को न जानें, किन्तु अब इसे और अधिक छुपाना संभव नहीं। ....मैं जन्म का आवारा, गप्पी, चंचल मन और घुमक्कड़। मेरा असली नाम दक्ष भट्ट है। घर से भाग कर बरसों मारा-मारा फिरा, इस भटकन में मैंने कौन-सा कर्म नहीं किया। कभी नट बना, कभी पुतलियों का नाच दिखाया, कभी नाट्य मंडली बनाई और कभी पुराण वाचक बनकर जनपदों को धोखा दिया। आवारा अवश्य था मैं, पर लंपट कदापि नहीं।"[1] बाणभट्ट के चरित्र से यह तथ्य सामने आता है कि सुसंस्कृत व्यक्ति नियम को मानकर नहीं चलता बल्कि नियम भीतर से विस्तृत होते हैं।

बाणभट्ट नारी का सम्मान करता है। वह स्त्री को लेकर सामंतीय नज़रिया नहीं रखता। वह उसके प्रति खिंचाव या लगाव महसूस करता है। स्त्री शरीर उसके लिए देव मंदिर है। नाटक में बाणभट्ट का कहना है "साधारणतः लोग जिस उचित-अनुचित के बँधे रास्ते से सोचते हैं, मैं उसे नहीं सोचता। मैं अपनी बुद्धि से उचित-अनुचित की विवेचना करता हूँ। मैं स्त्री-शरीर को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।"[2] यह एक बडा मानवीय

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 141
2. वही - पृ.सं. 145

मूल्य है। बाण के मन में स्त्री को लेकर सच्चे सम्मान की संवेदना मौजूद है। नाटक में बाण के इसी चरित्र को प्रभावशाली ढंग से पेश करने का प्रयास हुआ है। नाटक में बाणभट्ट-1 और बाणभट्ट-2 की परिकल्पना की गयी है। कभी-कभी ये दोनों सूत्रधार की भूमिका भी अदा करते हैं।

संवाद योजना पर विचार करे तो उपन्यास के बडे-बडे संवादों को नाटक में छोटा कर दिया है ताकि ज़्यादा प्रभावशाली लगे। उदाहरण के लिए-

“बाणभट्ट-2 : मेरा अपराध क्षमा करे आर्य?

बाबा : तूने कोई अपराध किया है रे?”[1]

नाटक में बाणभट्ट - निपुणिका, बाण - भट्टिनी, महामाया - भट्टिनी, बाण - कृष्णवर्धन आदि के संवाद भाषा की संप्रेषणीयता को सहज बना लेती है। जैसे नाटक में अघोरभैरव बाणभट्ट से कुछ प्रश्न करते हैं। इस प्रश्नोत्तर में बाणभट्ट के लिए जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वे संवाद के स्वाद को और बढा देते हैं-

बाबा : ब्राह्मण है?

बाणभट्ट : हाँ आर्य।

बाबा : तेरी जाति ही डरपोक है। क्यों रे, आत्मा को नित्य मानता है

बाणभट्ट : मानता हूँ आर्य।

बाबा : पाखंडी। तेरे सब शास्त्र पाखंड सिखाते हैं।”[2]

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 161
2. वही - पृ.सं. 160

'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक अपनी भाषा के लिए चर्चित रहा है। इसकी भाषा शुद्ध संस्कृत निष्ठ है। सशक्तता और सजीवता भाषा में सर्वत्र दिखाई देती है। एक उदाहरण देखिए जिसमें भाषा सशक्त एवं संस्कृतनिष्ठ है-

"बाणभट्ट-1 : आर्य स्थाणवीश्वर के राजवंश ने चन्द्रदीधिति जैसी कुमारियों को अपमानित करनेवाले छोटे राजकुल को प्रश्र्य देकर स्वयं को पूज्य-पूजा के अयोग्य सिद्ध किया है।"[1]

नाटक में अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी यत्र तत्र हुआ है। अरबी के फुटसत, शामिल, लायक, सिवा, बेतरह था फारसी के होश, बेकार, बेहोश, परवाह आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अर्थात 'आत्मकथा' में भाषा अनेक अर्थछवियों से संपन्न और व्यंजनाओं से भरपूर है। इसके अलावा नाटक में 'नयनतारा', 'आँख दिखाना', 'गांठ बाँध लो', 'उबल पड़ना', 'काठ मारना' आदि मुहावरों तथा 'दूधों नहाओ पूतो फलो', 'दूध का जला मठ्ठा भी फूँककर पीता है जैसे लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुए हैं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में अध्यायों को 'उच्छवास' नाम दिया गया है, इसमें कुल मिलाकर बीस उच्छवास है। नाटक में मुख्यतः दस दृश्य है। कथ्य संदर्भों के उतार-चढाव व गंभीरता को दर्शाने के लिए प्रत्येक दृश्य के अंत में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से प्रचण्ड संगति, शात और मनोहारी संगीत का प्रयोग हुआ है। बीच-बीच में श्लोक की ध्वनि, पक्षियों के उड जाने का स्वर, तूफान का स्वर, मंत्र का स्वर आदि भी सुनाई पडते हैं।

---

1. अमिताभ श्रीवास्तव - बाणभट्ट की आत्मकथा - पृ.सं. 157

'बाणभट्ट की आत्मकथा' नाटक मुक्ताकाशी रंगमंच पर संपन्न हुआ है। मंच को दो-तीन भागों में बाँट दिया गया है। जिसमें भट्टिनी की शिविका, कुमार कृष्णवर्धन का घर, आदि प्रमुख है। एक स्थान पर निर्देशक ने यह संकेत दिया है कि "संभव हो तो मंच के पीछे की तरफ भट्टिनी और निपुणिका की तूफान में डूबती डगमगाती नाव का दृश्य भी अभिनीत किया जा सकता है। क्योंकि मंच पर प्रत्यक्ष रूप से ऐसे दृश्यों को उभारना नामुमकिन है।

4.7 दिव्या - यशपाल

यशपाल हिन्दी के प्रमुख मार्क्सवादी लेखक हैं। बहुचर्चित तथा अनेक भाषाओं में अनूदित यशपाल कृत 'दिव्या' हिन्दी उपन्यास की अविस्मरणीय घटना रही है। यह एक काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास है। यशपाल जी ने इसे मार्क्सवादी दृष्टि से लिखा है। दिव्या का कथानक बौद्धकाल की घटनाओं पर आधारित है। इस युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का कुछ ऐसा सजीव चित्रण इन्होंने किया है कि सब कुछ काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ सा प्रतीत होता है।

'दिव्या' की कहानी बहुत सीधी सादी है। यह दिव्या और पृथुसेन के प्रेम और विरह की पीडा की कहानी है। पृथुसेन से कुमारी दिव्या को गर्भवती हो जाना दिव्या के बजाय प्रथुसेन द्वारा सीरो से विवाह करना, दिव्या की अवैध संतान होने, उसका भाग जाने, अनेक संकटों से जूझने की कहानी है। यशपाल जी ने दिव्या की मार्मिक कथा के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त आचार-विचार, रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति का यथार्थ एवं जीवंत चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। अर्थात् इस उपन्यास में युग-युग की उस दलित पीडित नारी की करुण कथा है, जो अनेकानेक संघर्ष से गुज़रती हुई अपना

स्वस्थ मार्ग पहचान लेती है। जिस बौद्धकालीन रूढियों और धर्म के कठोर नियमों ने दिव्या को ठुकराया था उसी दिव्या द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण वाले मारिश का वरण करवाकर यशपाल ने आधुनिक नारी के स्वतंत्र विचार का समर्थन किया है। नारी के अस्तित्व की पहचान की समस्या का मार्मिक निरूपण भी यशपाल ने दिव्या के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

दिव्या में मारिश यशपाल का प्रतिनिधि है। उसकी सोच आज के स्त्री विमर्श के निकट है। यशपाल द्वारा समाज पर, समाज के श्रेणीगत विभाजन पर, सत्ता-व्यवस्था पर तथा सबसे अधिक स्त्री प्रश्नों पर विचार किया गया है। 'दिव्या' के सारे पात्र होड-मौस के इंसान है जो भौतिक जीवन की मीठी-कडवी वास्तविकताओं से, जूझते हुए मानव जगत की अमूर्त प्रस्थापनाओं की विवेचना करते हैं। उपन्यास में कला, संगीत, न्याय, दर्शन जैसे भारतीय संस्कृति के मूल्यवान अंगों का सफलतापूर्वक निरूपण किया गया है। साथ ही साथ वर्ण व्यवस्था, दास प्रथा, धार्मिक रूढियाँ, नारी अस्मिता, नारी की पराधीनता, नारी स्वातंत्र्य की अनैतिकता आदि पर कठोर प्रहार भी किया गया है।

4.8 दिव्या का नाट्यरूपान्तर

'दिव्या' उपन्यास अपने अनेकानेक आयामों के कारण एक कालातीत रचना है। ऐसी एक कालातीत रचना को नाट्यरूप देकर दर्शकों के सामने प्रस्तुत करना गौरव की बात है। यशपाल जी के उपन्यास 'दिव्या' को मीराकांत जी ने 'पुनरपि दिव्या' नाम से रूपान्तरित किया है। उपन्यास के सारे के सारे घटनाओं को अर्थात, चाहे नारी शोषण हो, नारी स्वतंत्रता हो, वर्ण व्यवस्था हो, कुटिल राजनीति हो, दासप्रथा हो उसे नाटक में हू-ब-हू पेश करने का प्रयास रूपान्तरकार ने बखूबी निभाया है। नाटक में सूत्रधार शैली का अनुवर्तन करते हुए मीराकांत जी ने दो मौलिक पात्रों की कल्पना की है - वामनदेव और

नागदंत। मीराकांत जी के शब्दों में "टुकडों में बँटे हुए समाज को हम किसी भी संघर्ष के नाम से जाने या पहचानें, वंचित लोगों की पीडा, उनका आर्तनाद हर युग में सुना जाना चाहिए। नाटक 'दिव्या' में लिये गये उपन्यास के मूल पात्रों के साथ सूत्रधार शैली में जिन दो पात्रों (वामनदेव और नागदंत) की कल्पना की गयी है, वे वस्तुतः उस युग की धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों की जीवंत उपस्थिति है। कुलमिलाकर यह रूपान्तरण उस युग के स्त्री विमर्श और दलित विमर्श की प्रतिध्वनि की एक विनम्र नाट्य प्रस्तुति है।"[1] उपन्यास के समान नायिका प्रधान इस नाटक में स्त्री जीवन के वे संदर्भ आद्यन्त फैले हुए हैं जो हमारे समाज के यथार्थ की पहचान कराते हैं।

सामंती समाज में तथा वर्गबद्ध व्यवस्थाओं में नारी कभी स्वतंत्र नहीं रही। वह सदैव शोषित एवं प्रताडित रही है यही सच 'दिव्या' उपन्यास के मूल में है। इसी सच्चाई को उपन्यास के समान नाटक भी हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जैसे पृथुसेन के पिता प्रेस्थ के शब्दों में पुरुष के अहं और प्रभुत्व की झलक देखने को मिलता है। नाटक में प्रस्थ का कहना है "पुत्र, देवताओं ने प्रसन्न होकर तुम्हें विद्या, कौशल, धन और रण में विजय का सम्मान दिया है.... समय पर वे तुम्हें स्त्री सुख देने में भी कृपणता न करेंगे। एक दिव्या क्या, अनेक लावण्यमयी, कलामयी ललनाएँ तुम्हारे भोग के लिए प्रस्तुत होगी। ....पुत्र स्त्री जीवन की पूर्ति नहीं... जीवन की पूर्ति का साधन मात्र है। ....महापंडित चाणक्य ने कहा है, स्त्री भोग्या है।"[2] पृथुसेन दिव्या को भोगता है और कुलीन बन जाता है। वह अर्थ और सत्ता पर काबिज होता है और सीरो को भोगता है। यही पुरुष प्रधान समाज की कुलीनता और नैतिकता का तकाजा है। इसे उपन्यास के समान नाटक में भी सशक्त रूप में उठाया गया है।

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या, भूमिका
2. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 40

सामंती व्यवस्था में सत्ता और धन के बल पर नारी हमेशा शोषित रहती है। उपन्यास से ज्यादा नाटक में इस मुद्दे को काफी जोर दिया है। नाटक में दिव्या कहती है "नारी है क्या? कठोर धीर रुद्रधीर, कोमल पृथुसेन, अभद्र मारिश और माताल सैनिक नारी के सब समान है। नारी भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है। .....वह सब नारी के जीवन की सार्थकता अवश्य है.... परन्तु उस सार्थकता को नारी अपने अस्तित्व के मूल्य में पाती है, केवल पुरुष की भोग्या बनकर। ....परन्तु पुरुष के प्रश्रय में नारी के जीवन की सार्थकता क्या है..... पुरुष द्वारा उसका उपभोग।"[1] दिव्या के इस कथन सामंती व्यवस्था में नारी के भोग्या रूप की सच्चाई व्यक्त करती है।

धर्म की दृष्टि से भी नारी स्वतंत्र नहीं है। केवल वेश्या स्वतंत्र नारी है। उपन्यास के इस मुद्दे को नाटक में बहुत ही सशक्त ढंग से उभारने की कोशिश रूपान्तरकार की ओर से हुई है। वेश्या स्वतंत्र नारी है, यह वचन सुनकर दिव्या में जो क्रांतिकारी विचार जाग उठा है जिसे नाटक में बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। जैसे नाटक में दिव्या कहती है "वेश्या स्वतंत्र नारी है.... परन्तु मैं.... परतंत्र होने के कारण मेरे लिए कहीं शरण नहीं। दासी होकर मैं परतंत्र हो गयी। अपने शाकुल को पा सकने की स्वतंत्रता के लिए ही मैंने दासत्व स्वीकार किया। ....अपना शरीर बेचकर इच्छा को स्वतंत्र रखना चाहा परन्तु स्वतंत्रता.... स्वतंत्रता मिली कहाँ? केवल वेश्या स्वतंत्र है। अब मैं.... अपनी संतान के लिए स्वतंत्र होऊँगी.... मुझे स्वतंत्र होना है.... मैं वेश्या बनूँगी।"[2] दिव्या किसी न किसी तौर पर स्वतंत्रता चाहती है, उसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है।

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 43
2. वही - पृ.सं. 47

उपन्यास के समान नाटक में भी नारी मुक्ति संघर्ष को प्रमुखता दिये हैं। दिव्या सामंती व्यवस्था को अपनी अस्मिता के लिए चुनौती देती है। नारी मुक्ति के लिए संघर्ष करती है। इस संघर्ष में वह प्रेमी, कुल विद्रोहिणी, वेश्या, दासी और नर्तकी बनती है। नाटक में दिव्या का स्वगत है "प्रत्येक नाम एक नया संसार देता है। पहले दिव्या, तत्पश्चात दारा और अंशुमाला। दारा ने भूख से बिलखता शाकुल को खोया.... अंशुमाला नाम न जाने व्यथा के किस गर्त में ले जायेगा।"[1] दिव्या का यह कथन मीराकांत जी के मौलिक उद्‌भावना ही है जो नाटक को सशक्त बना दिया है। दिव्या स्वाभिमानी है। वह बौद्धिक रूप से दृढ़ एवं प्रबल थी। उसके विचार में नारी जीवन की सार्थकता कर्म में ही निहित है। पुरुष प्रधान समाज ने उसे वेश्या बनने के लिए विवश कर दिया है। लेकिन वह स्वतंत्र जीवन की अधिकारी बन जाती है और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी।

उपन्यास के समान नाटक में भी मारिश का चरित्र महत्वपूर्ण है। मारिश नाटक का महानायक बनकर उभरता है। वह नारी को न तो कुलवधू, कुलमाता, कुल महादेवी कहकर पुरुष की भोग्या बनाना चाहता है, न उस धर्म की शरण की बात करता है जहाँ नारी त्याज्य है, वेश्या को स्वतंत्र नारी समझी जाती है। वह नारी को 'भोग्या' नहीं मानता बल्कि उसके समक्ष अपने पुरुषत्व का अर्पण करता है।

उपन्यास के समान नाटक 'दिव्या' में भी दास प्रथा के विभिन्न स्तरों को देख सकते हैं। पृथुसेन दासपुत्र होने के कारण लगातार जलता रहता है। बडे-बडे विवेकवान भी यह सहन नहीं कर पाते कि बलशाली, शस्त्रों के प्रयोग में निष्णात पृथुसेन सेना पद पाए। इसके संबद्ध में प्रबुद्ध शर्मा का कथन है "पृथुसेन का सेना में पद पाना सामन्त के आसन

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 49

पर पहली पीढ़ी पर पाँव जमाना है। यदि प्रत्येक कुल, सामन्त कुल का पद और अधिकार प्राप्त कर सके तो आभिजात कुल का अधिकार क्या रहेगा?"[1] पृथुसेन को सेना में इसलिए पद नहीं मिला क्योंकि इससे उसका वर्ग बदल जाएगा। वह सामंती समाज का सदस्य हो जाएगा। दासपुत्र होने के कारण अभिजात कुल के युवकों के साथ कंधा देने का अधिकार भी उसे नहीं है।

वर्णाश्रम व्यवस्था की नींव बहुत गहरी है। यह व्यवस्था कितना निर्मम है इसका दृष्टान्त पृथुसेन के स्वगत में पायी जाती है - "जन्म का अपराध? यदि वह अपराध है तो उसका मार्जन किस प्रकार है? शस्त्र की शक्ति, धन की शक्ति, विद्या की शक्ति, कोई भी शक्ति जनम को परिवर्तित नहीं कर सकती। हीन कहे जानेवाले कुल में मेरा जन्म अपराध है अथवा यह द्विज कुल में जन्मे अपदार्थ लोगों का अहंकार मात्र है।"[2] तमाम भौतिक और वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भी वर्णाश्रम व्यवस्था आज भी हमारे समाज में खुलेआम बरकरार है।

'दिव्या' उपन्यास में यशपाल जी ने बहुत सारे पात्रों को ऐतिहासिक कल्पना के साथ जोड़ दिया है। उपन्यास में पात्रों की अधिकता है। नाटक में मीराकांत जी ने मुख्य पात्र जैसे दिव्या, पृथुसेन, मारिश, प्रेस्थ, रुद्रधीर, मातुल, रत्नप्रभा आदि को ही उभारा है। मिथ्रोदस, छाया, आयुष्मान सवृद, शाण्डेय, बलजीत, चक्रधीर, गणपति जैसे गौण पात्रों को नाटक में छोड दिये हैं। इसमें नायिका 'दिव्या' का चरित्र बहुत ही महत्वपूर्ण है। दिव्या युग-युग से प्रताडित नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है। द्विजकन्या दिव्या पंडित देवशर्मा की

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 11
2. वही - पृ.सं. 21

प्रपौत्री है। वह स्वतंत्रता चेतना से युक्त आत्मनिर्भर एवं तेजस्विनी नारी है। वह नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता के लिए धर्म, समाज और नैतिक विधान की निरंकुशता और अमानवीयता के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करती है। वह दिव्या से दासी 'दारा' बन जाती है। मथुरा की नर्तकी रत्नप्रभा ने उसे दारा से अंशुमाला बना देती है।

उपन्यास 'दिव्या' में दीर्घ संवाद का प्रयोग ज्यादाधिक हुआ है। इसलिए नाटक की संवाद शैली में नाटककार बहुत सारा बदलाव लायी है। नाटक में छोटे-छोटे संवादों को रखा गया है। जैसे दिव्या पूछती है "भिक्षु के धर्म में नारी का स्थान क्या है?"[1] संवाद योजना इतनी तीखी है कि समाज के प्रत्येक संदर्भ इसके अंतर्गत आते हैं। दिव्या के शब्दों में "आचार्य कुलमाता और कुलमहादेवी का सम्मान आर्य पुरुष का प्रश्रय मात्र है। यह नारी का सम्मान नही, उसे भोग करनेवाले पराक्रमी पुरुष का सम्मान है। ....दासी हीन होकर भी आत्मनिर्भर रहेगी। स्वत्वहीन होकर जीवित नहीं रहेगी।"[2] दिव्या का यह कथन वस्तुतः सामन्ती व्यवस्था और धर्मसत्ता के विरुद्ध विद्रोह की ओर संकेत करता है। नाटक में पृथुसेन और सीरो के बीच के संवाद को छोड दिया गया है। इसके बदले उसकी उपस्थिति नेपथ्य स्वरों से प्रस्तुत की गयी है।

अतीत के रूप रंग की रक्षा के लिए उपन्यास में कुछ असाधारण भाषा और शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों की अर्थसहित तालिका उपन्यास के अंत में दे दी गयी है। लेकिन नाटक में ऐसी छूट नहीं है, नाटक दृश्य-श्रव्य माध्यम है उसका लक्ष्य जनता को सचेत करना है। इसके लिए सरल एवं सुव्यवस्थित भाषा ही काम आएगा। जैसे नाटक में

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 66
2. वही - पृ.सं. 55

मारिश का कथन है "भद्रे, जीवन का कोई अनुभव स्थायी नहीं। जीवन की स्थिति समय में है और समय प्रवाह है। जीवन के प्रवाह में अप्रिय अनुभव आया हो, इसलिए इस प्रवाह से विरक्त हो जाना उचित नहीं।"[1] पृथुसेन के एक-एक शब्दों में दास-व्यवस्था के प्रति उनका प्रतिशोध व्यक्त होता है। जैसे पृथुसेन का कहना है "अपमान की मृत्यु वेदना सहकर भी मैं केवल इसी आशा से जीवित हूँ कि किसी दिन, कुल, वर्ण और अपने इस अपमान का प्रतिशोध ले सकूँगा।"[2] भाषा की गंभीरता एवं प्रवाहमयता से नाटक सार्थक बन गया है।

'दिव्या' उपन्यास मुख्यतः तेरह भागों में विभाजित है - मधुपर्व, धर्मस्थ का प्रासाद, प्रेस्थ, आचार्य प्रवर्धन, आत्म समर्पण, विकट वास्तव, तात धर्मस्थ, दारा, अंशुमाला, सागल, पृथुसेन और रुद्रधीर, मल्लिका और अंत में दिव्या। लेकिन नाटक में इस प्रकार एक-एक कथा तंतुओं को प्रस्तुत करना नामुमकिन है। इसलिए उपन्यास की मुख्य कथा को 13 दृश्यों में विभाजित किया गया है। उपन्यास में मधुपर्व का दृश्य जितना फैला हुआ है उसे मंच पर प्रस्तुत करना कठिन है। इसलिए नेपथ्य से नृत्य, संगीत, मंगल वाद्य, शंखनाद आदि के द्वारा याने प्रयोगों के द्वारा इस दृश्य को ज्यादा प्रभावशाली बनाया गया।

'पुनरपि दिव्या' नाटक यथार्थवादी रंगमंच पर संपन्न हुआ। 'दिव्या' नाटक में मंच का पूरा का पूरा सदुपयोग किया गया है। बौद्धकालीन वेशभूषा एवं वातावरण को बनाए रखने में नाटक सफल निकला है। मंच में बौद्ध विहार, धर्मस्थल का प्रासाद, रत्नप्रभा का भवन आदि को मंचीय उपकरण के साथ प्रस्तुत किये गये हैं।

---

1. मीराकांत - पुनरपि दिव्या - पृ.सं. 55
2. वही - पृ.सं. 31

4.9 सुहाग के नूपुर - अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागर प्रेमचन्द परंपरा की मजबूत कडी है। उनकी कीर्ति का मुख्य आधार उपन्यास साहित्य है। उन्होंने पौराणिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भारत के अनेक अछूते प्रसंगों को लेकर प्रमुख उपन्यासों का प्रणयन किया है। उनमें से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है 'सुहाग के नूपुर'। ईसा की प्रथम शताब्दी में महाकवि इलंगोवन रचित तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' भारतीय साहित्य की एक अनमोल रचना है। प्रस्तुत उपन्यास उक्त महाकाव्य की कथावस्तु पर आधारित हिन्दी की पहली कृति है। जिसमें दक्षिण भारत के ऐतिहासिक जीवन का विस्तृत एवं विश्वसनीय चित्रण हुआ है। 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास लिखने से पूर्व अमृतलाल नागर जी ने सन् 1952 में महर्षि इलंगोवन की रचना 'शिलप्पदिकारम्' पर आधारित 'सुहाग के नूपुर' नाम से एक रेडियो नाटक लिखा था। आकाशवाणी के अनेक केन्द्रों से वह प्रसारित भी हुआ था। फिर 'धर्मयुग' पत्रिका के संपादक श्री सत्यकाम विद्यालंकार जी के आग्रह पर नागर जी ने उसे उपन्यास का रूप दिया।

'सुहाग के नूपुर' में एक त्रिकोण प्रेम के माध्यम से सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक संघर्षों, संस्कृति और कला के विविध रूपों का सांगोपांग चित्रण किया गया है। कोवलन नगर के सर्वाधिक धनी व्यापारी मासान्तुवान का पुत्र है। नगर के दूसरे प्रमुख धनिक, प्रतिष्ठित व्यापारी मानाइहन की पुत्री 'कन्नगी' से उसका विवाह निश्चित हुआ था। किन्तु वह विवाह पूर्व ही राज्य की ओर से प्रतिष्ठित नृत्यकुशल नगरवधू माधवी के आकर्षण पाश में बँध चुका था। विवाहोपरान्त वह अपनी पत्नी के प्रति निरासक्त होकर उसका अपमान करने लगता है। माधवी वेश्या होने पर भी अपने प्रेम द्वारा समाज में पत्नी

के पद पर आसीन होना चाहती है। किन्तु सत्ताधारी पुरुष उसे कुलवधु का स्थान देने के लिए तैयार नहीं हो जाता है। माधवी के ज़रिए नागरजी ने पूँजीवादी शोषण से उत्पन्न नारी मन की पीडा को मुखरित किया है। इसलिए उसने स्थान-स्थान पर उसकी व्यथा को सामान्यीकृत धरातल पर रखा है। नागरत्ना, पेरियनायकी और चेल्लमा सभी ऐसी नारियाँ है जिन्हें वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए बाध्य होना पडा। कन्नगी द्वारा कुलवधू की व्यथा कथा को भी उपन्यास में स्थान मिला है। नागर जी ने उपन्यास में वेश्या नारी के जीवन के करुण संदर्भों को पूरी संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ कुलवधू की दुःखमय जीवन स्थितियों को भी पूरी ईमानदारी के साथ जोड दिया है। वस्तुतः समूचे उपन्यास में वेश्या या कुलवधू की पीडा के माध्यम से नागरजी ने सामाजिक व्यवस्था में कराहती और न्याय की उचित माँग करती हुई नारी की करुण कथा कही है। इस उपन्यास के ज़रिए नागर जी का मुख्य उद्देश्य समाज व्यवस्था के अन्तर्गत नारी के उचित अधिकारों की माँग रहा है। क्योंकि इनका प्रतिपाद्य वेश्या बनाम कुलवधू की पीडा ऐसा सामाजिक विषय है कि यह जितना पुराना है उतना ही नया भी है।

4.10 सुहाग के नूपुर - नाट्यरूपान्तर

अमृतलाल नागर के 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास को डॉ. शैलकुमारी जी ने उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। इसके नाट्यरूपान्तर के संबद्ध में शैलकुमारी जी का कहना है "सन् 1994 में मिराण्डा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय की हिन्दी नाट्य समिति के वार्षिकोत्सव पर जब एक पूर्णकालिक नाटक की प्रस्तुति का प्रश्न सामने आया तो 'सुहाग के नूपुर' (उपन्यास) को ही चुना गया और विद्यालय की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए इस उपन्यास के एक नए नाट्यरूपान्तर का भार मुझे सौंपा गया। इस नाट्यरूपान्तर में

विशेष रूप से इस बात का ध्यान रखा गया है कि महर्षि इलंगोवन की 'शिल्पदिकारम' की कथा के आधार पर दक्षिण भारत में कन्नगी, माधवी और कोवलन की जो छवि बनी हुई है, वह धूमिल न हो पाए।"[1] नाट्यरूपान्तर में संपूर्ण उपन्यास को न लेकर केवल कोवलन के प्रति वारवधु माधवी और कुलवधू कन्नगी के अनंत प्रेम और प्रेम की मर्मांतक पीडा को ही रखा गया है। माधवी वारवधू होते हुए भी कोवलन से एकनिष्ठ प्रेम करती है और समाज में अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए कुलवधू कन्नगी के पैरों के सुहाग के नूपुर धारण करना चाहती है। कोवलन माधवी में आसक्त होते हुए भी अपनी पत्नी कन्नगी के प्रति प्रेम तथा कुल परंपरा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर माधवी को सुहाग के नूपुर नहीं दे पाता। पात्रों के इसी द्वन्द्व और तनाव को सामने लाने के लिए नाट्यरूपान्तर में उपन्यास के अनेक अंशों का केवल संकेत करके उसे छोड़ दिया गया है।

'सुहग के नूपुर' नाटक की प्रमुख समस्या है वेश्या समस्या। नाटक में नगरवधू माधवी के द्वारा इस समस्या का उद्घाटन किया है। माधवी ऐसी वेश्याओं की श्रेणी में आती है जो न चाहते हुए भी वेश्या बन गई है। फिर भी उसने अपनी एकनिष्ठ प्रेम के द्वारा कुलवधू कन्नगी के नूपुरों को पाने की अदम्य इच्छा प्रकट करती है। नाटक में पेरियनायकी उसे समझाती है "ऐसा होने पर भी कोवलन तुम्हारे पैरों में 'सुहाग के नूपुर' तो नहीं डालेगा, वह तो उसकी पत्नी को ही मिलेंगे। ....तू भले ही अपने पूरे सतीत्व के साथ उससे प्रेम क्यों न कर ले, वह कभी भी हम वारवधुओं को कुलवधुओं जैसा सम्मान तो नहीं देगा। ....हम वारवधू हैं, हमें वारवधू जैसा ही आचरण करना चाहिए।"[2] वेश्या कितनी भी भली हो, कितनी भी सही ढंग से जीवन बिताती हो, लेकिन बेझीकुल में जन्म लेने के कारण उसे

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर, भूमिका
2. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 24

आजन्म वेश्या ही बनकर रहना पडता है। "वेश्या की स्थिति एक बलि के बकरे जैसी है। पुरुष उसके साथ व्यभिचार करता है और फिर उसे बहिष्कृत कर देता है। वेश्या चाहे वैध रूप से पुलिस की देख-रेख में काम करे या छिपकर, उसे हमेशा अछूत की तरह ही देखा जाता है।"[1] यदि समाज वेश्या को नहीं चाहेगा तो ज़रूर वेश्या का जन्म नहीं होगा।

नारी केवल उपभोग की वस्तु है या एक बिकाऊ माल है इसी विचार ही वास्तव में वेश्या जीवन को समाज में पनपने का कारक मान सकते हैं। नाटक में इस मुद्दे को काफी ज़ोर दिया गया है। इस संदर्भ में माधवी का यह कथन विचारणीय है - "पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग नारी जाति पीडित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर। इसी कारण वह स्वयं भी झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है।"[2] पर समाज नारी की इस पीडा के प्रति मौन है।

प्रकृति से मानवी के सारे गुण पाकर भी समाज के अधिकारों से वंचित माधवी की संतान किसी कुलीन का कुल्दीपक नहीं बन सकती। इस कठोर सत्य माधवी को नृशंसता पर उतार देता है। वह कोवलन से पूछती है "मैं भी किसी कुलवधू से कम नहीं.... अपनी आत्मा को प्रमाण मानकर मैं कह सकती हूँ कि देवी कन्नगी के समान ही मेरा जन्म भी किसी उच्चकुल में हुआ लेकिन नियति के हाथों पडकर मैं अम्मा पेरियनायकी तक पहूच गई..... पर इस वातावरण में रहकर भी मैं उसमें ढल न सकी.... अब क्या तुम और

1. राजेन्द्र यादव - आदमी की निगाह में औरत - पृ.सं. 252
2. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 51

तुम्हारा समाज, सब मिलकर मेरी बेटी को वारवधू बना दोगे?..... मैं जानती हूँ। समाज में ऐसा कोई नहीं है जो मेरी पीडा को समझ सके। सबकी संवेदना तो कुलीन वर्ग के साथ है।"[1] समाज सती होने पर भी वेश्या को वेश्या ही मानेगी इस तथ्य पर नाटक करारा चोट करता है।

पीडित नारी की व्यथा को उसके प्रतिरोध को रूपान्तरकार ने सशक्त रूप से नाटक में प्रस्तुत किया है। नाटक में माधवी को कोवलन अपने ही घर से ठोकर मारकर बाहर निकाल देती है। वह चीखकर कहती है "मत लो नाम मेरा। मैं पहचान गई, तुमको, तुम जैसी कुलीनों को....। तुम लोक के समक्ष मेरे प्रेम की मर्यादा नहीं सिद्ध कर सकते। मणि के पिता होकर भी उसका सम्मान नहीं दिला सकते..... तुम्हें मेरी पीडा क्यों समझ में आएगी। समाज में निंदा का पात्र तो मैं हूँ। सारा व्यंग्य तो मुझे झेलना पडता है।.... मेरी बेटी बडी हो रही है, मैं नहीं चाहती कि यही अपमान उसे झेलना पड़े। घृणा है मुझे तुमसे.... मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं, जाओ! जाओ, तुम चले जाओ। मैंने तुमसे धन वैभव तो नहीं माँग था, 'सुहाग के नूपुर' के रूप में केवल सम्मान चाहा था, प्रतिष्ठा चाही थी, अपने लिए.... अपनी ही नहीं तुम्हारी बेटी के लिए.... मणिमेखला के लिए... ओह...।"[2] माधवी यह नहीं चाहती कि उसकी बेटी भी वेश्या धर्म निभाने के लिए बाध्य हो जाए।

नाटक में कुलवधू कन्नगी के ज़रिए पुरुष द्वारा पीड़ित, उपेक्षित एवं परित्यक्त नारी को चित्रित किया गया है। वह कोवलन की पत्नी होने पर भी कई तरह की दुःखों की भागी बन जाती है। कन्नगी कुलमर्यादा की खातिर सब कुछ सहनेवाली नारी है। सुहाग के नूपुर

---

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 45
2. वही - पृ.सं. 51

को वह अपनी शकि मानती है। जैसे नाटक में वह माधवी से कहती है "बहन, मेरे देवतुल्य श्वसुर ने मेरे पैरों में सुहाग के नूपुर पहना दिए हैं, शायद यही मेरी शक्ति है।"[1] वह अपने कुल का गौरव अक्षुण्ण रखने के लिए कटिबद्ध है। नारी का यह रूप युग-युगों से पुरुष को अहंकारी बनाए हुए है। नाटक में चेलम्मा का कथन इसको स्पष्ट कर देता है - "नारियाँ अपनी इसी भावुकता और समर्पण से पुरुषों के अहं को बढावा देती रहती है। ....इसीलिए यदि उन्हें कष्ट उठाना पडता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या?"[2] मथुरा में कन्नगी का नूपुर बेचते हुए महारानी के नूपुर चुराने के अपराध में कोवलन को मृत्यु दंड मिलता है। वहीं कन्नगी का दिव्य रूप हमारे सामने आ जाता है - "क्या अपनी पत्नी के सुहाग के नूपुरों को बेचना चोरी है। मैं सूर्यदेव को साक्षी मानकर सत्य कहती हूँ, मेरे पति दोषी नहीं है। यदि राजा न्यायी है तो मैं प्रमाण दे सकती हूँ कि मेरे पति ने चोरी नहीं की। ....जिस राज्य में सत्य की पराजय होती है, निरपराधियों को दण्ड मिलता है, उसका अवश्य अंत होता है। क्या इस नगर में सती साध्वी नारियाँ नहीं है। यदि मेरी बात पर विश्वास न करके मेरे पति को दण्ड दिया गया तो मैं शाप दूँगी यह नगर मेरे सतीत्व की दाहक ज्वाला से भस्म हो जाएगा, भयंकर जल-प्रलय होगी।" कन्नगी समस्त लाज संकोच का लोह-कवच तोड़कर न्याय माँगती है, समाज से सम्मान माँगती है। वहाँ उसकी चंडिका रूप ही हमारे सामने आ जाता है। नाटक में इस दृश्यों को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है।

उपन्यास के सारे के सारे पात्रों को नाटक में भी उभारने की कोशिश रूपान्तरकार ने की है। जिसमें मुख्य रूप से कोवलन, कोवलन के पिता श्रेष्ठि मासात्तुवान, कन्नगी के पिता श्रेष्ठि मानाइहन, महास्थविर, माधवी, कन्नगी, चेलम्मा, पेरियनायकी, माधवी की बेटी

---

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 35
2. वही - पृ.सं. 49

मणिमेखला आदि प्रमुख हैं। माधवी नगरवधू का प्रतिनिधित्व करती है और कन्नगी कुलवधू का। चेलम्मा, पेरियनायकी जैसे पात्र वेश्या वर्ग के प्रतिनिधि पात्र के रूप में हमारे सामने आ जाती है।

नाटक में सूत्रधार की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। नाटक में एक ही पात्र द्वारा सूत्रधार और महास्थविर का रोल अदा किया जाता है। कावेरिपट्टणम, वहाँ के नौकाघाट, नृत्योत्सव आदि का बयान सूत्रधार के संकेतों द्वारा दर्शक गण तक पहूँचते हैं। जैसे नाटक के दूसरे दृश्य में सूत्रधार का कथन है "कावेरिपट्टणम के नौकाघाट पर उस दिन ब्राह्ममुहूर्त से ही विशेष चहल-पहल थी। महाश्रेष्ठि मासात्तुवान मित्र व्यापारियों के साथ पुत्र कोवलन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कोवलन उत्तर भारत से यश और धन कमाकर दो वर्ष पश्चात् अपनी मातृभूमि वापस लौट रहा था....।"[1] उपन्यास के अनेक अंशों को सूत्रधार के संकेतों के द्वारा दर्शक तक पहुँचाया गया है। नाट्यरूपान्तरकार की क्षमता ही उसमें पहचानी जा सकती है।

संवादों की दृष्टि से भी नाट्यरूपान्तर में अधिकांश संवाद उपन्यास के अनुरूप हैं। कुछ स्थलों पर नए दृश्यों के अनुरूप पात्रों के अंतर्द्वन्द्व की तीव्रता को उभारने के लिए नए संवाद भी जोड़ दिए गये हैं। जैसे-

"कन्नगी : बहन। अब तो सुहाग के नूपुर ही मेरे पैरों की शोभा है।

माधवी : तो बहुत गर्व है तुम्हें इन 'सुहाग के नूपुरों' का। शायद इसी कारण तुम मुझसे घृणा करती हो।

---

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 14

कन्नगी : मैं तुमसे घृणा क्यों करूँ बहन। तुम अपनी परिस्थितियों के कारण ऐसा बन गई हो इसमें तुम्हारा क्या दोष।

माधवी : मेरी स्थितियों पर व्यंग्य कर रही हो। मैं इसे सहन नहीं कर सकती। ....तुम्हें मेरे सामने नृत्य करना ही होगा।"[1]

नाटक में बीच-बीच में स्वगत कथन का प्रयोग भी हुआ है। माधवी का स्वगत है "क्या मैं आज हार जाऊँगी। नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। ....कोवलन, मैंने तुम्हें अपने प्राणों से भी बढ़कर चाहा है। तुम्हें मेरी एक-निष्ठता पर विश्वास है।.... फिर क्या मेरी इच्छा न पूरी करोगे.... अपने इस हठ से मैं तुम्हें नहीं समाज की उस झूठी मर्यादा को टूटते देखना चाहती हूँ जो वारवधूओं के सच्चे प्रेम पर विश्वास नहीं करती, हमारे प्रेम को सम्मान नहीं देती। ...नही, नही मुझे हारना नहीं है।"[2] माधवी के इस स्वगत में उसकी मनोव्यथा द्रष्टव्य है।

उपन्यास में प्रयुक्त भाषा को नाटक में बरकरार रखने का प्रयास रूपान्तरकार की ओर से हुआ है। नाटक की भाषा में एक प्रकार की सरलता एवं प्रवाहमयता मौजूद है। जैसे माधवी और कन्नगी के बीच का संवाद-

"माधवी : मैं जानती हूँ, मुझसे बात करना तुम्हारे लिए अपमान की बात है।

कन्नगी : नहीं बहन। पति की आज्ञा पालन करने में मान और सम्मान कैसा?"[3]

---

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 36
2. वही - पृ.सं. 34
3. वही - पृ.सं. 35

नाटक में चेलम्मा का कथन वेश्या बनने की विवशता को स्पष्ट कर देता है। जैसे वह माधवी से कहती है "बेटी तपो लेकिन जाडे की धूप-सी जो सबके लिए सुहानी होती है। प्रखर ताप अच्छा नहीं। .....मेरी अम्मा नंदिनी ने मुझे कहीं से खरीदा था। मैं बहुत रोया कहती थी, पर उन्होंने मुझे मार-पीटकर वारवधू बना दिया। वारवधू बनकर भी मैंने चाहा कि कुलवधू जैसा आचरण करूँ। अपने प्रिय की पतिव्रता बनकर रहूँ, उसे केवल अपना बनाकर रखूँ, पर यह हठ मुझे खो गया। मैं खूब तपी, क्वार की धूप-सी जिसका तेज न मेरी अम्मा सह सकी न मेरा प्रेमी और न मैं स्वयं....।"[1] चेलम्मा के इन शब्दों में केवल उसका ही नहीं बल्कि सदियों से पीडित, शोषित, एवं अपमानित नारी के प्रतिरोध की चाह दिखाई पडती है। नाटक फ्लैश बैक शैली का अनुवर्तन करते हुए आगे की ओर बढता है।

उपन्यास अपनी परिपूर्णता में बत्तीस अध्यायों में विभाजित हैं। वहीं नाटक सत्रह छोटे-छोटे दृश्यों में विभक्त हैं। कथाक्रम के विकास में अनेक दृश्य उपन्यास के अनुरूप हैं, पर कही-कही कल्पना को भी अवकाश दिया गया है। उदाहरण के लिए उपन्यास के प्रारंभ में परदेश में ख्याति और धन अर्जित करके लौटनेवाले कोवलन के स्वागत की तैयारियाँ तथा कोवलन और माधवी के प्रथम दर्शन का वर्णन है। लेकिन नाट्यरूपान्तर में नाटकीय प्रभाव की सृष्टि के लिए प्रथम दृश्य में काँचीपुर के दिव्याराम बौद्ध विहार में भिक्षु-भिक्षुणियों तथा पगली (माधवी) के प्रति महास्थविर के कथावाचन आदि को रखा गया है। साथ में फ्लैश बैक के द्वारा कोवलन और कन्नगी से संबंधित मथुरा में होनेवाली घटनाओं के दृश्य भी सम्मिलित हैं। इसी प्रकार उपन्यास के अंत में जहाँ काँची के बौद्ध चैत्य में माधवी महास्थविर के समक्ष अपनी पीडा व्यक्त करती है वहाँ नाट्यरूपान्तर के अंतिम दृश्य में माधवी के इस कथन, "में ही हूँ सारे विनाश की जड़..... मेरे स्वामी कोवलन ने देवी

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 24

कन्नगी के साथ नगर को त्याग, जो भी कष्ट सहे, पांड्य नगर में अपमानित हुए, मृत्युदंड पाया, उसका कारण मैं ही हूँ। मेरा अंत पश्चाताप से दग्ध हो रहा है भन्ते! मुझे मेरे अपराधों का दंड मिलना ही चाहिए.... मिलना ही चाहिए"[1] के द्वारा उसके पश्चाताप तथा महास्थविर द्वारा उसे तथागत की करुणा से प्राप्त शांति के उपदेश को दर्शाया गया है।

नाटक में कहीं-कहीं संगीत योजना का प्रयोग भी हुआ है। उदाहरण के लिए बौद्ध विहार में गौतम बुद्ध के उपदेश की पालि भाषा की कुछ पंक्तियों का प्रयोग नाटक में हुआ है-

"नमो तस् भगवतो अर्हतो सम्मा सम बुद्धस।
बुद्धं शरनं गच्छामि,
धर्म्मं शरनं गच्छामि,
संघं शरनं गच्छामि।"[2]

इसके अलावा नेपथ्य से शंखनाद, मंगलगीत, मंगलवाद्य, नादस्वरम् तीव्र संगीत, पूजा का संगीत आदि का प्रयोग भी नाटक को काफी प्रभावशाली बना दिया है।

'सुहाग के नूपुर' नाटक यथार्थवादी रंगमंच पर संपन्न हुआ है। मंच को मुख्यतः बौद्ध विहार, कोवलन के प्रासाद तथा माधवी का गृह आदि में बाँट दिये गये हैं। मंच पर प्रकाश व्यवस्था का खूब इस्तेमाल हुआ है। प्रत्येक दृश्य के कथा विन्यास का उतार-चढाव प्रकाश योजना पर केन्द्रित है। कुलवधू हो या नगरवधू हो नारी की पीडा को यथार्थवादी बारिकीयों के साथ अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से मंच पर साकार करने की कोशिश रूपान्तरकार की ओर से हुई है।

---

1. डॉ. शैलकुमारी - सुहाग के नूपुर - पृ.सं. 52
2. वही - पृ.सं. 9

4.11 मैला आँचल - फणीश्वरनाथ रेणु

रेणु कृत 'मैला आँचल' को गोदान के बाद हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास के द्वारा 'रेणु' जी ने पूरे भारत के ग्रामीण जीवन का चित्रण करने की कोशिश की है। कहानी का मुख्य पात्र डॉक्टर प्रशान्त बनर्जी है जो पटना के एक प्रतिष्ठित मेडिकल कॉलेज से डिग्री हासिल करके कई आकर्षक प्रस्ताव ठुकराकर मेरीगंज में मलेरिया और काला अजर पर शोध करने के लिए जाता है। डॉक्टर गाँववालों के व्यवहारों से आश्चर्यचकित है। वह रूढियों को नहीं मानता। कहानी की नायिका है कमली। वह किसी अज्ञात बिमारी से पीडित है लेकिन डाक्टर उसको धीरे-धीरे ठीक कर देता है। कमली के पिता विश्वनाथ मालिक गाँव के तहसिलदार है और बाद में वह तहसीलदारी छोडकर कांग्रेस के नेता हो जाता है। वह इस उपन्यास में सही मायने में जमींदारी व्यवस्था का प्रतीक बनकर आता है। लेकिन उसका दोहरा व्यक्तित्व उपन्यास में दिखाया गया है। घर आने पर वह एक समझदार और हंसोड व्यक्ति हो जाता हैं जिसके लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाने को नहीं चूकता। उपन्यास के अन्य पात्र किसी न किसी विचारधारा के प्रतीक हैं कोई जातिवाद, कोई समाजवाद तो कोई स्वराज्य आन्दोलन का झंडाबरदार है।

रेणु जी ने इस उपन्यास का कालखंड एकदम उपयुक्त चुना है। कहानी देश आज़ाद होने के समय से पहले शुरू होती है। इससे अंग्रेज़ों का राज करने का तरीका देखने का मौका मिलता है और साथ ही साथ कांग्रेसी गतिविधियों को भी दिखाया जा सकता है। उपन्यास में एक गाँव में प्रचलित जातिवाद के एक वीभत्स चेहरे को दिखाया गया है और साथ साथ कई सारी घटनाएँ और परंपराएँ भी दिखाई गई है।

रेणु ने 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है - "यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर है नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्षिण में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा रेखाएँ खींच देते हैं। वैसे इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछडे गाँवों का प्रतीक मानकर - इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी, कीचड भी है कमल भी मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया। कथा की सारी इच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ भी हो अपनी निष्ठा में कमी नहीं महसूस करता।"[1] रेणु जी का 'मैला आँचल' अनेक दृष्टियों से एक महत्वपूर्ण कृति है। जिसमें उपेक्षित अंचल के ग्रामीण जन-जीवन की जटिलताओं एवं विसंगतियों को उभारा गया है।

4.12 मैला आँचल - नाट्यरूपान्तर

हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्य निर्देशिका व रूपान्तरकार प्रतिभा अग्रवाल जी ने रेणु जी के इस महत्वपूर्ण उपन्यास को 'मैला आँचल' के नाम से ही नाट्य रूपान्तरित किया। नाट्य रूपान्तर में रेणु जी के इस अंचल के फूल और शूल, धूल और गुलाल, कीचड़ और कमल सबको समझने और जीने का प्रयत्न किया गया है। प्रतिभा अग्रवाल का कथन है - "सन् 1992 में रजिन्दर नाथ के अनुरोध पर महाकाव्यधर्मीय उपन्यास मैला आंचल का नाट्य रूपान्तर करने का बीडा उठाया। ......वस्तुतः इस उपन्यास के केन्द्र में न कोई व्यक्ति विशेष है और न ही कोई घटना, पूरा प्रदेश ही केन्द्र में है, इस प्रदेश के सभी लोग इसके

1. फणीश्वरनाथ रेणु - मैला आँचल, भूमिका

पात्र हैं। खैर, सोच-विचार के बाद डाक्टर प्रशान्त को केन्द्र में रखा और भावों और घटनाओं की सूक्ष्मता को प्रस्तुत करने के लिए उनकी डायरी का इस्तेमाल किया।"[1] मूल कथा एक होने पर भी नाटक में उपन्यास के कुछ संदर्भों को छोड दिया है जो नाटक के लिए श्रेयस्कर नहीं रहा था।

उपन्यास के समान नाटक का कथाक्षेत्र मेरीगंज गाँव ही है। जहाँ बसते है बारहों बरन के लोग जिसमें उच्च जाति, पिछडी जाति, दलित और आदिवासी अलग-अलग टोलों में निवास करते हैं। नाटक में रामकिरपाल का कथन इसका प्रमाण है - "कायस्थ होला, राजपूत टोला, जादव टोला, बाम्हन टोला सब मिलाकर तीन-चार सौ लोग होंगे। इसके बाद पोलिया टोली, ततमा टोली, दुसाध टोली, कोयरी टोली, गहलोत टोली। ....बारहों बरन के लोग यहाँ है सरकार।"[1] जातिवाद का बोलबाला है और हर एक टोला किसी न किसी जाति के नाम से जाना जाता है। मेरी गंज गांव इतना पिछडा है कि वहाँ जाति के बिना इनसान का रहना असंभव है। यहाँ के लोग नाम पूछने के बाद ही जाति पूछ लेते हैं। डॉ. प्रशान्त और प्यारू के गाँव में पहूँचते ही लोग उनसे जाति पूछते हैं-

"लछमी : आपकी जात?

डाक्टर : वह है। डाक्टर।

बालदेव : (हंसकर) आप तो मज़ाक करते हैं। अरे, बाह्मन हैं बाह्मन। बनर्जी बाह्मन।

डाक्टर : मैं जात-पात नहीं मानता।

लक्ष्मी : और आपका देस? आप बंगाली हैं या बिहारी?

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - गोदान - पृ.सं. 9

डाक्टर : हिन्दुस्तानी।

बालदेव : वार रे डाक्टर साहब साह। जात डाक्टर, देस हिन्दुस्तान। जब सब आदमी इस तरह सोचेगा तभी देस में सुराज आ सकेगा।"[1]

जाति भेद इतना प्रबल हैं कि भंडारे के समय अलग-अलग जाति के आधार पर भोजन का प्रबन्ध करना पडता है। सारे गाँव के लोग भूख, गरीबी, बीमारी और अंधविश्वासों से पीडित हैं। डाक्टर यहाँ की गरीबी और बेबसी को देखकर आश्चर्य चकित होता है। डाक्टर का कहना है "मुझे ताज्जुब होता है अपने देश के लोगों को लेकर। एक ओर कितना अन्याय और अत्याचार, चालाकी और काइयांपन और दूसरी ओर कितना साख्य है, सहनशीलता है। बेचारे भूख, गरीबी, बीमारी से जकडे लोग। कई बार लगता है इनमें और जानवरों में कोई भेद है क्या? मैं टेस्ट्ट्यूब में आदमी और जानवर के खून को पास-पास रखकर जानने की कोशिश करता हूँ कि इनमें क्या अंतर है। इस अंचल को लेकर मैंने एक कल्पना की थी - कोशी नदी का यह अंचल, कोशी नदी द्वारा लायी गयी मिट्टी से यहाँ की धरती शस्य श्यामला हो उठेगी, कफन जैसे सफ़ेद बालू भरे मैदान में धानी रंग की जिन्दगी की बेले लग जायेंगी। पर लगता है, अभी वह दिन दूर है। मेरा रिसर्च पूरा हो गया है। यहाँ की रोग की जड़ मैंने पकड़ ली है - वह है गरीबी और जहालत।"[2] यह गरीबी भी मेरीगंज के पिछडेपन को उभारने में सिद्ध हुई हैं। इसे नाटक में सशक्त रूप से उठाया गया है।

गाँव की सद्य जाग्रत राजनीति भी पिछडेपन, जातिवाद तथा अवसरवाद के कारण भ्रष्ट हो जाती है। "राजनीतिक अवसरवाद ने मनुष्य में स्वार्थ और निहितार्थ की पद्धति

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 14
2. वही - पृ.सं. 61

विकसित की थी। यह पैटर्न मानवीयता को नष्ट करता है। राजनीति जनता की भलाई के लिए होती है लेकिन राजनीति में अवसरवाद ने लोगों में यह समझ पैदा कर दी है कि राजनीतिक शक्ति से गठज़ोड कर अपना स्वार्थ साधा जा सकता है।"[1] इसलिए लोग बालदेव से संबन्ध जोडने को लालायित हैं। बालदेव मेरीगंज की उन्नति करने आया है। रामाकिरपाल सिंह को एहसास हो जाता है कि बालदेव वाकई, राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वह तत्काल उसकी खुशामद शुरू कर देता है, "बालदेव! तुम यहाँ से चले जाओगे तो यह मेरीगंज गाँव का दुरभाग होगा, सरम की बात होगी। गाँव में तो लडाई-झगड़े होते ही रहते हैं।"[2] नेता लोग जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए चर्खा-सेंटर,मलेरिया सेंटर खोल आदि खोल देते हैं।

अस्पताल बनने की घटना से सबको अपनी-अपनी फिक्र हो जाती है। ज्योतिषी को अपने कारोबार की फिक्र हो जाती है। वह इस सामाजिक कल्याण के खिलाफ गाँव में प्रचार करता है, "यही का तो डर था हमें। अनर्थ हुआ चाहता है। कुआं में अंग्रेज़ी दवा डालकर डाक्टर सारे गाँव को मार डालना चाहता है..... अंग्रेज़ी दवा में न जाने क्या पडा रहता है। बाह्मन टोली का कोई आदमी सूई नहीं लेगा। हमारे कुआं में दवा भी नहीं पडेगी।"[3] ज्योतिषीजी ने सारे गाँव में अनिष्ट और अमंगल की भविष्यवाणी कर दी है - "तुम लोग तो बावले हो रहे हो। देखना, डाक्टर आके, अंग्रेज़ी दवा दे-दे के गाँव का सत्यानास न करे तो कहना। हम सावधान किये जाते हैं।"[4] गाँव के पिछडेपन से भरे हुए जीवन को ये लोग ओर भी विषावत कर देते हैं।

---

1. बीना जैन - बदलते परिप्रेक्ष्य और हिन्दी उपन्यास - पृ.सं. 129
2. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 46
3. वही - पृ.सं. 47
4. वही - पृ.सं. 8

डाक्टर प्रशान्त विदेश में जाने की अपेक्षा अपनी देशवासियों की सेवा करना चाहता है। लेकिन गाँव की स्थिति देखकर वह एकदम निराश हो जाता है और कहता है "गाँव का यह हाल है। रोज़ एक नया टंटा - बखौडा। सबको अपनी-अपनी पड़ी है। कोई दूसरों की, गरीबों की, असहायों की बात नहीं सोचता। मैं इतने दिनों से इनके लिए इतना काम कर रहा हूँ पर उससे फायदा। मान लो मैंने कालाज़ार की दवा खोज निकाली, रामवाण औषध, पर उससे होगा क्या? दवा का दाम होगा पांच रुपया, बाज़ार में आते साथ बिकने लगेगी पचास रुपये में। कितने लोग पचास रुपये में दवा खरीद सकेंगे। और लगता है क्या करेगा यहाँ का आदमी जीकर। कोई जिन्दगी है। जानवर की तरह सीधे लोग हैं। उन्हीं की तरह जी भी रहे हैं। चारों और से समाज ने, धर्म ने, पैसेवालों ने ऐसा जकड़ रखा हैं आदमी को कि वह बेचारा कुछ कर ही नहीं पाता।"[1] डाक्टर का यह कथन हमारे समकालीन समाज के लिए सौ प्रतिशत सही है। क्योंकि आज सभी लोग पैसों के पीछे भाग रहे हैं, धन कमाने के लिए किसी भी घिनौने कर्म करना आज एक साधारण सी बात बन गयी है।

मैला आँचल जिस कालखण्ड को उठाता है उसमें विभिन्न राजनीतिक पार्टियों या शक्तियों स्वतंत्रता संग्राम के लिए संघर्षरत थीं। प्रत्येक पार्टी अपना प्रभुत्व जमाने के लिए तत्पर थी। बालदेव कांग्रेस का कार्यकर्ता है। वह देश के उन कांग्रेसी नेताओं का प्रतिनिधित्व करता है जो ऊपर से तो महात्मा गाँधी का अनुसरण करता है, लेकिन पद के लोभ में म्लेच्छ कार्य करने को तैयार रहता हैं। कालीचरण को कम्यूनिस्ट पार्टी के लोग अपने साथ मिला लेते हैं। यह राजनीति वर्गवादी समाज को मानती है कि समाज में केवल दो वर्ग हैं - अमीर और गरीब। एक ओर यह कालीचरण को कामरेड साथी जैसे शब्दों द्वारा

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 70

समानता का भाव पैदा कर प्रभावित करती है, यहाँ कोई नेता नहीं। सभी नेता सभी साथी हैं। लेकिन दूसरी ओर जातिवाद को उभारते हुए अपना उल्लू सीधा करना चाहती हैं। सभी राजनीतिक दल ग्रामीणों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रयास में लगे हुए हैं। गरीबों का भला न विदेशी चाहते थे और न स्वदेशी। चारों ओर भ्रष्टाचार, लूटमार, रिश्वत खोरी का साम्राज्य व्याप्त था।

बावनदास सच्चा देश भक्त है। वह गाँधीजी का प्रतीक है, जो पद के लोभ में नहीं पडे और सिद्धान्तों के लिए मर मिटे। वह देश की दुर्दशा पर दुखी है। उसे पता था कि देश की राजनीति सही दिशा की ओर नहीं जा रही। उसका कहना है "सब अपनी-अपनी डफली बजा रहे हैं, अपनी-अपनी घोंट रहे हैं। कोई मेलए (एम.एल.ए) बनने को तड़प रहा है तो कोई मंत्री बनने के लिए ज़मीन आसमान एक किये हैं। ऊपर से नीचे तक लोग दुहने में लगे हैं। खूब माल हिन्दुस्तान - पाकिस्तान आ जा रहा है। इतना ही नहीं, गाँधी जी की भसम कौन ले आवेगा, कौन प्रवाह करेगा इसको लेकर लोग लड रहे हैं। हमें तो बस एक आदमी जौपरगास बाबू (जयप्रकाश नारायण) दिखें। उन्हें भी कोई गोली मार देगा, छुट्टी।"[1] वह देखता है कि सोसलिस्ट पार्टी सत्ता के लिए लड़ रही है। सब पार्टी समान।

उपन्यास के समान नाटक में भी ज़मींदारी उन्मूलन के कानून बन जाने पर भी भूमिहीन किसानों की समस्याओं का अंत नहीं होता बल्कि उनकी समस्याएँ कई गुना बढ जाती है इस मुद्दे को तीव्रता से प्रस्तुत किये हैं। डाक्टर प्रशान्त का कहना है "मत समझना कि संथाल की ज़मीन छुडाकर ही ज़मींदार संतोष करेगा। उसके बाद गांव के किसानों की बारी आयेगी।"[2] डाक्टर प्रशान्त कानून के आधार पर संथालों को समझाता है कि किसान

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 90
2. वही - पृ.सं. 71

को ज़मींदार ज़मीन से बेदखल नहीं कर सकता, यदि वह उस ज़मीन पर किसी भी रूप में तीन साल से काम करता आ रहा है। इस कानून को नाकामिल बनाने के लिए तहसीलदार पिछली तारीखों के कागज़ तैयार कर और झूठे नीलामी के दस्तावेज़ तैयार कर यह सिद्ध करता है कि ज़मीन संथालों के हाथ में आने के पहले ही दूसरों के नाम पर थी। इस समस्त षडयन्त्र में बाबू विश्वनाथ प्रसाद हरगौरी को पूरी तरह फंसाता है और लडाई करता है। उसका कहना है "हम तो साफ देख रहे हैं कि इस बंदोबस्ती को लेकर बडा हंगामा होगा। एक ओर होंगे वे जिन्हें जमीन मिलेगी, दूसरी ओर वे जिन्हें जमीन नहीं मिलेगी। और वे दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे बनेंगे।"[1] यहाँ तक कि विश्वनाथ प्रसाद कांग्रेस और सोशियलिस्ट पार्टी के नेताओं को भी अपने पक्ष में, गाँव के नाम पर फंसा लेता है।

उपन्यास के मुख्य पात्रों को ही नाटक में स्थान दिया गया है। बहुसंख्यक गौण पात्रों को नाटक में छोड देना पडा है। फिर भी इसमें पच्चीस से ज्यादा पात्र शामिल हैं। जिनमें किसान, जमींदार, महाजन, नेता, साधु, देशसेवक, देशद्रोही, डाक्टर आदि विभिन्न पात्र हैं। ये पात्र ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं को चित्रित करने के साथ-साथ मानव स्वभाव की विविधता को भी उजागर करते हैं। नाटक में संवाद योजना पर ज्यादाधिक प्रयोग किये गये हैं। छोटे-छोटे संवादों का प्रयोग ज्यादाधिक हुआ है। जैसे-

"विश्वनाथ : कैसी है कमली अब?

डाक्टर : आप बतलाइए। मुझे तो ठीक ही लग रही हैं।

विश्वनाथ : हम तो उबर गये डाक्टर साहब। आपने कमली को बचा लिया।

डाक्टर : वह तो हमारा फर्ज़ था तहसीलदार साहब।"[2]

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 57
2. वही - पृ.सं. 26

'मैला आँचल' में यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य के लिए पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। इसमें शब्दों को तोड-मरोड़कर उपयोग किया गया है जो अंचल की सविशेषता है। जैसे 'जिन्दाबाद' को 'जिन्दाबाध', 'सोशलिस्ट' को 'सुसलिंग', 'रेडियो' को 'रेडा' कहना आदि नाटक को कृत्रिमता पैदान करते हैं। नाटक में आंचलिक शब्दों का ज्यादाधिक प्रयोग हुआ है फिर भी वह भावों और विचारों के संप्रेषण में सफल रहा है। "यह भेख (वेश) है। हर मत का अपना भेख होता है। आप खद्धड पहनते हैं न? काहे? मलमन-मारकीन भी तो दहिन सकते हैं? पर ना, गाँधी महात्मा का भेख यही है, उनके काम के लिए ये भेख धारन करना पडता है।"[1] आधुनिक सभ्यतावाले डाक्टर प्रशान्त हिन्दी के परिष्कृत एवं संस्कृतनिष्ठ रूपों का प्रयोग करता है - "प्यारु, तू झट से दौडकर आलमारी में से ब्रोमाइड मिक्सचर की शीशी और रेडियो उठा ला।"[2] तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद भी हिन्दी के परिनिष्ठित रूप का प्रयोग करता है। कमला भी परिनिंष्ठित हिन्दी का प्रयोग करती है। इन पात्रों के स्तर पर पिछडेपन का प्रश्न नहीं उठता जिसे तुरंत ही उनकी भाषा से समझा जा सकता है। भाषा के संगीतात्मक और शब्दों के स्वरात्मक आघातों के लिए कभी ढोलक, कभी मृदंग - मादल और कभी नगाडों के बोलों का इस्तेमाल किया गया है।

भाषा के स्तर पर जनभाषा अथवा ग्रामीण भाषा को लाने के लिए नाटक में कुछ कहावतों का प्रयोग किया गया है। नाटक में कुछ ऐसी कहावतों का प्रयोग हुआ है, जैसे तुम 'कौआ तो हम कायथ', 'मरा हुआ कायथ भी बिसाता है' आदि। कुछ व्यंग्यात्मक कहावतों का प्रयोग भी हुआ है जो व्यक्ति के किसी विशेष कार्य-व्यापार की आलोचना करती है। कमला डाक्टर प्रशान्त को 'माटी का महादेव' कहती है। ज्योतिषी जी डाक्टर को 'बिस रस

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 15
2. वही - पृ.सं. 17

भरा कनक घट जैसे' की उपमा से विभूषित करता है। लोगों को 'इन्किलाब जिंदाबाध' का मतलब भी नहीं मालूम, फिर भी वे जुलूस या मीटिंग में 'भारतमाता की जै', 'गाँधी महात्मा की जै' आदि नारे अक्सर दोहराते हैं। उनमें इन्किलाब की भावना कहीं भी नज़र नहीं आती। इसी प्रकार ग्रामीण जनता अपने सामान्य जीवन को संतुलित बनाए रखने के लिए कहावतों की हिदायतों का स्मरण करती-करती रहती है।

'मैला आँचल' नाटक में लोकगीतों का प्रयोग भी बडी मात्रा में हुए हैं। उचित अवसरों पर वातावरण निर्माण करने के लिए उसका बहुत ही सुन्दर उपयोग किया गया है। खरहर के पहले दिन गानेवाला गीत-

"अरे, दाल बंदो, भात बंदो, साग बंदो बथुआ।
यह हुई कच्ची। अब पक्की सुनिए-
अरे, चूड़ा बदो, भूजा बंदो, रोटी बंदो मडुआ
अब फल मेवा सरकार
अरे, गुलर बंदो, डूबर बदो, और बंदो अल्हुआ।"[1]

कभी कोई दृश्य किसी गीत की कडी से शुरू होता है तो सरस गीत से ही किसी दृश्य का अंत भी होता है।

इस प्रकार लोकगीत, लोकनृत्य, लोक विश्वास, लोक शब्दावली आदि मिलकर मैला आंचल नाटक को जीवन्त बनाया है। यथार्थवादी रंगमंच का प्रयोग करते हुए यह नाटक और अधिक सार्थक और संप्रेषणीय बन गया है।

---

1. प्रतिभा अग्रवाल - मैला आँचल - पृ.सं. 28

4.13 महाभोज - मन्नू भंडारी

हिन्दी की आधुनिक कथा लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। उनका उपन्यास 'महाभोज' आज के राजनैतिक माहौल को उजागर करनेवाला स्थिति प्रधान उपन्यास है। उपन्यास के आधुनिक बोध की संवेदना को लेखिका ने इन शब्दों में स्वीकार है : "अपने व्यक्तिगत दुःख-दर्द, अंतर्द्वन्द्व या आंतरिक नाटक को देखना बहुत महत्वपूर्ण, सुखद और आश्वस्तिदायक तो मुझे भी लगता है, मगर जब घर में आग लगी तो सिर्फ अपने अतंर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगाने लगता? संभवतः इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो।"[1] 'महाभोज' उपन्यास उसका अपने परिवेश के प्रति चुकाया गया ऋण है।

'महाभोज' एक राजनीतिक उपन्यास माना जाता है। इसका परिवेश वैयक्तिक या पारिवारिक न होकर सामाजिक है। 'महाभोज' उपन्यास का ताना बाना सरोहा नामक गाँव के इर्द-गिर्द बुना गया है। 'बिसेसर' नामक एक पिछड़ी जाति के युवक की हत्या से उपन्यास शुरू होता है। सरोहा गाँव की हरिजन बस्ती में आगजनी की घटना में दर्जनों व्यक्तियों की निर्मम हत्या हो चुकी थी। बिसू के पास इस हत्याकांड के प्रमाण थे। जिसे वह दिल्ली जाकर सक्षम अधिकारियों को सौपना चाहता था। लेकिन राजनीतिक षडयंत्र द्वारा बिसू को जेल में डालकर उसकी हत्या की गयी। इस 'हत्या' का राजनीतिक लाभ पदासीन मुख्यमंत्री 'दा साहब' और पदच्युत मुख्यमंत्री 'सुकुल बाबू' दोनों उठाना चाहते हैं। हत्या दा साहब के सहयोगी जमींदार जोरावर ने करायी है। इसलिए वे इस मामले को ठंठा करना चाहते हैं।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (उपन्यास), भूमिका - पृ.सं. 6

इसके विपरीत सुकुल बाबू इसे उभाडकर जनता की सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं। दोनों अपनी-अपनी वोट फिट करने में लगे हैं।

बिसू की मौत के पश्चात उसका साथी बिंदा इस प्रतिरोध को जिन्दा रखता है। लेकिन बिंदा को भी राजनीतिक षडयंत्रकारियों ने अपराध के चक्र में फँसाकर सलाखों के पीछे डाला दिया। अंततः नौकरशाही वर्ग का ही एक अंग पुलिस अधीक्षक सकसेना वंचितों का प्रतिरोध जारी रखता है। पिछडी और वंचित जाति के लोगों के साथ अत्याचार और प्रतिनिधि चरित्रों द्वारा उसका प्रतिरोध दोनों कथा को गति प्रदान करते हैं।

मन्नू भंडारी जी ने बिसू की हत्या और सरोहा के चुनाव को आधार बनाकर समकालीन राजनीति का यथार्थ दृश्य उभारा है। राजनीति में व्याप्त मौका-परस्ती, दलबदलू नीति, तिकडमबाजी, मौकापरस्ती के संदर्भ में नेताओं के आचरण, पुलिस की निर्ममता तथा पक्षपातपूर्ण व्यवहार, पत्रकारों की अवसरवादिता तथा साधारण जनता पर हो रहे दमन, शोषण, अत्याचार, अन्याय आदि का अत्यन्त सुन्दर और सशक्त चित्रण उपन्यास में चित्रित हुए हैं।

4.14 महाभोज - नाट्यरूपान्तर

'महाभोज' उपन्यास का नाट्यरूपान्तरण स्वयं उपन्यासकार मन्नू भंडारी जी ने ही किया है। इसका प्रथम मंचन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंगमंडल द्वारा 1982 में हुआ है। निर्देशन के दौरान इसका संपादन निर्देशिका अमाल अलाना तथा प्रेम मटियानी के सहयोग से लेखिका ने किया था। स्वयं लेखिका का कथन है "आज देश के अनेक भागों में कई नाट्य मंडल ऐसे भी हैं, जिनके लिए नाटक मात्र एक कल अभ्यास ही नहीं, बल्कि

सामाजिक जागृति और संघर्ष का हथियार भी है। इनमें से यदि कुछ अपने-अपने क्षेत्र में 'महाभोज' का मंचन करें तो यह तय है कि प्रस्तुति इतनी भव्य, कलात्मक और सफल नहीं होगी पर शायद सार्थक अधिक हो, क्योंकि मूलतः यही इस नाटक की आत्मा की माँग है।"[1] मन्नू जी का सतत प्रयास समस्याओं को यथावत उपस्थित करके सामाजिक जागरण पैदा करना है।

'महाभोज' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें बहुत सारे पात्रों व समस्याओं का भरमार है। व्यापक पृष्ठभूमि और चरित्रों की भीडवाले इस कथानक को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना कठिन कार्य था। इसलिए उपन्यास को काटना, बदलना तथा नये ढंग से लिखना लेखिका के लिए मजबूरी थी। नाटक के केन्द्र में दो उपकरण हैं - गाँव में बिसू नाम के युवक की हत्या और इस घटना की पृष्ठभूमि में विधायक का चुनाव। इसके परिप्रेक्ष्य में लेखिका ने राजनीतिक वातावरण को यथार्थ की व्यापक भावभूमि पर उघाडा है। नाटक की शुरुआत एक गाँव के चित्रण से होती है। वहाँ बिसू की माँ का हृदय विदारक क्रन्दन सुनायी पडता है। इससे दर्शक वर्ग काफी हैरान हो जाता है। प्रकाश आने पर मंच पर बिसू की लाश रखी हुयी है और उसकी माँ छाती पीट-पीटकर रो रही है, बाप घुटनों में सिर दिये बैठा है।

नाटक की मुख्य घटना बिसू की मौत है। सरोहा गाँव में खुलेआम पडी बिसू की लाश को हर कोई अपने हित में इस्तेमाल करना चाहता है। हरिजन युवक बिसू की मौत राजनेताओं के लिए 'महाभोज' बन जाता है। नाटक की शुरुआत इस प्रकार है "लावारिस लाश को गिद्ध नोच-नोचकर खा जाते हैं।"[2] किसी दलित या हरिजन का मरना सत्ता तथा

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 11
2. वही - पृ.सं. 13

राजनीति के लिए उत्सव जैसी खुशी दे जाता है। 'लावारिस' पद इस वाक्य में साभिप्राय है।

सत्ता का मोह आदमी को कितना पतनोन्मुख बना देता है इसका यथार्थ चित्रण 'महाभोज' नाटक में देख सकते हैं। चुनाव के डेढ महीने पहले हरिजन युवक बिसेसर की मौत राजनीतिक दलों के लिए अपनों की मौत से भी ज़्यादा तिलमिला देती है। इसमें सबसे पहले मुख्यमंत्री दा साहब का दोगली नीति सामने आ जाती है। दा साहब जैसे मुख्यमंत्री, बिसू के पिता हीरा को सांत्वना देने के लिए उसके घर पहूँचता है वह कहता है "बिसू का सुना, बहुत अफसोस हुआ। धीरज से काम लो हीरा, हौसला रखो। सुना, आगजनी में बरबाद हुए परिवारों के लिए बहुत दुखी था बिसू - हम सभी है। अब तो बिसू के अधूरे काम को हमें पूरा करना है।"[1] पर बेचारी निरीह जनता दा साहब की कूटनीति को कैसे समझे? एक मुख्यमंत्री का हरिजन के घर जाना, उसे अपने साथ गाडी में बिठाना, उसके हाथों घरेलू योजना का उद्‌घाटन करना आदि का गाँव की भीड पर गहरा असर डालता है।

आज के राजनेता किसी सेवा भावना या सर्वहित की भावना से राजनीति में प्रवेश नहीं करते हैं। कुर्सी और सत्ता को हथियाना आज के नेताओं का चरम लक्ष्य रहा है। नाटक में दा साहब का कथन है "मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। मेरा साथ चाहते तो गीता का उपदेश गाँठ बाँध लो। निष्ठा से अपना कर्म किये जाओ, बस। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचिन्.... पढते हो गीता या नहीं?..... पढ़ा करो। चित्त को बडी शान्ति मिलती है।"[2] दा साहब चुनाव के दौरान गरीबों के लिए घरेलू योजना का शुभारंभ करता है। ये सब केवल उसकी ओर से पैंतीस प्रतिशत वोट प्राप्त करने हेतु होता है।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 13
2. वही - पृ.सं. 37

चुनाव एक प्रजातांत्रिक देश के संतुलन व सुरक्षा के लिए परम आवश्यक है। लेकिन आज चुनाव राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना मात्र है। वर्तमान समय में 'फूट डालो और राज्य करो' इस ब्रिटिश नीति को अपनाकर चुनाव लडने और जीतने की स्थिति विद्यमान है। नाटक में समाज की नब्ज पहचाननेवाले चालाक मुख्यमंत्री दासाहब कहता है "कुर्सी पर बैठना है तो जनता में फूट डालो..... कुर्सी बचानी है तो जनता में फूट डालो..... जनता की एकता कुर्सी के लिए सबसे बडा खतरा है।"[1] वह अच्छी तरह जानता है कि जनता की एकता में बडा ज़ोर होता है। जनता एक हो जाएगी तो इन कुर्सीधारियों को कुर्सी सहित जमीन में गाड देगी। इसलिए दा साहब कहता है "तूफान आता है तो बडे-बडे पेडों को जड सहित उखाड फेंकता है। जनता एक होती है तो बडे-बडे राज्य उलट देती है।"[2] यह जोड-तोड की नीति चुनाव का एक सशक्त मुद्दा है। यह नाटक में मुख्य रूप से उभर आता है।

मन्नू भंडारी जी ने 'महाभोज' नाटक में भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था की बहुतांश विकृतियों को सशक्त ढंग से उपस्थित किया है। जोरावार जैसा सरोहा गाँव की आधी जायदाद का मालिक जनता का तरह-तरह से शोषण करता है। कानून तथा पुलिस सब उनके हाथों में है। उसके विरोध में गाँव में एक पत्ता भी नहीं हिलता। इसलिए वह कहता है "जो हमरे संग चले, ऊ सर माथे पर हमार। पर जो कहनो उँगली उठावे की कोसिस कर तो हाथ कटाय के घर दे ससुर का।"[3] क्योंकि शासक एवं शासन दोनों उसके हाथों में है।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 48
2. वही - पृ.सं. 48
3. वही - पृ.सं. 106

नाटक में दूषित न्याय व्यवस्था का चित्र भी यों प्रस्तुत है। डी.आइ.जी सिन्हा बिसू की रिपोर्ट आत्महत्या सिद्ध करना चाहता है। लेकिन एस.पी. सक्सेना न्यायपूर्ण फैसला लेने का दृढ़ संकल्प लेता है। क्योंकि उसे यह अच्छी तरह मालूम है कि बिसू का मामला आत्महत्या का नहीं, हत्या का है। आज के ज़माने में ईमानदार व्यक्ति का जीना काफी मुश्किल है। सक्सेना के संकल्प का परिणाम दा साहब के प्रस्तुत कथन से स्पष्ट है। "बिसू और रुकमा के संबन्ध बहुत साफ है.... बिसू के पास रहने के लिए रुक्मा बिन्दा को गाँव में लायी। पत्नी के प्रेमी को बरदाश्त न कर पाना, पर संदेह न हो इसलिए मित्रता की आड़ बनाए रखना.... पूरी योजना बनाकर घटनावाले दिन गाँव से अनुपस्थिति रहना। ....ये हत्या का मामला है... बिन्दा ने की है हत्या। और सक्सेना पुलिस का आदमी होकर मुजरिम के साथ साँग गाँठ करे! जुर्म है यह। सस्पैंड सक्सेना एवं अरेस्ट बिन्दा इमीटिएटली।"[1] ईमानदार सक्सेना को सस्पेंशन का आर्डर देकर पुरस्कृत किया जाता है और दा साहब के इच्छानुसार उसके दरवाज़े पर रिपोर्ट पेश करनेवाले डी.आइ.जी सिन्हा को कानून को नीलाम पर चढाने के लिए, सफेद को काला करने और जनता को गधा बनाने के बदले में प्रमोशन मिलता है। यही हमारी न्याय व्यवस्था है। इस पर नाटक करारा चोट करता है।

नाटक और उपन्यास दोनों का शीर्षक एक ही है 'महाभोज'। नाटक के शीर्षक की सार्थकता सूत्रधार द्वारा कही गयी पहली पंक्ति "लावारिस लाश को गिद्ध नोंच नोंचकर खा जाते है"[2] में निहित है क्योंकि गिद्दों के लिए मनुष्य की लाश महाभोज है। इस भोज को परोसनेवाले हमारे राजनीतिज्ञ है। सृष्टि का यह एक नियम है कि बडा पशु छोटे पशु का भोज बन जाता है। जब मनुष्य पशुओं के लिए मनुष्य को ही भोज बनाकर चढा दें तो वह

1. मन्नू भंडारी - महाभोज - पृ.सं. 104
2. वही - पृ.सं. 13

महाभोज बन जाता है। उपन्यास का अंत बिन्दा के विद्रोह से होता है। लेकिन नाटक की समाप्ति सूत्रधार के शब्दविहीन संवाद से होता है, जो इस बात को स्पष्ट कर देता है कि अब स्थितियाँ कहने-सुनने से परे है।

नाटक की पात्र परिकल्पना गंभीर है। 'महाभोज' उपन्यास में पात्रों की अधिकता है। इन सारे पात्रों को नाटक में लाना काफी दुष्कर है। इसलिए प्रमुख पात्रों को ही नाटक में स्थान मिला है। इस प्रकार देखे तो नाटक में कुल मिलाकर चालीस के आसपास के पात्र है - दा साहब, सुकुल बाबू, अप्पा साहब, पांडेजी, लखन, सक्सेना, दत्ता बाबू, डी.आई.जी सिन्हा, बिन्दा, रुक्मा, हीरा, महेश, काशी, जोरावर, थानेदार आदि-आदि। नाटक में एक ही पात्र द्वारा दो-तीन पात्रों की भूमिका भी निभायी जाती है। भवानी, सोना, राव, चौधरी, गनेसी जैसे पात्रों को मंचीय सीमाओं के कारण नाटक में छोड दिया गया है।

मन्नू जी ने बडी सहजता एवं कुशलता के साथ नाटक में दा साहब के चरित्र को गढ़ा है। दा साहब के मुँह से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द दर्शक को भ्रम में डालते हैं। जैसे लगता है कोई तपतपाया आदर्शवादी, नैतिक और ईमानदार व्यक्ति कुर्सी पर आसीन है। बापू और गीता की दुहाई देनेवाला, सादगी में जीनेवाला गरिमामय व्यक्तित्व है साहब का। नाटक में उसका कहना है "आवेश राजनीति का दुश्मन है, 'मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं'।"[1] नाटक के उत्तरार्द्ध में यह सत्य खुलता है कि दा साहब एक घटिया आदमी है।

नाटक में बिन्दा एक विद्रोही चरित्र के रूप में सामने आता है। बिसू और बिन्दा दोनों राजनीतिक जोड-तोड और सामाजिक व्यवस्था से क्षुब्ध है। बिन्दा सक्सेना से कहता

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 28

है "आने को तो बडी-बडी हस्तियाँ आ रही है। सुकुल बाबू आये.... अपना पैसा लगाके बिसू का मुकदमा लडने की खातिर। दा साहबाँ आये आँसू बहाते हुए मातमपुर्सी के खातिर। आज आप सबकी सतरंज में बिसू की मौत को मोहरा फिट बइठ रहा है ई वास्ते इत्ता हंगामा मचा रहा है.... फिर से तहकीकात हो रही है.... पर होना हवाना कुच्छ नहीं। मैं पूछता हूँ साहेब कि कोई ईमान-धरम नहीं रह गया है आप लोगों का?"[1] नाटक में ईमानदार पुलिस अफसर सक्सेना, भ्रष्टाचार में लिप्त डी.आइ.जी सिन्हा, अवसवादी पत्रकार दत्ता बाबू, आम जनता के प्रतिनिधि हीरा, रिसर्च स्कॉलर महेश आदि के चरित्र भी काफी महत्वपूर्ण हैं।

नाटक का केन्द्रीय पात्र तो बिसू है। लेकिन बिसू एक लाश है। केन्द्रीय पात्र की अनुपस्थिति में सारी स्थितियों को एक तटस्थ दर्शक की तरह देखकर समेटना जरूरी है। इसलिए सूत्रधार की परिकल्पना की गयी है। सूत्रधार के रूप में नाटककार ने मध्यवर्गीय प्रबुद्ध शोध छात्र महेश को लिया है ताकि पूरे नाटक को एक ऐंगिल दिया जा सके।

नाटक की संवाद योजना उपन्यास के अनुकूल है। नाटक के एक-एक संवाद हमारी भ्रष्ट राजनीति की बहु-आयामिता को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत करने में सफल निकली है। नाटक में कानून व्यवस्था पर बिन्दा यों व्यंग्य करते है। "कानून स्याला को तो आज बाज़ारू औरत बना के छोड़ दिया है जिस पर पैसेवाला जब चाहे अपने घर में बिठा लो।"[2] भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था का चित्रण नाटक में संवादों के ज़रिए काफी प्रभावशाली ढंग में प्रस्तुत किया गया है।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 87
2. वही - पृ.सं. 88

"थानेदार : (बिन्दा से) कबूल कर कि बिसू को तूने मारा है (मारता है) बसी और बिहारी को रुपये देकर तूने ज़हर दिलवाया....।

चौकीदार : बोल बे सूम के बच्चे.... भैंचो...।"[1]

नाटक में मंचीय सीमा के कारण अप्पा साहब और दा साहब के बीच में संवाद, मंत्री गणों के बीच के संवाद, चपरासी और दा साहब के बीच के संवाद आदि को छोड दिये गये हैं। फिर भी उपन्यास का मकसद नाटक में लगातार सुरक्षित रहा है।

जहाँ तक भाषा का सवाल है वह ज्यों की त्यों बनी हुई है। उपन्यास में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है उसी भाषा का प्रयोग नाटक में भी हुआ है। नाटक में दा साहब, सक्सेना, डी.आई.जी, सुकुल बाबू, दत्ता बाबू जैसे पात्रों के लिए व्यवस्थित भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटक में दा साहब कहता है "आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर ही शोषण से मुक्त हो सकेंगे और समाज में समानता का दर्जा पा सकेंगे ये लोग।"[2] नाटक में बिन्दा, हीरा, रुक्मा जैसे पात्रों के लिए ग्रामीण तथा आंचलिक भाषा का प्रयोग हुआ है। हीरा का कहना है "ऊ निसान तो सरकार, जेहल से जब छूटिके आवा रहा तबै के हैं। जब आवा रहे न साब, तब कलाइ और खनन पर तो घावै रहे... उनते खून और मवाद आवत रहा।"[3] कहीं-कहीं 'एक्स्ट्रा सेंसेटिव', 'इन्टरेस्टिंग सबजेक्ट', 'प्रोपर सेन्सेज़' जैसे अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

नाटक में कुलमिलाकर ग्यारह दृश्य हैं। उपन्यास के सारे दृश्यों को मंच में दर्शाना नामुमकिन है। इसलिए नेपथ्य से नारों, स्वरों आदि का जिक्र किया गया है। बिन्दा पर

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज (नाटक) - पृ.सं. 108
2. वही - पृ.सं. 34
3. वही - पृ.सं. 83

पुलिस द्वारा किये जानेवाली हरकत का दृश्य, उसके क्रन्दन आदि नेपथ्य से सुनाई पडता है। दृश्य परिवर्तन के लिए प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग भी किया गया है।

'महाभोज' नाटक यथार्थवादी रंगमंच को आधार बनाया है। मंच को मुख्यतः दो-तीन भागों में बाँटे दिये हैं। इसमें एक ओर थाना 'मशाल' का आफिस दूसरी ओर दा साहब के घर, उसके ऑफिस आदि प्रस्तुत है। मंचीय उपकरणों में गांधीजी, नेहरु जैसे महारथियों के छाया चित्र, पोस्टर, टेलिफोन, डेस्क आदि का प्रयोग दृश्य को काफी रोचक बना दिया है।

4.15 रागदरबारी - श्रीलाल शुक्ल

'रागदरबारी' हिन्दी के व्यंग्यात्मक उपन्यासों की परंपरा के कीर्ति स्तंभ श्रीलाल शुक्ल का बहुचर्चित उपन्यास है। यह 35 अध्यायों में बाँटा 383 पृष्ठ का बडा उपन्यास है। उपन्यास के केन्द्र में है लखनऊ के निकट का शिवपाल गंज गाँव। जिसे स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की मूल्यहीनता का प्रतीक समझा जा सकता है। 'रागदरबारी' एक ऐसा उपन्यास है जो गाँव की कथा के माध्यम से आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता को सहजता और निर्ममता से अनावृत करता है। डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर के अनुसार "रागदरबारी स्वातंत्र्योत्तर परिस्थिति के संयक, व्यापक परिवेश को समेटनेवाला जीवंत दस्तावेज है और अनेक परंपरागत औपन्यासिक तत्वों को एक ओर ठेलकर रचनात्मक स्तर पर कुछ नए मोड़ देने का प्रयत्न करता है।"[1] यह शुरू से आखिर तक इतने निस्संग और सोद्देश्य व्यंग्य के साथ लिखा गया हिन्दी का पहला उपन्यास है।

उपन्यास की कथा का मुख्य केन्द्र 'शिवपालगंज' है, जो न गाँव है और न ही कोई कस्बा। उसकी पहचान दोनों के बीच की है। लेकिन यह कथा भारत के किसी भी गाँव की

---

1. डॉ. सुरेश पटेल - श्रीलाल शुक्ल : एक अध्ययन - पृ.सं. 31

हो सकती है। मुख्य समस्या शिवपालगंज के कॉलेज की है किन्तु अन्य सारी समस्याएँ - स्वार्थ, मूल्यहीनता, अमानवीयता, अवसरवाद, छल प्रपंच नैतिक गिरावट, कुटिल राजनीति आदि इसी के साथ जुडी गयी है। उपन्यास का नायक रंगनाथ एम.ए. परीक्षा देकर अपने मामा वैद्यजी के घर शिवपालगंज में कुछ दिन रहने के लिए आता है। वह एक तटस्थ दर्शक के रूप में पक्ष-विपक्ष की बातें सुनता है। दोनों पक्षों की बातें मुख्यतः इंटर-कॉलेज से संबद्ध है। वैद्यजी कॉलेज के मैनेजर है, को-ऑपरेटिव यूनियन तथा गाँव सभा में भी उसके चहेते हैं। इंटर कॉलेज, कॉलेजवाली राजनीति, अध्यापकों की गुटबन्दी, दूषित न्याय व्यवस्था, विश्वविद्यालयों की दशा, नियुक्तियों में भाई-भतीजावाद, आधुनिक शिक्षा पद्धति जैसे अनेक समस्याओं को उपन्यास में स्थान मिला है। उपन्यास शिवपालगंज में घटित होते हुए भी समस्त भारत में व्याप्त स्थितियों को प्रस्तुत करता चलता है।

को-ऑपरेटिव यूनियन में होनेवाले गबन, नकलनवीस द्वारा नकल के लिए लंगड से रिश्वत माँगना, रिश्वत न देने पर उसके सैकडों चक्कर लगाना, देश में अमीर तथा गरीब के लिए अलग-अलग कानून ये सभी उपन्यास को समकालीन बनाकर वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक चेतना से परिचित कराते हैं। लेखक ने पूरा उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है। 1986 में एक दूरदर्शन धारावाहिक के रूप में इसे लाखों दर्शकों की सराहना भी प्राप्त हुई है।

4.16 रागदरबारी का नाट्यरूपान्तर - रंगनाथ की वापसी

श्रीलाल शुक्ल जी के उपन्यास 'राग दरबारी' को गिरीश रस्तोगी जी ने 'रंगनाथ की वापसी' नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। 'रागदरबारी' उपन्यास में नाटकीयता का सौन्दर्य तो अनंत है। यह उपन्यास बेतरतीब घटना प्रसंगों का, असंबद्ध कथानक का और

बहुत सारे पात्रों का बृहद उपन्यास है। न कोई क्रम, न आरंभ, अंत या पात्रों का बना-बनाया व्यक्तित्व भी नहीं। देशव्यापी परिस्थितियों से, व्यंग्य से, राजनीति, धर्म, शिक्षा, समाज, अदालत, चोरी, डकैती, थानेदारी आदि के प्रसंगों से देश का चरित्र उभरता है। ऐसा एक उपन्यास का नाट्यरूपान्तर करना सबसे कठिन था। गिरीश रस्तोगी के शब्दों में "एक ओर इसका नाट्यरूपान्तर असंभव सा लगा और रह-रहकर इसका देशव्यापी व्यंग्य और मानवीय संवेदना आकृष्ट भी करती रही। एक बार नहीं, उपन्यास को कई बार पढा, कम से कम दस बार। उसके लक्ष्य को और उसे दर्शकों के सामने पहूँचाने की दृष्टि के साथ पहले उपन्यास की रूपरेखा मस्तिष्क में बनी, फिर कागज़ पर आयी। एक ड्राफ्ट। फिर उपन्यास पढ़ना, फिर कुछ और बिन्दु, फिर दूसरा ड्राफ्ट।"[1] नाटक में उपन्यास के लक्ष्य से सीधे जुडे तीन केन्द्र उजागर हुए है : कॉलेज, कोओपरेटिव यूनियन और गाँव सभा। उपन्यास में कॉलेज पक्ष पर ज्यादा बल होने के कारण नाट्यालेख में भी वे दृश्य ज्यादा उभारे गये हैं।

शिवपालगंज का छंगामल कॉलेज नाटक का केन्द्रीय घटनास्थल है। इसी कॉलेज के माध्यम से समस्त शिवपालगंज ही नहीं समूचे देश की दशा का परिचय प्राप्त होता है। प्राचीन दरबारी संस्कृति के प्रतीक गाँव के सर्वस्व वैद्यजी इस संस्था के मैनेजर, नेता, देवता एवं भाग्य-विधाता है। नाटक में देख सकते हैं कि गाँव के विकास के लिए सहकारी संघों का आयोजन हो जाता है। लेकिन ये संघ वैद्यजी जैसे लुटेरों के हाथ के शिकार बन जाते हैं। कोओपरेटिव यूनियन में गबन होता है। गबन में वैद्यजी के भी हाथ हैं। इस मुद्दे को नाटककार ने प्रस्तुत कथन से सार्थक बना दिया है। वैद्यजी का कहना है "क्या स्त्रियों की

---

1. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना - पृ.सं. 39

तरह फुसफुसा रहा है? कोओपरेटिव में गबन हो गया तो कौन-सी बडी बात हो गयी? कॉन सी यूनियन है जिसमें ऐसा न हुआ हों?.... हमारी यूनियन में गबन नहीं हुआ था, इसलिए लोग हम पर संदेह करते थे। अब तो हम कहते हैं कि हम सच्चे आदमी है। गबन हुआ है और हमने छिपाया नहीं।"[1] उसके अनुसार गबन होना सरकारी संपत्ति की नियति है।

वर्तमान शैक्षिक पद्धति पर नाटककार ने ज़ोर दिया है। छंगामल इंटर मीडियट कॉलेज के विद्यार्थी केवल इमारत के आधार पर कह सकते हैं कि "वे असली भारतीय विद्यार्थी है। .....हमारे देश को इंजीनियर - डॉक्टर पैदा तो करना ही है। यह शुरुआती काम छंगामल विद्यालय इंटरमीडियट कॉलेज भी कर रहा है।"[2] छात्रों को पढने में रुचि नहीं है क्योंकि महत्वपूर्ण प्रश्न वैसे भी उसे बता दिये जाते हैं तथा परीक्षा में नकल करना वहाँ का आम रिवाज़ है। अध्यापक क्लास में केवल बहस करते रहते हैं और पालिटिक्स बकबकाते हैं। वे वर्तमान शिक्षा पद्धति को सडक पर पडी हुई कुत्तिया मानते हैं जिसे लात मारने के लिए सब स्वतंत्र हैं। नाटक में रुप्पन का कहना है "यहाँ सभी मास्टर कुत्ते-बिल्लियों की तरह लडते हैं। टीचर्स रूम में वह गुंडागर्दी होती है कि क्या बनायें। वही हें-हें, ठें-ठें, फे-फें।"[3] छंगामल कॉलेज की स्थापना तो राष्ट्र के हित में हुई थी। इसलिए उसमें और कुछ हो या नहीं, गुटबन्दी काफी थी।

वर्तमान समाज में व्यक्ति की योग्यता का कोई महत्व नहीं है। योग्य से योग्य व्यक्ति प्रत्याशी होने पर भी नियुक्ति उसी की होती है जो नियुक्ति का धन्धा करने करानेवालों

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 11
2. वही - पृ.सं. 6
3. वही - पृ.सं. 13

के बीच काफी इन्वेस्ट करता है। नाटक में इस मुद्दे को काफी ज़ोर दिया है। नाटक में खन्ना और गयादीन के बीच के संवाद इस बात की पुष्टि करते हैं-

"खन्ना : आप देखिए न, इसी जुलाई में उसने अपने तीन रिश्तेदार मास्टर रखे हैं। उन्हीं को हमसे सीनियर कर दिया है। कुनबापरस्ती का बोलबाला है। बताइये, हमें बुरा न लगेगा?

गयादीन : बुरा क्यों लगेगा भाई? तुम्हीं तो कहते हो कि कुनबापरस्ती का बोलबाला है, वैद्यजी के रिश्तेदार न मिले, बेचारे ने अपने ही रिश्तेदार लगा दिये.... यही आज का युग धर्म है। जो सब करते हैं वही प्रिंसिपल भी करता है। कहाँ ले जाय बेचारा अपने रिश्तेदारों को?....।"[1]

आज शिक्षा संस्थाएँ शासक के इशारे से चलती है। जहाँ शासक और सत्ता ही भ्रष्ट हो वहाँ सत्य, ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा जैसे शब्दों का कोई मतलब ही नहीं रह जाता।

न्याय भगवान का दूसरा रूप है। सच को उजागर करना और उसके अनुसार कर्तव्य निर्धारण ही न्याय है। लेकिन आज कानून अंधा है और इसलिए न्याय भी सत्य से परे हो सकता है। 'रंगनाथ की वापसी' में दिखाता है कि कार्यपालिका और न्यायपालिका में जो भ्रष्टाचार है उसके लिए नौकरशाहों की लालफीताशाही और राजतंत्र की निकम्मी दुर्न्यायव्यवस्था ज़िम्मेदार है। नाटक में वाचक का कहना है "यही है हमारी न्याय व्यवस्था। सवाल-जवाब का अंतहीन सिलसिला। नतीजा - फैसला कुछ भी हो असल चीज़ है सिर्फ मुकदमेबाजी और उसके पैतरे।"[2] कानून ईमानदार और बेक्सूर को सजा देने का काम

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 21
2. वही - पृ.सं. 26

करता है। नाटक में देख सकते हैं कि लंगड सात साल से न्याय के लिए लड रहा है लेकिन उसकी अपंगुता से न्यायपालिका अधिक अपाहित और अपूर्ण है। नाटक में लंगडे और रंगनाथ के बीच के संवाद इसको बयान करते हैं-

"लगड : नकल बनाकर पन्द्रह दिन तक रखते हैं। कोई न ले तो फाड देते हैं। मुझे यह मालूम न था।

रंगनाथ : देखो, लंगड। तुम्हारे कायदा-कानून जानने में कुछ नहीं होता। जानने की बात सिर्फ एक है कि तुम जनता हो और जनता इतनी आसानी से नहीं जीतती।"[1]

सत्य, उदारता, नैतिकता सब न्याय व्यवस्था के लिए ना के बराबर हो गया है।

उपन्यास जिस जगह समाप्त होता है मंच पर वह दर्शकों के लिए हास्य का अनुभव हो सकता था। उपन्यास के अंत में देख सकते हैं कि वहाँ एक मदारी ज़ोर-ज़ोर से डुगडुगी बजा रहा है। दोनों बंदर मदारी के सामने गंभीरतापूर्वक मुँह फुलाकर बैठे थे। ऐसा लग रहा था कि जब वे उठेंगे तो भरतनाट्यम से नीचे नहीं नाचेंगे। नाटक में थोडा हेर-फेर करके रंगनाथ के लंबे स्वगत कथन के बाद देश की समूची स्थिति और मानवीय करुणा दोनों को एक साथ सामूहिक संकेतों द्वारा उभारे गये हैं। जैसे "तुम मंझोली हैसियत के मनुष्य हो और मनुष्यता की कीचड़ से फंस गये हो। कीचड से बचो। यह जगह छोडे। यहाँ से पलायन करो। और अगर तुम्हें यहीं रहना पडे तो अलग से अपनी एक हवाई दुनिया बना लो। ऐसी हवाई दुनिया जिसमें बहुत से बुद्धिजीवी आँख मूंदकर पड़े हैं। होटलों, क्लबों, काफी हाउसों में। कलकत्ता, लखनऊ, दिल्ली की खोखली इमारतों में। जहाँ कभी न खत्म

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 36

होनेवाले सेमिनार, गोष्ठियाँ, षडयंत्र चल रहे हैं। काम मत करो, बातें करो। शब्दों को उछालो। ....जहां भी जगह मिले छिप रहो। भागो, भागो, यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।"[1] आरंभ से ही दर्शकों की मानसिक भूमि को उपन्यास की मूल संवेदना की सही पकड़ के लिए तैयार करना और कम-से-कम समय में उपन्यास के कथ्य को चुस्त ढंग से संप्रेषित करना एक कठिन कार्य था। इसलिए आरंभ में दो-तीन स्थानों पर वाचक का प्रयोग किया गया है। साथ ही कुछ प्रसंगों को पृष्ठभूमि से कमेण्ट्री द्वारा भी दिये गये।

पात्र परिकल्पना में मुख्य रूप से वैद्यजी के इर्द-गिर्द घूमनेवाले पात्र, विरोधी वर्ग के पात्र, आम जनता के प्रतिनिधि पात्र, युवा वर्ग आदि आते हैं। नाटक के प्रमुख पात्र वैद्यजी की सारी योजनाएँ उसके चबूतरे पर बनती है और उसका विरोध पुलिया पर होता है। इसलिए वैद्यजी का चबूबरा नाटक का केन्द्रीय स्थल बन जाता है। नाटक में वैद्यजी जैसे पात्र के ज़रिए आधुनिक देशसेवक नेताओं के यथार्थरूप उजागर किया है - "हर बडे राजनीतिज्ञ की तरह वे राजनीति से नफरत करते हैं और राजनीतिज्ञों का मज़ाक उठाते हैं और देशसेवा करना अपना परम धर्म मानते हैं।"[2] उसके अनुसार गाँव का उद्धार करने के लिए तीन चीजें अधिकार में होना ज़रूरी है - कॉलेज, यूनियन और गांव सभा। इसलिए वैद्यजी कॉलेज के मैनेजर हैं, कोओपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर भी गाँव सभा का प्रधान भी वही है। सीधे के लिए सीधे और हरामी के लिए खानदानी हरामी।

कॉलेज के प्रिंसिपल वैद्यजी का अपना आदमी है। इसकी सबसे बडी योग्यता वैद्यजी की चापलूसी करना, कॉलेज में गुटबन्दी, मारपीट, गाली-गलौज, और नोटिस -

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 32
2. वही - पृ.सं. 6

वरखास्तगी के साथ आतंक का पूरा-पूरा प्रबंध करनी है। वह खर्च का फर्ज़ी नक्शा बनाकर कॉलेज के लिए ज्यादा से ज्यादा पैसा खीच लेता है। जब वह फर्ज़ी नक्शा बनाता है तो बडे से बडे ओडीटर भी उसमें गलती नहीं निकाल सकता। कॉलेज के अधिकांश मास्टर जैसे मालवीय, मोतीराम आदि प्रिंसिपल के अपने आदमी है।

वैद्यजी के सबसे छोटे पुत्र और उस इलाके के जननायक है रूप्पन बाबू। स्थानीय कॉलेज की दसवीं कक्षा में वह पढता है। पढने से, खासकर दसवीं कक्षा में पढने से उसे बहुत प्रेम है और यह उनकी गलती नहीं है। यह तो देश की शिक्षा पद्धति की नाकामयाबी है। उसकी नज़र में जो लड़के पास हो जाते हैं वे बेशर्म लड़के हैं और ऐसी बेशर्मी कुछ ही लडके करते हैं। वैद्यजी का बडा बेटा है बद्री पहलवान। वह अपने बाप के समान भ्रष्टाचार में लिप्त है। खन्ना तथा गयदीन वैद्यजी के निर्णयों का विरोध करनेवाले हैं। लंगड आम जनता के प्रतिनिधि पात्र के रूप में आता है जो सात साल से न्याय के लिए लड रहा है।

रंगनाथ नाटक का प्रतिनिधि पात्र है। रंगनाथ को केन्द्र में रखकर सारी स्थितियों को ज्यादा सहज और अर्थपूर्ण लगाने की कोशिश की गयी है। क्योंकि रंगनाथ स्वयं ही तो द्रष्टा और भोक्ता है उससे अच्छा पात्र कौन हो सकता है, जिससे सूत्रधार या उद्‌घोषक का कार्य लिया जाय। नाटक में उसका परिचय इस प्रकार देता है कि "ये हैं रंगनाथ! इतिहास में एम.ए है। ठंडे बुद्धिजीवी की तरह है। हाथ पैर नहीं हिलायेंगे, दिमाग में बहुत रखेंगे। यानी सोचना इनका काम है और मौका आने पर भाग जाना इनकी मजबूरी है।"[1] शिक्षित नवयुवकों की पलायनवादिता को नाटक में रंगनाथ के माध्यम से पेश किया गया है।

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 5

नाटक में बहुत से पात्रों जैसे, कुसहर, रामधीन, जज, वकील, सरपंच, अग्रवाल, युवक, जोगनाथ आदि को मंचीय सीमाओं के कारण छोडना पडा है। नाटक में वकील और जज के स्वर नेपथ्य से सुनाया गया है। केवल गवाह या मुजरिम को प्रत्यक्ष कटघरे में रख गया है।

नाटक की संवाद योजना अपने आपमें बहुत शक्तिशाली एवं सार्थक है। संवाद के जरिए तत्कालीन परिस्थितियों के असली चेहरे को उतारने में नाटककार सफल निकली है। नाटक में रुप्पन का कहना है "सच्चाई किस चिड़िया का नाम है? किस घोंसले में रहती है? कौन से जंगल में पायी जाती है? यह शिवपालगंज है। यहाँ यह बताना मुश्किल है कि क्या सच है क्या झूठ है। ...शिवपालगंज में रहना हो तो इसी तरह रहा जाएगा। यहाँ गांधी महात्मा बनने से काम न चलेगा।"[1] प्रजातांत्रिक प्रणाली असफल और होती रहती है। रंगनाथ का कहना है "दरअसल जनतंत्र अपने यहाँ एक तमाशा है, जिनकी जान मदारी की भाषा है।"[2] देश में फैला भ्रष्टाचार व्यक्ति से शुरू होकर समाज तथा देश तक फैल गया है इस सच्चाई को संवादों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास रूपान्तरकार की ओर से हुआ है।

उपन्यास में प्रयुक्त ग्रामीण भाषा का प्रयोग नाटक में भी हुआ है। बीच-बीच में गजहा, कुकरहाव जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। नाटक में ज्यादाधिक व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। देश की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों के खोखलेपन को दर्शाने में यह भाषा सफल सिद्ध हुई है। नाटक में वैद्यजी का कहना है "देखो न, प्रत्येक बडे नेता ने

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 35
2. वही - पृ.सं. 22

अपना-अपना विरोधी पकड रखा है। यह जनतंत्र का सिद्धान्त है। विरोधीगण अपनी बात बकते रहते हैं और नेतागण चुपचाप अपनी चाल चलाते रहते हैं।"[1] प्रिंसिपल के एक-एक शब्द उसकी कुटिलता का प्रमाण करता है - "जगह खन्ना के जाने से हुई या मालवीय के मरने से आपको इससे क्या मतलब? आपके घर का बाग है, आम खाइये। पेड क्यों गिन रहे हैं?.... मैं तो तुम्हें घर का आदमी मानकर कह रहा हूँ। आखिर करोगे क्या? कहीं न कहीं नौकरी तो करोगे न? ....इससे कहाँ तक बचोगे, बाबू रंगनाथ? जहाँ जाओगे तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी।"[2] वैद्यजी जैसे पदलोलुप नेता, बूढी पहलवान जैसे गुण्डे, प्रिंसिपल जैसे स्वाभिमान लोगों की नकली मुखौटे को उतारने में नाटक की भाषा सफल सिद्ध हुई है।

'रंगनाथ की वापसी' की प्रस्तुति मुक्ताकाशी मंच पर हुई है। ताकि एक बिखरा हुआ प्राकृतिक वातावरण उसे एक विशेष संदर्भ, अर्थ और सौन्दर्य दे सकता है। इस दृष्टि से एक पुरानी इमारत, रेलिंग, सीढियाँ वैद्यजी की हवेली बन गया है। कुछ हटकर ग्राम सभा के दृश्य की कल्पना और पूरी मंचीय कल्पना के दो छोरों पर अदालत के दृश्य भी उभर आते हैं। रंगोपकरणों में पोस्टर और कलेंटर प्रमुख है।

नाटक में दृश्य परिवर्तन के लिए प्रकाश योजना का प्रयोग किया गया है। नाट्यालेख में चोरी के प्रसंग इतनी तीव्र गति और चुस्त दृश्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं कि उसका सौन्दर्य, व्यंग्यार्थ, गत्यात्मकता सब पूरे माहौल में छा गये हैं। सारी परिस्थितियों को जैसे भीड, नारे, यूनियन के जलसे, चुनाव आदि दृश्यों को कल्पना द्वारा

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 12
2. वही - पृ.सं. 38

अधिक संक्षिप्त, सांकेतिक और दृश्य क्रियाओं का अनिवार्य अंग बनाकर रचने की कोशिश की गयी है।

नाटक में गीत-संगीत का प्रयोग भी हुआ है। नाटक की शुरुआत ही शहनाई पर रागदरबारी की धुन से होती है। बाद में जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक का 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से...' गीत की योजना भी हुई है। गीत पर पात्रों के कदमों का आगा-पीछा करना नाटक में निहित व्यंग्य को ज़्यादा प्रभावशाली बना देता है। नाटक में एक स्थान पर 'नौटंकी धुन' का प्रयोग भी हुआ है जैसे - "तेरी बातों से जाहिर मुझे यह हुआ। इश्क तेरा रहा किसी कगाल से।"[1] - ये पंक्तियाँ नाटक में प्रस्तुत ग्रामीण परिवेश को उतारने में काबिल निकली है। संगीत योजना में कहीं करुण संगीत, कहीं स्वप्न संगीत, पलायन संगीत आदि का प्रयोग हुआ है। शब्द योजना का प्रयोग जैसे रेलगाड़ी और इंजन की सीटी की धुंधली आवाज, कीर्तन की ध्वनि, मंदिर की घंटों की आवाजें, बैड-ध्वनि, डुगडुगी की आवाज आदि नाटक को ज्यादा संप्रेषणीय बना दिया है। कुलमिलाकर 'रागदरबारी' का 'रंगनाथ की वापसी' नाम से किया गया नाट्यरूपान्तरण रंगमंचीय दृष्टि से सराहनीय है।

4.17 कभी न छोडें खेत - जगदीश चन्द्र

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में जगदीशचन्द्र अपनी एक विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। उनकी रचनाओं में शहरीय - ग्रामीण दोनों ही स्थितियों का चित्रण हुआ है। फिर भी ग्रामीण जीवन के प्रति वे ज्यादा सतर्क है। ग्रामीण जीवन की अनेक विषमताओं और जटिलताओं को उन्होंने अपनी रचनाओं में उजागर करने का प्रयास किया है। 'कभी

---

1. गिरीश रस्तोगी - रंगनाथ की वापसी - पृ.सं. 19

न छोडें खेत' जगदीशचन्द्र के एक सशक्त उपन्यास है जो मुख्य रूप से ग्रामीण परिवेश पर आधारित है। इस उपन्यास के संबन्ध में डॉ. रणवीर रांग्रा की प्रतिक्रिया उल्लेख्य है - "यह उपन्यास पंजाब के जाटों में नस-नस में व्याप्त उस अदम्य प्रतिकार भावना का बडा कारुणिक चित्र पेश करता है जो पुश्तैनी बैर को कभी समाप्त नहीं होने देती और उनके जीवन से सुख समृद्धि को दूर रखती है। हाल ही में राष्ट्रीय चेतना ने जो करवट बदली है उससे उन लोगों की मनोवृत्ति में कुछ परिवर्तन आया होगा पर कुछ वर्ष पूर्व तक तो स्थिति इतनी ही शोचनीय भी जितनी इस उपन्यास में चित्रित हैं।"[1] कभी न छोडें खेत में वैयक्तिक अहम् तथा प्रतिशोध भावना का यथार्थ एवं वीभत्स रूप भी प्रस्तुत हैं।

स्वतंत्रता के बाद बदले हुए ग्रामीण परिवेश में किसानों की पूँजीवादी और सामंतवादी मिले-जुले संस्कारों के कारण गुटबंदी और खून-खराबा उपन्यास की कथावस्तु का प्रारंभिक बिन्दु है। गाँव के दो बड़े किसान परिवारों - नंबरदारों और नीलोवालियों के मध्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आनेवाली दुश्मनी ही कथा का केन्द्रबिंदु है। नीलोंवालियों और नंबरदारों के मध्य इस संघर्ष का मुख्य कारण जसवंत कौर है। क्योंकि सामंतों के मध्य स्त्री, संघर्ष का प्रमुख कारण बनती है। गाँव में आम आदमी इन सामंतों के भय और अत्याचार से पीडित हैं। संघर्ष के परिणामस्वरूप मुकदमे के लिए दोनों पक्ष झूठे गवाहों को तैयार करते हैं। इस गवाही के लिए दोनों पक्ष गरीब दलित युवक शंकर पर दबाव डालते हैं। लेकिन वह इसे स्वीकार नहीं करता तो वे उसे बुरा-भला कहते हैं।

इस प्रकार के सामंती संघर्ष का अंत निराशाजनक ही होता है। नंबरदारों के परिवार में करतार की मृत्यु हो जाती है। दोनों ही परिवार आर्थिक रूप से जर्जर हो जाते

1. डॉ. कैलाशनाथ पांडेय - उपन्यासकार जगदीशचन्द्र - पृ.सं. 49

हैं। यह उपन्यास पंजाब के एक गांव का ही चित्र प्रस्तुत नहीं करता अपितु संपूर्ण भारत के ग्रामीण जीवन की एक विशद झांकी प्रस्तुत करता है। पुश्तैनी दुश्मनी केवल नीलोवालियों और नंबरदारों में ही नहीं, देश के प्रत्येक गाँव के जाटो, ठाकुरों, गुजरों आदि मध्यवर्गीय किसानों में व्याप्त है।

उपन्यास में पुलिस विभाग की निष्क्रियता और अमानवीयता न्यायालयों की मुह फाडकर रिश्वत मांगना, अस्पताल में चिकित्सकों के भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण आदि भी प्रस्तुत किये गये हैं। धार्मिक मठों के पाखंडों का पर्दाफाश भी इसमें किया गया है। महाजनों द्वारा किसानों का शोषण महाजनी सभ्यता का चित्र प्रस्तुत करता है। रिश्तेदार - संबंधियों की स्वार्थपरता टूटते सामाजिक संबंधों का परिणाम है। उपन्यास के कथाविन्यास में रूप और भाषा के स्तर पर आंचलिकता का पुट दिखाई देता है जो कि पंजाब की मिट्टी की सोध है। इससे भाषा प्रभावशाली और सजीव हो उठी है।

4.18 कभी न छोडें खेत - नाट्यरूपान्तर

जगदीशचन्द्र जी के उपन्यास 'कभी न छोडें खेत' को एम.के. रैना तथा अमिताभ श्रीवास्तव ने उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। एम.के. रैना के शब्दों में "यह सामाजिक ढाँचे में बँधे आदमी के रिश्तों का ज़मीन से उसके जुडने का तथा 'व्यवस्था' से उसके संबंधों का सूक्ष्म अध्ययन है।"[1] नाटक में उपन्यास के लक्ष्य से सीधे जुडे दो स्थान मुख्य रूप से उजागर हुआ है - एक नंबरदारों का परिवार, दूसरा नीलोवालियों का परिवार। इसके जरिए उपन्यास के मक्सद को सही माईने में पेश करने का प्रयास नाटककार के

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत, भूमिका

बखूबी निभाया है। उपन्यास में चित्रित सारे समस्याओं जैसे ज़मीन को लेकर उपजे संघर्ष, ठेठ ग्रामीण कृषि व्यवस्था, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा चिकित्सा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार सबको नाटक में कुछ कॉट-छाटकर उभारने की कोशिश की हुई है।

उपन्यास के समान 'कभी न छोडें खेत' नाटक में भी ठेठ ग्रामीण कृषि व्यवस्था का चित्रण किया गया है। वस्तुतः किसान के दो रूप है - भूमिदार किसान तथा दूसरा भूमिहीन किसान। किसान अपने खेत को अपने पुत्र से भी ज्यादा प्यार करता है। वह हमेशा यही सोचता है सोना उगलनेवाली ज़मीन कैसे बच पायेगा। नाटक में मुंशी बाबूराम का कहना इसका प्रमाण है "मैं सोच रहा था कि कोई और चीज़ बेचकर करजा मिल सकें तो फसल बाद में बेची जा सकती हैं। ...जाटों के पास तो दो ही चीज़ें है.... फसल और ज़मीन.... इन्हीं का आसरा है।"[1] पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था से जुडा किसान समुदाय अपनी जीविका को लेकर चौकन्ना रहता है। यह सदैव विकल्पहीनता की जिन्दगी जीता है। इस सच्चाई को उपन्यास के समान नाटक भी उजागर किया है।

गाँव के संदर्भ में ज़मीन समृद्धि तथा सामाजिक स्तर का प्रतीक है। जिसकी प्राप्ति के लिए, रक्षा के लिए वह संघर्ष, हत्या, डकैती, षड्यंत्र, बेईमानी और प्रेम करता है। उपन्यास में नीलोवालियों और नंबरदारों का संघर्ष इसका उदाहरण है। इसे नाटक में उसी रूप में प्रस्तुत किया है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए नाटक में मिलखा सिंह का कथन है "जन (स्त्री) और ज़मीन जाट कौम की सबसे बडी दौलत है। एक उसके लिए आदमी जनती है और दूसरी अनाज। इन दोनों के पीछे वे जान लडा देते हैं।"[2] गाँव के आम

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 64
2. वही - पृ.सं. 12

आदमी इन सामंतों के अत्याचारों से पीडित है। दोनों की एकता भी आम आदमी के लिए अत्याचार ही लेकर आएगी। नाटक में मुंशी बाबूराम इसकी ओर संकेत करते हुए कहता है "अगर ये आपस में एक हो जाए तो इज्जत से दिन काटना मुश्किल हो जाए। इनकी कस्सी जिन्नी जल्दी जमीन पर उठती है, उतनी जल्द ही हम पर भी उठ सकती है। ....हमें ज़मीन में जिंदा भी गाड दें तो किसी को कानों कान खबर नहीं होगी।"[1] अविवेकपूर्ण गतिविधि से संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती है और यह स्थिति सर्वथा हानिकारक बन जाती है।

शासन तंत्र मुख्यतः न्यायालय, व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका इन तीनों अंगों के माध्यम से अपना कार्य करता है। उपन्यास के समान 'कभी न छोडें खेत' नाटक में भी शासन तंत्र के इन तीनों क्षेत्रों में व्याप्त खोखलेपन को अंकित करने का प्रयास किया गया है। नाटक में इस मुद्दे को काफी ज़ोर दिया गया है। नाटक में देख सकते हैं कि नीलोवालियों और नंबरदारों के बीच के संघर्ष के बाद दोनों पक्षों से छह लोग गंभीर रूप से घायल हो जाते हैं। दोनों ओर से पुलिस में रिपोर्ट दर्ज होती है। पुलिस जाँच करने के नाते गाँव आती है। वह जाँच के नाम पर रुपयों की वसूली करती है। हवलदार प्रह्लाद सिंह रिश्वत लेने में माहिर है। वह भगवान सिंह से कहता है - "देखो बाबा, कानून के सामने न रिश्तेदारी चलती है, न दोस्ती यारी। थानेदार साहब फौजदारी के केस में तीन हज़ार रुपए से कम नहीं लेते। क्योंकि तुम्हारा रिश्तेदार उनका दोस्त है, मैं उन्हें दो हज़ार में राजी कर लूँगा। बाकी दो सौ रुपए मेरे और सौ रुपए सिपाहियों के।"[2] हवलदार, बेचितसिंह के पक्ष से भी रिश्वत लेता है। हवलदार का यह कथन पुलिस शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की कलई खोल देता है - "और तो सब ठीक है, लेकिन मेरे लिए दो सौ रुपए कम है। दो सौ रुपए तो हॉलदारी

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 14
2. वही - पृ.सं. 26

के हो गये। दो सौ रुपया कलम-घिसाई का भी चाहिए। सारी रिपोर्ट तो मैं ही लिखूँगा। थानेदार तो सिर्फ उस पर दस्तखत करेगा। और सौ रुपये थाने के सिपाहियों के लिए। उनके लिए भी नुकल-पानी होना चाहिए।"[1] आज पुलिस शब्द अपने-आपमें भय, विश्वास तथा क्रूरता का परिचायक बना हुआ है।

देश की शासक व्यवस्था समाज के गरीब या पिछडे वर्गों को हमेशा उपेक्षा की नजरों से देखती है। हर तरफ का दबाव केवल पिछडे लोगों पर पडता है, वे चौतरफा शोषण के शिकार है। नाटक में देख सकते हैं कि करतार की मृत्यु पर गवाही देने के लिए दोनों पक्ष एक गरीब दलित युवक शंकर पर दबाव डालते हैं। जैसे फेरुमल का कहना है "मैं तो यही कहूँगा कि तू नंबरदार के हक में गवाही देना मान ले। बडे आदमी से बिगाड पैदा करने में अपना नुकसान होता है। उसे क्या फर्क पडता है। वह गाँव में किसी से भी गवाही देने के लिए कहेगा तो उसे इनकार करना मुश्किल होगा।"[2] लेकिन शंकर गवाही देने के लिए तैयार नहीं होता तो उसे झूठे मुकदमें में फंसाने की धमकी दी जाती है - "इसका नाम भी फिसादियों में लिख दो। दस-पंद्रह दिन हवालत में रहने के बाद यह वादा मुआफ गवाह बनने के लिए मिन्नतें करेगा। साला जात का कमीन है, लेकिन अकड पठानों जैसी है।"[3] पुलिसवाले उसे सरकारी गवाह बनाने के लिए उसका तरह-तरह का शोषण करते हैं। उसे धमकाते हुए कहता है - "देख तू अपनी जात और औकात पहचान, अपनी हैसियत के मुताबिक बात कर। पुलिस के आगे बडे-बडे जगदीशदार, पहलवान, धन्ना सेठ, मुरब्बों के मालिक जमींदार सिर झुकाते हैं, तू किस खेत की मूली है। पुलिस का बैर मौत से बी बुरा

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 30
2. वही - पृ.सं. 48
3. वही - पृ.सं. 47

होता है।"[1] इस प्रकार पुलिस, जिस पर कानून और व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व है खुलकर इसका उल्लंघन करती है। नाटक इस पर करारा चोट करता है।

नाटक में न्यायव्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी हू-ब-हू पेश करने का प्रयास हुआ है। चाहे लाख अपराधी छूट जाएँ किन्तु एक निर्दोष को भी सज़ा न मिले इस सिद्धान्त पर टिकी है हमारी न्याय व्यवस्था। लेकिन आज सिद्धान्त को नीलाम कर दिया गया है। न्याय मिलने के लिए वकीलों पर बडे से बडे रकम खर्च करना पडता है। नाटक में रामदयाल वंचित सिंह से कहता है - "सरदार जी, माफ करना, उनकी फीस सुनकर आम आदमी तो गश खा जाता है। उनकी फीस पाँच हज़ार से एक पैसा कम नहीं है। काम के मुताबिक ही दाम होगा।"[2] यहाँ तक कि जजभी भ्रष्टाचार में में लिप्त है। रिश्वत लेकर वह फैसला रिश्वत देनेवाले के पक्ष में करता है। रामदयाल का कहना है "क्लब में उन्होंने मजिस्ट्रेट मित्र से बात की। वह कहने लगा कि अगर वह उसकी शानदार पार्टी कर दे तो फैसला उसके मुवक्किल के हक में जाएगा।"[3] इस प्रकार इस पूँजीवादी व्यवस्था का प्रत्येक अंग भ्रष्टाचार में डूबा हुआ है।

चिकित्सा क्षेत्र भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। मरणासन्न व्यक्ति की जान बचाना डॉक्टर का कर्तव्य है। लेकिन अस्पताल के डॉक्टर और नर्स आम आदमी के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं और उसे मौत के मुँह में धकेल देते हैं। अज्ञेय जी के शब्दों में "आज चिकित्सा कुशल हैं, कार्यक्षम है, दक्ष है पर उसमें कहीं करुणा नहीं है। दर्द की दया है पर

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 48
2. वही - पृ.सं. 58
3. वही - पृ.सं. 59

दर्द नहीं है। सफाई है। (वह अगर है!) पर सेवा नहीं है।"[1] नाटक में देख सकते हैं कि संघर्ष में घायल करतार सिंह अपने जीवन की अंतिम घडियाँ गिरता हुआ दम तोड़ देता है। नर्स अपनी ड्यूटी में पैर फैलाकर सोती है और डॉक्टर टिप्टी कमीशनर के बेटे की खाँसी, जुकाम का उपचार करने उसके घर भागता हुआ जाता है। करतार सिंह की मृत्यु के बाद उसके पोस्टमार्टम रिपार्ट को झूठी लिखने के लिए तथा झूठी रिपोर्ट न लिखने के लिए डॉक्टर को दोनों पक्षों की ओर से रिश्वत दी जाती है। नाटक में दलीपचन्द्र का कथन डाक्टरों के भ्रष्ट होने की गवाही देता है - "पारसाल एक ऐसा ही केस आया था। डॉक्टर सेठी ने पोस्ट मार्टम किया था। वह शरीफ आदमी था.... रुपया एक हज़ार लिया था उसने। मेरी मारफत ही काम हुआ था। यह डाक्टर लालची है, पाँच सात सौ फालत ही माँगेगा।"[2] इस प्रकार नाटक पुलिस विभाग में व्याप्त अमानवीयता, न्यायालयों तथा अस्पतालों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में काबिल निकला है।

उपन्यास में चित्रित सारे पात्रों को एक न एक रूप में नाटक में पेश करने का प्रयास हुआ है। एक ही पात्र द्वारा दो-तीन पात्रों की भूमिका अदा करने का प्रयास भी नाटक में हुआ है। नाटक में जसवंत और का चरित्र भारतीय ग्रामीण नारी का प्रतिनिधि के रूप में सामने आता है। वह परंपरागत रूढिवादी सामंती जीवन की संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर अपने स्वतंत्र जीवन का निर्माण करने में सक्षम है। वह दृढ़ इच्छाशक्ति रखती है। इसी इच्छा शक्ति के कारण वह कहती है "मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। मैं इनके मुँह में दहकती हुई लकडी देना चाहती हूँ। उनके बराबर खडी होना चाहती हूँ।"[3] स्वयं निर्देशक के शब्दों में "जहाँ बेटों

1.
2. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 87
3. वही - पृ.सं. 115

का अर्थ है जमीन के वारिस और रखवाले, वहाँ निःसंतान होना औरत के लिए श्रा है और घरवालों के लिए दुर्भाग्य; भाग्यशाली है रिश्तेदार, जिनके बेटे इस परिवार की संपत्ति के अधिकारी बन सकते हैं। ऐसी ही स्थिति में जसवंत कौर जैसी स्त्री उस समाज से विद्रोह कर उठती है जिसने उसे निःसंतान ठहराया है। घर और समाज में अपना स्थान फिर से पाने के लिए प्रतिशोध तथा स्व न्यायायिक भावना से प्रेरित होकर वह संतान प्राप्ति के लिए अग्रसर होती है।"[1] लेकिन ऐसा करने से इस जीत में उसकी हार ही निहित है। क्योंकि संतानोत्पत्ति से उसने फिर अपने परिवार को उस निरन्तर खून खराबे में झोंक दिया है।

नाटक में बेचित सिंह, जगत सिंह, करतार, नत्था सिंह, ठाकुर जैसे चरित्र सामंती विचारधारा वाले किसानों के आपसी संघर्ष को जीवंत रूप में प्रस्तुत करते हैं। फेरूमल और मुंशी जैसे चरित्र गाँव में व्याप्त पूँजीवाद को उसके वास्तविक रूप में प्रदर्शित करते हैं। सरदार सिंह और मेला सिंह के चरित्र निजी संबंधों में बढती स्वार्थपरता का स्वरूप उजागर करते हैं। डॉक्टर, दरोगा, वकील, दीवान, जज आदि के रूप में आये पात्र व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हैं।

नाटक की संवाद योजना अपने आपमें बहुत महत्वपूर्ण है। थाना, सरकारी दफ्तरों न्यायालय, चिकित्सालय आदि क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचारों को बहुत ही तेज़ी संवादों से पूरी दृश्यात्मकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास नाटककार ने किया है। जैसे नाटक में जनरैल का कहना है "हर आदमी के पास देने के लिए चार चीजें होती हैं - इज्ज़त, तन, मन और धन। इज्ज़त तो उसी वक्त चली जाती है जब आदमी थाने में बुला दिया जाता है। पुलिस से छुटकारा पाने के लिए बाकी तीन में से एक चीज़ जरूर देनी पडती है। धन तेरे पास नहीं

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं.

है कि दे-दिलाकर छुटकारा पा ले।"[1] यह संवाद पुलिस व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत करता है।

'कभी न छोडें खेत' नाटक की भाषा शैली पर आँचलिकता का पुट दिखाई पडता है जो कि पंजाब की मिट्‌टी की सोंध है। पंजाबी शब्दों का प्रयोग जाट पात्रों के चरित्र तथा परिवेश के अनुकूल किया गया है। जैसे नाटक में रुतनकौर कहती है "वाहंगुरा सबके बच्चों को सजी रखें। सब फलें-फूलें। लेकिन करतार लाखों में से एक है। ऐसे सोहने सुन्नखे घबरु विरले ही होते हैं। वह तो इस घर और गाँव क्या, सारे इलाके का शिंगार है।"[2] भाषा संपूर्ण ग्रामीण समाज की समूची संस्कृति, उसके सुख-दुःख, भाव-अभाव सबका दर्शन कराते हैं। नाटक में फेरूमल का कहना है "इसमें कोई शक नहीं है कि लडाई-झगडा, दंगा-फिसाद, मार पीट बहुत बुरी चीज़ है, आदमी का नाटक खून गिरे, किसी को अच्छा नहीं लगता। यहाँ कोई पराया आदमी तो बैठा नहीं। इनमें कभी-कभार का दंगा-फिसाद हमारे हक में अच्छा ही है।"[3] नाटक में दो-तीन स्थानों पर 'घाट-घाट का पानी पीना' जैसे मुहावरेदार शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। गाँव के शिक्षित पात्रों की भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का पुट दिखाई पडता है। जैसे-

"डॉ. गोपाल : सरजीकल स्पेशालिस्ट को कॉल भेज दो।

डॉ. सरधाना : सिस्टर, लाश मोरचुअरी में भिजवा दो। मैडिको-लीगल केस है। िसका पोस्टमार्टम होगा।"[4]

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं. 49
2. वही - पृ.सं. 16
3. वही - पृ.सं. 14
4. वही - पृ.सं.

उपन्यास पच्चीस अध्यायों में विभाजित हैं जो अनेकानेक कथासंदर्भों से भरा हुआ है। नाटक में कुल-मिलाकर बाईस दृश्य हैं। जिसमें अनावश्यक यथार्थवादी बारिकीयों पर ज़ोर न देकर कथावस्तु की ओर मुख्य रूप से ध्यान केन्द्रित करने की कोशिश की गयी है। इसी प्रकार नाटक में कई दृश्यों का संपादन भी ज़रूरी था। इसमें मुख्य रूप से पुलिस थाने के विस्तृत घटनाओं को काट-छाँटकर नाटक में प्रस्तुत किया है। दृश्य परिवर्तन के लिए नाटक में प्रकाश व्यवस्था का प्रयोग हुआ है। प्रातकाल को सूचित करने के लिए मुर्गी की पहली बाँग के साथ प्रकाश आता है। शाम का वक्त इस प्रकार चित्रित किया है जैसे "शाम का वक्त। दूर जोडिया ढाबाँ से शंख की आवाज़ आती है। कई कुत्ते उसकी आवाज़ में आवाज़ मिलाकर रोने लगते हैं।"[1] कथानक के भाव विन्यास को प्रकाश की उथल-पुथल से समझा ने का कार्य किया गया है।

'कभी न छोडें खेत' नाटक मुक्ताकाशी रंगमंच पर संपन्न हुआ है। इसका मंचन उतना ही सादा है जितना इसके पात्रों का जीवन। मुक्ताकाशी मंच के प्रयोग के द्वारा वातावरण की सही पकड एवं चित्रफलक का विस्तार दोनों एक साथ काम आये हैं।

4.19 छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान

नारी विमर्श की प्रखर चिन्तक और उपन्यासकार प्रभा खेतान का चर्चित उपन्यास है 'छिन्नमस्ता'। यह एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें नारी शोषण, उत्पीडन और संघर्ष के जीवन्त दस्तावेज को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अरविंद जैन के शब्दों में "छिन्नमस्ता को उच्चवर्गीय संयुक्त परिवार के विषैले और दम घोटू वातावरण से

---

1. एम.के. रैना - अमिताभ श्रीवास्तव - कभी न छोडें खेत - पृ.सं.

निकलकर अपने व्यापार और पूँजी कमाने बढाने के बाद व्यक्तित्व के विकास या बौद्धिक और मानसिक विकास के लिए हर संभव साहस (दुःसाहस) और प्रयास करती 'विद्रोही' स्त्री की आत्मकथा या आत्म विश्लेषण या आत्म संघर्ष के रूप में ही देखा जा सकता है। ....शायद पहली बार हिन्दी उपन्यास की नायिका परिवार, पूँजी और परंपरा की चौखट लांघ देशी-विदेशी सभी सीमाओं के उस पार तक स्त्री के पक्ष की वकालत के साथ-साथ एक 'खतरनाक' बौद्धिक विमर्श की जोखिम भी उठाती है।"[1] अपनी जिन्दगी में होनेवाले विविध प्रकार की अड़चनों का सामना करने में नारी कहाँ तक समर्थ है? क्या वह उसमें जीत पाएगी? इन सवालों के जवाब ढूँढने का प्रयास इस उपन्यास में ज़रूर हुआ है।

'छिन्नमस्ता' की नायिका प्रिया एक संभ्रात मारवाडी परिवार की बेटी है। वह बचपन से ही माँ तथा घरवालों की उपेक्षा का पात्र बनती है। प्रिया के पिता की मृत्यु अकाल में हुई थी। मृत्यु तक वह अपनी बेटी का बडा ख्याल रखता था। प्रिया की माँ कस्तूरी अपनी बेटी से नफरत करती है। प्रिया के जन्म से ही माँ की तबीयत खराब होने लगी थी इसलिए उसकी सभी मुसीबतों के कारण के रूप में वह प्रिया को मानती है। बचपन से ही प्रिया की परवरिश का भार नौकरानी दाई माँ पर था।

प्रिया की ज़िन्दगी पुरुषों द्वारा प्रताडित है। उसको बचपन से ही यौन शोषण का शिकार बनना पडा था। सबसे पहले प्रिया को अपने ही बडे भाई द्वारा यह बुरा अनुभव हुआ था। बाद में कॉलेज के दिनों में असीम से वह प्रेम करदती थी। असीम प्रिया को केवल शारीरिक सुख पाने के लिए चाहता है। बाद में कॉलेज के लेक्चरर प्रो. दत्ता द्वारा भी वह छली जाती है। प्रिया के लिए विवाह भी एक प्रकार का शोषण है। प्रिया का विवाह अग्रवाल

---

1. अरविंद जैन - औरत : अस्तित्व और अस्मिता - पृ.सं. 56

परिवार के धनाढ्य बेटा नरेन्द्र के साथ हुआ। पति के लिए वह मात्र उपभोग की वस्तु रही। पत्नी के रुचियों और ज़रूरतों को उसने नकारा।

नरेन्द्र के दोस्त फिलिप के कहने पर प्रिया चमडे का व्यवसाय शुरू करती है। उसमें वह सफल होती है और धन भी कमा लेती है। नरेन्द्र इस पर नाराज़ होता है। उसने प्रिया को व्यवसाय करने से मना कर लिया। लेकिन प्रिया अपने व्यवसाय छोडने के लिए तैयार नहीं हुई उसकी राय में व्यापार उसका आखिरी सहारा है। नरेन्द्र ने उसे तलाक कर दिया और बेटे संजू को अपने कब्जे में रख लिया। फिर भी प्रिया अपने व्यापार नहीं छोड़ी। वह स्वावलंबन का मार्ग अपनाती है। उसने आत्मविश्वास के साथ अपना व्यापार मन लगाकर किया। जो दुर्घटनाएँ उसके जीवन में हुई उनमें समाज किसी भी स्त्री से आत्मघात की अपेक्षा रखता है। परन्तु प्रिया जीवित रही छिन्नमस्ता बनकर। उसने समाज, परिवार तता अपने प्रयासों द्वारा खडी की गई समस्याओं की दीवारों को तोड़कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। प्रिया ने ससुर की छोडी हुई अधूरी ज़िम्मेदारियों निभाया। छोटी माँ की सेवा और ननद की शादी का भार उसने कंधों पर ले लिया। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र प्रिया का सृजन करते हुए प्रभा खेतान ने यह स्थापित किया है कि यदि स्त्री चाहे तो संपूर्ण विषम परिस्थितियों और विडंबनाओं को लांघकर अपने लिए एक ऐसा मार्ग तलाश कर सकती है जो उसे सफलता के शीर्ष तक ले जाए।

4.20 छिन्नमस्ता - नाट्यरूपान्तर

प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' को प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं निर्देशिक श्रीमति गिरीश रस्तोगी ने 'छिन्नमस्ता' नाम से ही नाट्यरूपान्तरित किया। उपन्यास की मूल संवेदना क्या है? मूल संवेदना और केन्द्रीय पात्रों को प्रस्तुत करनेवाले अन्य महत्वपूर्ण पात्र,

स्थितियाँ, उनसे बनते संकेत आदि को ध्यान में रखते हुए रस्तोगी जी ने इस उपन्यास का रूपान्तरण किया है। उपन्यास में जिन-जिन मुद्दों को प्रभा खेतान ने प्रस्तुत किया उन सारे मुद्दों को नाटकीय पद्धति के ज़रिए प्रस्तुत करने की कोशिश गिरीश रस्तोगी ने की है। लेकिन उपन्यास में जो बातें बडे विस्तार से कही गयी है उसे कुछ समेटकर बल्कि प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में गिरीश जी सफल निकली हैं। चाहे पुरुषवर्चस्ववाद हो, नारी शोषण हो, मूल्य विघटन हो या स्त्री प्रतिरोध उन्हें हू-ब-हू नाटक में पेश किया गया है।

'छिन्नमस्ता' नाटक और उपन्यास की सबसे बडी खूबी है दोनों के शीर्षक। 'छिन्नमस्ता' का शाब्दिक अर्थ है जिसका मस्तक कटा हो। यह एक 'मिथकीय प्रयोग' है। अर्थात् अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएं हाथ में लिए, मुंह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्तधारा को चाटते हुए, हाथ में खड्ग लिए, मुंडों की माला धारण किए विराजमान काली देवी। इस मिथक को शीर्षक के रूप में अपनाकर प्रभा खेतान ने अपने विज़न को रहस्य खोल दिया है। उसकी दृष्टि में यह आधुनिक नारी का सही रूप है, जिसे उन्होंने अपने उपन्यास का केन्द्रीय पात्र प्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रभा खेतान के इसी विज़न को नाटक में सुरक्षित रखने की कोशिश गिरीश रस्तोगी ने भी की है। उपन्यास में प्रिया का बचपन, बचपन में उस पर हुए अत्याचार, यौन शोषण आदि का व्यापक पैमाने में अंकन हुआ है। लेकिन नाटक का ढाँचा सीमित है, इसलिए उन मुद्दों को कुछ कॉट-छाँटकर ही रूपान्तरकार ने पेश किया है। नाट्यरूपान्तरकार की क्षमता ही उसमें पहचानी जा सकती है।

यौन शोषण यानी बलात्कार स्त्री के प्रति होनेवाला सबसे जघन्य अपराध है। 'छिन्नमस्ता' नाटक की नायिका प्रिया की जिन्दगी पुरुषों द्वारा प्रताडित एवं शोषित है। इस

मुद्दे को नाटक में ज़ोर दिया गया है। बडे भाई द्वारा यौन शोषण होने पर प्रिया ढाई माँ से हमेशा पूचती है "पा क्या होता है..... दाई माँ, बडे भैया मुझे ऐसे क्यों घूरते हैं? वह मुझे थप्पड़ मारते हैं, डाँटते हैं - दाई माँ, पाप क्या होता है?"[1] प्रिया कॉलेज के दिनों में असीम से प्रेम करती थी। इसे सच्चा प्रेम नहीं कह सकते, क्योंकि वह दोस्तों के बीच का एक उन्माद है। नाटक में असीमा का कहना है "तुम्हें नहीं भूलूँगा प्रिया। तुम्हें एक बार पाकर कोई भूल नहीं सकता।"[2] असीम प्रिया को केवल शरीरिक सुख पाने के लिए चाहता है, उसके इन शब्दों से यह स्पष्ट निकलता है। कॉलेज के लेक्चरर प्रो. दत्ता से भी प्रिया छली जाती है। वह केवल प्रिया का शरीर चाहता है। पर प्रिया अपने आपको उस के लिए समर्पित कर देती है। लेकिन उस आदमी ने प्रिया को धोखा देकर किसी दूसरे से शादी की। वह गुर्राया, "मूर्ख लडकी! मैंने कब कहा था कि मैं तुमसे शादी करूँगा? हम दोनों ने मौज की। बस बात खतम्।"[3] औरत पूरी ईमानदारी के साथ अपने आपको समर्पित करती है जहाँ पुरुष उसे भोगता मात्र है।

जब प्रिया का विवाह नरेन्द्र के साथ हुआ तो पति से भी वह छली जाती है। पति केलिए वह मात्र सेक्सुअल ओबजेक्ट थी। केवल रात के प्रथम प्रहर में ही नहीं, रात में, दिन में, शाम के वक्त-बेवक्त उसे केवल सेक्स की ज़रूरत है। नाटक में नरेन्द्र का कहना है "प्रिया, नहीं, तुम मेरी चीज़ हो.... लोग इतनी अच्छी चीज़ को देखकर लार टपकाएँ, इसके पहले मुझे स्वाद चखने दो।"[4] पुरुष की कामवासना और उसके लिए उपभोग की चीज़ बनने के लिए बाध्य स्त्री यहाँ उभरकर आती है।

---

1. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 22
2. वही - पृ.सं. 28
3. वही - पृ.सं. 31
4. वही - पृ.सं. 32

'छिन्नमस्ता' नाटक में उपन्यास की कथा के समान प्रिया चमडे का व्यवसाय शुरू करती है। एक युवती को अपने पद से ऊँची हैसियत पर देखना और उसके आदेशों का पालन करना पितृसत्तात्मक समाज के लिए असहनीय है। प्रिया को जब अपने व्यवसाय में उन्नति होती है तो उसे देश के भीतर और बाहर यात्रा करनी पड़ती है। दिन रात के बगैर उसे काम में जाना पडता है। उसका पति इस पर नाराज़ होता है। नाटककार ने प्रस्तुत कथन के द्वारा इस मानसिकता की पहचान करायी है। नरेन्द्र का कहना है "सुबह आठ बजे घर से निकलती हो तो सत आठ बजे शक्ल दिख जाय तो धन्य भाग्य हमारे। मैं कहीं चलने को कहूँ तो तुम थकी हुई हो, सर में दर्द हो रहा है, और अभी कोई तुम्हारा व्यापारी आ जाए तो तुरन्त उसे लेकर तुम खूब टहलने लगती हो। कहाँ से हँसी आ जाती है चेहरे पर।"[1] इस प्रकार नारी शोषण के, दैहिक शोषण के विभिन्न पहलू उपन्यास के समान नाट्यरूपान्तर में भी उभर आये हैं।

स्त्री प्रतिरोध को सशक्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास नाटक में हुआ है। परंपरा लीक से हटकर अपने लिए अलग रास्ता ढूँढनेवाली है आधुनिक नारी। पूर्व प्रचलित मानदंडों की अपेक्षा आज वह अपनी जगह के सृजन में कार्यरत है। समाज की सहानुभूति वह स्वीकार नहीं करती क्योंकि सहानुभूति उसके स्वत्वबोध को कम कर देती है। नाटक में देख सकते हैं कि प्रिया चमडे का व्यवसाय करके खूब पैसा कमा लेती है। इस पर नाराज़ नरेन्द्र के अनुसार प्रिया रुपयों के लिए काम करती है। लेकिन प्रिया अपनी 'आइडेंटिटी' के लिए बिज़नेस करती है। प्रिया नरेन्द्र से कहती है "नरेन्द्र, मैं व्यवसाय रुपए के लिए नहीं कर रही। हाँ चार साल पहले जब मैंने पहले-पहल काम शुरू किया था, मुझे रुपयों की भी

1. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 19

ज़रूरत थी। पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है।"[1] उसकी राय में व्यापार उसका आखिरी सहारा है। व्यापार उसकी मेहनत हैं विरासत नहीं। पति और पुत्र से वंचित होने पर भी उसने अपना व्यापार नहीं छोडा। दरअसल प्रिया की पहचान पति और पुत्र को त्यागने के बाद बनती है। उसे पता चलता है कि ईमानदारी, वफादारी, प्यार, समर्थन स्त्रियों के संदर्भ में मात्र शाब्दिक भ्रम है - "औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाये ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे।"[2] स्वावलंबन का मार्ग अपनाकर प्रिया अपने में विश्वास भर लेती है। इस आत्मविश्वास के सहारे वह असुरक्षा भाव से मुक्त होती है। वर्षों बाद हवाई जहाज़ में वह अपना पहला प्रेमी असीम से मिलती है तो असीम कहता है - "इंडिया टुडे में तुम्हारे बारे में पढ़ा था। तुम हमेशा विद्रोही रही हो।"[3] इसके जवाब में प्रिया कहती है, "असीम ! विद्रोह की भाषा मैं भूल चुकी हूँ। मैं अपनी जिन्दगी में क्रांति चाहती हूँ। मैंने अपनी जिन्दगी की तारीख काली पन्नों पर खुद लिखी है।"[4] उसकी राय में औरत को अपने पैर पर खुद खडा होना चाहिए। नाटककार ने इस प्रतिरोध के स्वर को काफी ज़ोर दिया है।

नाटक की पात्र परिकल्पना बहुत सशक्त है। नाटक का प्रमुख पात्र है प्रिया। 'छिन्नमस्ता' में नायिका प्रिया निरंतर शोषित थी, परन्तु वह शोषक शक्तियों के विरुद्ध आवाज़ उठाती है और खुद स्वावलम्बी बनने के लिए, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए प्रयास करती है। वैसे तो प्रिया सब के लिए घृणा का पात्र है तो भी सब उसका उपभोग

---

1. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 17
2.
3.
4.

किसी न किसी प्रकार करते रहते हैं। लेकिन प्रिया अपने ऊपर हुए सारे अत्याचारों के खिलाफ प्रतिक्रिया करती है। अपने जीवन को स्वावलंबी बनाने के लिए, अपनी आइडेंटिटी के लिए उसे कुछ खेना पडता है फिर भी उसने अपने जीवन को अर्थपूर्ण बना लिया। वक्त बीतने के साथ-साथ नारी की सोच में त्दील आने लगी है। अज्ञानता की वजह से पुरुष के झाँसे में जल्दी आ जाती थी। पर आज उसकी सोचने, समझने की और हर बात को परखने की कोशिश बढ गई है। अब तो नारी को नये सिरे से समझना है-

"मौसम बदले हैं,
उत्सव बदले हैं,
हूक बदली है, कूंक बदली है,
सारी बंद खिडकियाँ खुल गयी है,
सामने उन्मुक्त आकाश पिख रहा है,
आओ धरती का इससे एक नया रिश्ता जोडें।"[1]

प्रिया का चरित्र इन पंक्तियाँ को व्यक्त करनेवाली है।

प्रिया का पति नरेन्द्र और एक प्रमुख पात्र है। नरेन्द्र अग्रवाल परिवार के धनाढ्य बेटा है। नरेन्द्र के लिए पत्नी उपभोग की वस्तु मात्र है। नरेन्द्र ने अपनी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए या मित्रमंडली के सामने प्रदर्शन वस्तु बनाने के लिए प्रिया का उपयोग किया। उसमें मानवीय संवेदना नहीं है। वह केवल पैसा, अच्छा खाना और सेक्स चाहता है। पत्नी के रहने पर भी कई स्त्रियों को छः छः महीनों में वैयक्तिक सचिव के रूप में नियुक्त कर उसका उपभोग भी करता रहता है।

---

1. सरला महेश्वरी - नारी प्रश्न - पृ.सं. 99

प्रिया के हर मुश्किलों में फिलिम एवं उसकी पत्नी जूडी साथ रहते हैं। फिलिप एक नेक इंसान है। नारी के प्रति उसका दृष्टिकोण सराहनीय है। नाटक में उसका कहना है - "पता नहीं तुम भारतीय स्त्रियाँ अपने को प्यार क्यों नहीं कर पाती। तुमने अपना पैसा खुद कमाया है।"[1] प्रिया की माँ, दाई माँ बडा भैया विजय, नीना आदि पात्रों को भी नाटक में रखा गया है। उपन्यास से भिन्न होकर नाटक में कुछ पात्रों जैसे डॉ. राय, डॉ. गांगुली, नथुनी सिंह, जोसफ आदि को मंचीय सीमाओं के कारण प्रत्यक्षतः छोडना भी पडा है। लेकिन उनकी उपस्थिति का एहसास नेपथ्य स्वरों से कराया गया है।

उपन्यास के सारे चरित्र और घटनाएँ नाटक में संवाद तथा प्रयोग के ज़रिए दर्शकों के सामने अवतरित हुई हैं। नाटक में नरेन्द्र का एक-एक संवाद उसकी पुरुष सत्तात्मक दृष्टि को उजागर करता है। वह प्रिया से कहता है "दरअसल तुमको इतनी खुली घूट देने की गलती मेरे ही थी। मुझे पहले ही चिडिया के पंख काट डालने चाहिए था।"[2] उसी प्रकार "प्रिया यह मत भूलो कि मैं पुरुष हूँ - रस घर का कर्ता। यहाँ मेरी मरजी चलेगी.... सिर्फ मेरी।"[3] स्पष्ट है, परंपरा और संस्कृति की आड़ में मर्द हमेशा स्त्री को अपना मोहताज बनाकर रखना चाहता है।

पुरुष वर्चस्व, परंपरा की जिस आड़ में स्त्री को छलता आता है, प्रिया ने उसे पहचाना है। इसको बयान करनेवाला संवाद नाटक में विचारणीय है। प्रिया कहती है "पुरुष भूमि है, आकाश है, हवा है, जल है लेकिन स्त्री बीच बनकर धरती के नीचे दबना जानती

---

1. सरला महेश्वरी - नारी प्रश्न - पृ.सं. 16
2. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 15
3. वही - पृ.सं. 20

है, वक्त आने पर अंकुरित होती है और फिर शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई पूरा जंगल हो जाती है। हर व्यक्ति अपने आपमें एक इकाई अवश्य होता है पर उसमें सच्चे स्त्री और पुरुष वही हो पाते हैं जो पुरुष प्रधान समाज की सीमाओं को पार करके अपने स्वभाव में स्त्री की करुणा को संचित कर पाते हैं, वे ही जीवन का सच्चा सृजन कर पाते हैं।"[1] नाटक का मक्सद भी यही है। प्रिया की यह तलाश स्वव्यक्तित्व की खोज में पर्यवसित होती है जो कि आधुनिक मूल्य है।

नाटक में गिरीश जी ने उपन्यास के माहौल को बनाये रखने के लिए अनुयोज्य भाषा का प्रयोग किया है। नाटक में देहाती समाज, शिक्षित परिवार, व्यापार जगत आदि का चित्रण भाषाई प्रयोग से मुखरित हो उठता है। नाटक में दाई माँ का कथन उसके देहाती जीवन को व्यक्त करनेवाला है - "अरे चल, हम तोहके सुलाइब। चल पहिले खाना खाओ चलकर फिर....।"[2] फिलिप और नरेन्द्र के बीच के संवाद व्यापार जगत की जटिलता का बयान है। जैसे-

"नरेन्द्र : सात दिन? सेवेन डेज़? बस आइ.आइ.एम.ए बिसी पर्सन।

फिलिप : देन डोन्ट डू दिस वर्क। ओ.के।"[3]

प्रिया के एक-एक शब्दों में प्रतिरोध का स्वर मुखरित हो उठता है। जैसे "मेरा अपना काम जिसमें मुझे सृजन औरर अभिव्यक्ति का सुख मिला है। बिना किसी लगाव के औरत जी नहीं सकती। मेरी माँ का लगाव सिर्फ अपने आप से था, माँ का एक पराई बेटी

---

1. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 43
2. वही - पृ.सं. 23
3. वही - पृ.सं. 35

से था। मेरी आत्मीयता का घेरा उन लोगों से ज्यादा बडा हुआ है.... यही मेरी उपलब्धि है। मैं विशिष्टता के बोझ से दबना नहीं चाहती है।"[1] यह वास्तव में प्रतिरोध की भाषा है।

नाटक 'छिन्नमस्ता' को गिरीश जी ने आत्मकथा तथा फ्लैशबैक के मिश्रित शिल्प में रखा है। उसे प्रस्तुत करने में रंगमंचीय मुहावरे का ही प्रयोग किया गया है। निर्देशक गिरीश रस्तोगी के शब्दों में "प्रिया के बचपन, युवावस्था और आगे के वर्षों का अभिनय उसी अभिनेत्री से कराया गया है जो मंच और अभिनेता के लिए चुनौती है। इससे रंगशिल्प के स्थान पर अभिनेता ही दर्शक से सीधा जुडता है अपनी ओर आकृष्ट करता है। कोशिश बाहरी साधनों को कम करके भीतरी संवेदना को दर्शक मानस तक संप्रेषित करने की है।"[2] नाटक में दृश्य योजना नहीं है। मंच को दो तीन भागों में बाँट दिये हैं, जिसमें प्रिया का ससुराल उसका अपना घर, प्रिया का ऑफिस सब मौजूद है। नाटक का संपूर्ण कार्यव्यापार बडी सहजता, सुनिश्चितता एवं यथार्थता से मंच पर प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष

उपन्यास में जीवन की गति और उसका अनुभव रहता है। गति का तत्व नाटक की विशेषता है। नाटक का रंगमंच उपन्यास में घटना स्थल बन जाता है और यह उपन्यास में वर्णित जीवन के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। उपन्यासकार अपने मंच को बदलने और सजाने में वर्णन विवरण का आश्रय लेता है। नाटक में इसके लिए स्थान नहीं मिलता। उपन्यास के घटनास्थलों एवं व्यवहारों की अभिव्यक्ति संवादों के जरिए ही नाटक में की जाती है। संवाद नाटक और उपन्यास, दोनों में रहते हैं। लेकिन नाटककार पात्रों को प्रस्तुत

1. गिरीश रस्तोगी - छिन्नमस्ता - पृ.सं. 43
2. वही - पृ.सं. 9

करते वक्त के लिए उनके हाव-भाव औरर स्वगत कथन का प्रयोग करता रहता है। जहाँ उपन्यासकार अपने विश्लेषण तथा पात्रों की अंतचेतना के माध्यम से यह काम करता है। इस प्रकार नाटक और उपन्यास दोनों समीप है। नाटक कुछ बातों में उपन्यास से भिन्न भी है। इसमें उपन्यास जैसा दीर्घ विस्तार नहीं होता। अपने प्रभाव में एकाग्रता और गति में तीव्रता रहने के कारण यह सामाजिकों का ध्यान बाँध रखने की क्षमता रखता है। नाटक की इन गुणों की आवश्यकता उपन्यासकार को समय-समय पर पडती रहती है। वह कथा के बीच-बीच में अपने प्रभाव की जकड बनाए रखने के लिए नाटकीयता का प्रयोग करता है। उपन्यास का रंगमंच विविधताओं से ओतप्रोत है। क्योंकि यह आज के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन में विविध स्तरों पर अनेक रूपों में मौजूद भ्रष्टाचार, विसंगतियों व समस्याओं को अलग-अलग रूप-रंग में पेश करने का एक सफल कोशिश है। इस दृष्टि से हिन्दी रंगमंच पर अनेक देशी तथा विदेशी साहित्य के महान उपन्यासों के नाट्यरूपान्तर प्रस्तुत करने का अभियान साहसिक और स्वागत के योग्य कहा जाना चाहिए।

❖❖❖

पाँचवाँ अध्याय

कविता का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

पाँचवाँ अध्याय
कविता का रंगमंच : संवेदना एवं प्रयोग

आचार्य भरतमुनि संस्कृत काव्य शास्त्र के आदि आचार्य माना जाता है। उनका ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' संस्कृत काव्य शास्त्र का आदि ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उन्होंने नाट्य और काव्य में कोई भेद न करके नाट्यकला का विवेचन किया है अर्थात नाटक और कविता के बीच का रिश्ता बहुत पुराना है। तथ्य और सत्य को संपूर्णता एवं समग्रता में प्रस्तुत करने की इच्छा ही वास्तव में नाटक और कविता के रिश्ते की बुनियाद है। जीवन के गंभीर सत्यों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए नाटक में काव्य की क्षमता लाना आवश्यक है। लोक नाटकों में इनके बहु आयामी संबंध को साफ तौर से देखा और समझा जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद के 'करुणालय', मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ', सियारामशरण गुप्त के 'उनमुक्त', हरिकृष्ण प्रेमी के 'स्वर्ण विहान' जैसे गीतिनाट्य नाटक और कविता के बीच के अंतसंबंध के लिए प्रमाण है। इसके अलावा धर्मवीर भारती का 'अंधायुग', नरेश मेहता का 'संशय की एक रात', दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी', अज्ञेय का 'उत्तर प्रियदर्शी', भारतभूषण अग्रवाल का 'अग्निलीक', प्रभातकुमार भट्टाचार्य का 'काठमहल' जैसे काव्यनाटकों तथा प्रसाद की 'प्रलय की छाया', पंत की 'परिवर्तन', निराला की 'राम की शक्तिपूजा', अज्ञेय की 'असाध्यवीणा', धूमिल की 'मोचीराम' जैसी अनेक नाट्य-कविताओं में नाटक और कविता के पारस्परिक संबंधों का स्पष्ट रूप देखा जा सकते हैं। अन्तर केवल यह है कि जहाँ 'काव्य नाटकों' में नाटक के लिए काव्य का इस्तेमाल किया

जाता है वहाँ 'नाट्य काव्य' में काव्य के लिए नाटकीयता का प्रयोग किया जाता है। कविता और नाटक के यह अटूट रिश्ते हिन्दी रंगमंच को एक नया आयाम प्रदान करता है।

कविता का रंगमंच समकालीन हिन्दी रंगमंच की एक नवीनतम प्रवृत्ति है। कविता के रंगमंच की एक ऐसी परंपरा है जो कभी टूटी ही नहीं, समय के साथ मुडी ज़रूर है। काव्य मंचन एक विकसित परंपरा के भिन्न-भिन्न पहलुओं के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। "काव्य मंचन की अवधारणा या उसके प्रदर्शनकारी स्वरूप पर ध्यान दे तो हमें अपनी परंपरा और प्रारंभिक सामाजिक संरचनाओं की ओर पीछे और पीछे और नाट्य शास्त्र की रचना से भी पहले वेद-पुराणों तक लौटना होगा और अगर मैं गलती नहीं कह रहा तो शायद हमें स्वर्ग के दरवाज़े खटखटाने पड़े और देवराज इन्द्र की सभा तक इस काव्य मंचन के विस्तृत और विकसित रूप को समझने के लिए जाना पड़ेगा जिसके उद्धरण अनेक रूपकों, नाटकों, प्रहसनों और काव्य रचनाओं में विशेष रूप से उल्लेखित हैं।"[1] आज भी इस तरह का उल्लेख महत्वपूर्ण और विशिष्ट है जो हमारे वर्तमान साहित्य का, रंगमंच का या अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं यथा गायन वादन, नृत्य, संगीत आदि का एक महत्वपूर्ण अंग है। आज साहित्य या रंगमंच के जिस धरातल पर हम खडे हैं वह काव्यशास्त्र या कविता की उसी क्रमिक खोज का परिणाम है जो कभी वेद पाठ या यज्ञों में उच्चरित मंत्रों एवं गुरुकुल जैसी संस्थाओं में उपयुक्त श्लोकों में अपने पूरे तेवर में विद्यमान था।

कविता मंचन को लेकर यह विवाद हमेशा होता रहा है कि आखिर उसका स्वरूप कैसा है? दर्शकों तक इसे कैसे पहूँचाया जाए? दर्शकगण इसे किस रूप में स्वीकार करेंगे?

---

1. अजयकुमार - काव्यमंचन : एक विकसित परंपरा, रंगप्रसंग पत्रिका (सं) प्रयाग शुक्ल, अक्तूबर-दिसंबर 2007, अंक 4 - पृ.सं. 24-25

कविता मंचन की प्रक्रिया में शब्दों का अपना एक अलग बिंबात्मक, प्रतीकात्मक और कल्पित वातावरण बना हुआ है। जयशंकर प्रसाद जी की 'कामायनी', मैथिलीशरण गुप्त जी की 'नहुष', प्रेमशंकर रघुवंशी की 'देखो साँप तक्षक नाग' ये तीनों नाटक कविता के रंगमंच पर चार चाँद लगाये हैं।

कामायनी

जयशंकर प्रसाद छायावादी कविता के चार प्रमुख उन्नायकों में एक है। उन्होंने अपनी विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और मानवीय मनीषा के अनेकानेक पक्षों का उद्‌घाटन किया। 'कामायनी' प्रसाद जी की अंतिम किन्तु सर्वश्रेष्ठ कृति है और यह छायावाद का महाकाव्य है। प्रसाद की दार्शनिक चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण उनकी कृति कामायनी में मिलता है। इसमें समरसता का दर्शन स्वीकार करते हुए मनु की कथा द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में सामंजस्य पर ज़ोर दिया गया है।

'कामायनी' में कुलमिलाकर पन्द्रह सर्ग हैं। कई सर्गों के नाम चित्तवृत्तियों के आधार पर रखे गए हैं - 'चिन्ता', 'आशा', 'श्रद्धा', 'काम', 'वासना', 'लज्जा', 'कर्म', 'ईर्ष्या', 'इड़ा', 'स्वप्न', 'संघर्ष', 'निर्वेद', 'दर्शन', 'रहस्य' तथा 'आनंद'। चिन्ता से प्रारंभ होकर 'आनंद' तक 15 सर्गों के इस महाकाव्य में मानव मन की विविध अंतवृत्तियों का क्रमिक उन्मीलन प्रस्तुत हुए हैं। मानव के अग्रजन्मा देव अत्यधिक विलासी थे। भीषण जल प्लावन के परिणामस्वरूप देवसृष्टि का विनाश हुआ, केवल मनु जीवित बचा है। मनु चिंतित है, यह चिन्ता के कारण वह जरा और मृत्यु का अनुभव करने के लिए बाध्य होता है। चिंता के अतिरिक्त मनु में दैवी और आसुरी वृत्तियों का भी संघर्ष चलता रहता है। इसके फलस्वरूप उसमें एक ओर आशा, श्रद्धा, लज्जा और इडा का आविर्भाव हुआ तो दूसरी

ओर काम, ईर्ष्या और संघर्ष भी। धीरे-धीरे मनु में निर्वेद का उदय हुआ और श्रद्धा के मार्ग दर्शन से यही निर्वेद क्रमशः दर्शन और रहस्य का ज्ञान प्राप्त करता है। अंत में यह आनंद की उपलब्धि का कारण बनता है। यह वास्तव में 'चिन्ता' से आनंद तक मानव के मनोवैज्ञानिक विकास का क्रम है। सामंजस्य एवं समरसता का उदात्त स्वरूप है श्रद्धा। वह मनु को कर्म का संदेश देती है और हिंसात्मक कर्मों से उसे रोकती भी है। श्रद्धा के प्रभाव से मनु आसुरी वृत्ति को छोडकर पशुपालन, कृषक जीवन आदि में लग जाता है। इड़ा के प्रभाव से वह आध्यात्मिक शांति भी प्राप्त करता है। इस प्रकार कामायनी मानव जाति के उद्‌भव और विकास की कहानी है। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "कामायनी की रचना के केन्द्र में मानवीय संस्कृति का विकास, उसके मानव-मूल्यों की प्रक्रिया और उसके वर्तमान विभ्रमों का विश्लेषण है। और मानवीय संस्कृति के वैशिष्ट्य का संदर्भ इसकी पिछली देवसंस्कृति की तुलना में उभरता है। देवता स्वर्ग और परलोक प्रधान मध्यकालीन भारतीय विचारधारा से हटकर मनुष्य की संस्कृति की यह आत्मविश्वासपरक व्याख्या समकालीन राष्ट्रीय संदर्भ में जितनी महत्वपूर्ण हैं, उतनी ही महत्वपूर्ण संपूर्ण मानवीय संदर्भ में है।"[1] कामायनी के ज़रिए प्रसादजी ने हृदय और बुद्धि, भक्ति और ज्ञान, तप और प्रेम, इच्छा और क्रिया सबके समन्वय पर बल दिया है। युग के बदलते सामाजिक परिवेश और उसके परिणामस्वरूप उभरनेवाले समीक्षा प्रतिमानों के आधार पर 'कामायनी' काव्य बराबर नये विवेचन की माँग करता रहता है। इस प्रकार एक नये विवेचन की शुरुआत है डॉ. विनय कृत 'कामायनी रूपक' रेडियो नाटक।

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी - कामायनी का पुनर्मूल्यांकन - पृ.सं. 24

कामायनी का नाट्यरूपान्तर

किसी भी महाकाव्य में नाटकीयता उसके सौन्दर्य संवर्द्धन में सहायक होती है। प्रसाद जी एक सफल नाटककार थे। इसलिए 'कामायनी' काव्य की रचना करते समय नाट्य तत्व प्रारंभ से ही उसके ध्यान में सहज रूप में रहा है। 'कामायनी' के प्रथम सर्ग में ही प्रसाद जी ने कई बार नाट्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है-

"आज अमरता का जीवित हूँ-
मैं वह भीषण जर्जर दभ,
आह! सर्ग के प्रथम अंक
अधम पात्रमय सा विष्कंभ।"[1]

उक्त छन्द में 'अंक', 'अधम पात्र' और 'विष्कंभ' तीन पारिभाषिक शब्द आए हैं। वस्तुतः 'कामायनी' दृश्यकाव्य के तत्वों से युक्त एक ऐसा महाकाव्य है जिसे थोड़े ही परिवर्तित करके काव्य मंचन के रूप में परिणत किया जा सकता है। इसलिए दृश्य तत्व से युक्त महाकाव्य 'कामायनी' को डॉ. विनय जी ने नाट्यरूपान्तरण में परिणत करने का प्रयास किया है। 'कामायनी रूपक' के संबद्ध में डॉ. विनय का कहना है "मसलन कामायनी में प्रसाद जी ने देवताओं के विलास का संकेत किया है। मैंने इस संकेत को अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध देवों के विलास के आधार पर शब्द-बद्ध किया। मुझे लगता है कि प्रसाद जी ने भी उन्हीं मौलिक स्रोतों से देवों के विलास और उसके परिणाम की पारिकल्पना की होगी। इस प्रकार ऐसे अनेक प्रसंग हैं जहाँ रूपान्तरकार को अपनी सृजन भूमि पर भी उतरना पड़ता है।"[2] आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर

---

1. जयशंकर प्रसाद - कामायनी - पृ.सं. 15
2. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 8

पुराण और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। डॉ. विनय जी ने श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को रूपक के आवरण में मंच पर प्रस्तुत करने की कोशिश की है। कामायनी काव्य के समान नाटक में भी मानव मन की चित्तवृत्तियों को बहुत ही प्रभावशाली रूप से अंकित किए हैं। जिसमें मुख्य रूप से श्रद्धा, इड़ा, कर्म, ज्ञान, काम, लज्जा, संघर्ष, निर्वेद, आनंद जैसे सर्गों पर रूपान्तरकार ने काफी ज़ोर दिये हैं।

'कामायनी रूपक' की कथा पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के दो भागों में विभाजित हुए हैं। इसके पूर्वार्द्ध में दो अंक और उत्तरार्द्ध में चार अंक समाहित हैं। प्रथम अंक जलप्लावन से शुरू होता है। जैसे, "जलप्लावन के समय चारों ओर जल ही जल था। सभी पर्वत श्रृंखलाएँ जल में डूबी हुई थी। किन्तु सृष्टि के नवोन्मेष.... के लिए धीरे-धीरे जल उतरने लगा। सर्वप्रथम हिमालय का सर्वोच्च शिखर जल के बाहर आकर शेष सृष्टि को देखने लगा.... जैसे कोई बालक माता की गोद से सिर निकाल कर बाहर देखता है।"[1] जलप्लावन के उपरांत मनु और श्रद्धा का परिचय होता है। दोनों प्रणय सूत्र में बाँधते हैं और कालान्तर में गर्भवती श्रद्धा को छोडकर मनु चला जाता है। नाटक के प्रथम अंक के साथ-साथ मनु के जीवन की एक भाग भी समाप्त हो जाता है। दूसरे अंक में इड़ा और मनु की कथा कही गयी है। सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा से परिचय प्राप्त करके, उसके प्रस्ताव पर मनु उस प्रदेश का प्रजापति बन जाता है। लेकिन मनु के मन में राज्य के साथ-साथ रानी पर भी अधिकार पाने की इच्छा जन्मती है। मनु इड़ा पर जबरदस्ती कर लेता है। प्रजा मनु से संघर्ष कर लेता है। श्रद्धा घायल पडे मनु को खोज लेती है और दोनों एक दूसरे को पाकर सुखी होते हैं। लेकिन मनु फिर से उसे छोड़कर चला जाता है। श्रद्धा अपना पुत्र मानव को इड़ा

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 16

को सौंपकर पुनः मनु की खोज में जाती है। वह उसे ढूँढ लेती है। मनु को नर्तित नटेश के दर्शन होता है। मनु श्रद्धा से उन तक ले चलाने की विनती करता है। अंत में इड़ा और मानव के साथ सारस्वत प्रदेश के सभी लोग कैलास दर्शन के लिए निकल जाते हैं। इस प्रकार नाटक समाप्त हो जाता है।

'कामायनी रूपक' नाटक में मुख्यतः तीन चरित्र प्रमुख है - मनु, श्रद्धा और इड़ा। देव सभ्यता के जल प्रलय में नष्ट हो जाने के बाद मनु उसके अवशेष के रूप में बच जाता है। वह विशिष्ट मानव अवश्य है जो प्रलय में भी जीवित रहता है। मनु का कथन है "इस निरुपाय और रहस्यमय जीवन का क्या स्वरूप है? इतनी बडी लंबी थकान भरी.... नौका की यात्रा। ....यहाँ पास में क्या कोई और सृष्टि का अंश शेष है। क्या इस ध्वंस के बीच कहीं जीवन बना हुआ है?"[1] मनु देवताओं का वंशज है, संभवतः उसमें उक्त सभ्यता की प्रवृत्ति यज्ञ कर्म और भोग लिप्सा जीवित है। मनु के मन में संकुचित विचार थे। वह सहज सुख को किसी भी मूल्य पर त्यागने के लिए प्रस्तुत नहीं था। वह चाहता था कि श्रद्धा केवल उसी की चिन्ता करे। इस पर श्रद्धा और मनु के बीच के संवाद जीवन के महान सत्य को समझाने में सफल हैं-

"मनु : तुम्हारी किसी के प्रति थोड़ा सा नेह, आकर्षण मैं सहन नहीं कर सकता। तुम पूरी तरह से मेरी हो और यदि मेरी नहीं... तो मैं....

श्रद्धा : (आवेग में) क्या कह रहे हो तुम। ....तुम जानते भी हो... (संगीत) मैं किस सृजन की बात कर रही हूँ। ....यह तुम्हारा ही है। ....तुम्हारा आत्म। मेरे में पल रहा तुम्हारे शौर्य का अंश।

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 25

मनु : मुझे छलावे में मत बहकाओ।

श्रद्धा : हां। यह तुम्हीं कह सकते हो। ...तुमने देव सृष्टि के विलास को देखा है अपनी आँखों से.... तुम अनुभव नहीं कर सकते। विलास की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति। प्रकृति और पुरुष के अद्वैत का द्वैत जीवन विकास का प्रथम सोपान है।

मनु : मुझे नहीं चढ़ना यह सोपान।

श्रद्धा : तुम्हारा दोष नहीं प्रिय। यह उस संस्कृति का दोष है जहाँ प्रेम, संबंध, तन मन का अनुराग केवल भोग के स्तर पर रुक जाता है। जहाँ गंध को एक फूल बनने से रोक दिया जाता है। ....तुम नहीं समझोगे कि प्रेम का विभाजन नहीं होता.... किन्तु उसका अनेक दिशाओं में सर्जनात्मक रूपान्तरण होता है। ....तुम मेरे मातृत्व को अपनी उपेक्षा समझ रहे हो।"[1]

मानवीय संस्कृति के आधुनिक संकट को ही हम इन संवादों में देख सकते हैं। अतिभौतिकता, अतियांत्रिकता और अतिबौद्धिकता के जिस खतरे की ओर नाटककार ने यहाँ संकेत किया है जो पहले से ज़्यादा आज अधिक फैला रहा है।

मनु सब पर एकाधिकार चाहता था। उसकी भोग लिप्सा प्रबल भी। वह केवल व्यक्ति की इच्छा को महत्व देता है। उसका कहना है "मैं। मैं भटकाव का एक केन्द्र। काम के शाप से शापित.... केवल अनुभव में राजा नहीं रहना चाहता। ....मैं इस राज्य व्यवस्था पर अपने अधिकार के समानांतर तुम पर अपना अधिकार चाहता हूँ। मैं... मैं.... इड़ा। तुम मेरे समीप आओ। इतने समीप.... इतने समीप कि.... प्रकृति और पुरुष अद्वैत हो जाए।"[2] प्रजापति मनु नियामक होकर भी नियम नहीं मानता है।

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 51-52
2. वही - पृ.सं. 53

मनु में कर्म, ज्ञान, और इच्छा के बीच सामंजस्य नहीं था, जिससे उसमें मानवीयता का विकास नहीं हुआ था। श्रद्धा के सहयोग से उसे उक्त सामंजस्य या समरसता प्राप्त हुई, जिसका वर्णन नाटक में बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास रूपान्तरकार की ओर से हुआ है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया मानव जीवन के कर्म विधान का सार तत्व है। इच्छा के संबद्ध में श्रद्धा का कथन है "इच्छा के अभाव में तो इस सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती प्रजापति। यह ब्रह्म भी एक से अनेक होने की इच्छा के कारण जगत रूप में दृश्यमान होता है। इच्छा सर्जना का मूल है और सृजन आत्म से पर होने की विराटता।"[1] आगे वह मनु को कर्म लोक अथवा क्रिया लोक से परिचय कराती है। नाटक में श्रद्धा का कथन है ...मनु यह श्यामल कर्म लोक है....

धुंधला कुछ कुछ अंधकार सा
सघन हो रहा अविज्ञात यह
देश मलिन है धूम-धार सा
कर्म चक्र सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति प्रेरणा
सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा।"[2]

कर्म मानव जीवन की अनवरत साधना है। श्वास के आरोह-अवरोह की स्थूल-सूक्ष्म ध्वनियाँ कर्म निश्चय करता है। पुण्य और अपराध दोनों की सत्ता भी कर्म है।

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 93
2. वही - पृ.सं. 94

आगे वह मनु को ज्ञान लोक का परिचय देती है। श्रद्धा कहती है - “यह ज्ञान लोक है। ज्ञान से प्रकाश ही प्रकाश। एक अनन्त साधना के अस्ति-नास्ति में आत्मविलीन होने की सहजता। ....यहाँ आकर भीतर का अंधकार मिट जाता है। शरद की धवल ज्योत्सना छिटकती है सर्वांग पर। मनु.... ज्ञान मनुष्य की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान करता है। ज्ञान के अभाव में मानवता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता।”[1] अर्थात् मानवीय जीवन की विडंबना का मूल कारण इच्छा, ज्ञान और क्रिया में परस्पर मेल होना ही है। मनु को जीवन सत्य का पता चला गया और वह कहता है “मेरे आन्तरिक - बाह्य भटकाव का अंत आ गया है। ....मनुष्य अपने बिखराव को सामंजस्य में, असुन्दर को सुन्दर में परिणित करने की ही चेष्टा तो करता है। लगता है मेरी यह यात्रा संपन्न हुई।”[2] मनु साधारण मानव, प्रजापति, हिंसक, प्रेमी सभी कुछ है। अंत में उसका उदात्तीकरण प्रकट हुआ है।

मनु आन्तरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में समन्वय स्थापित कर लेता है। नाटक में इस दृश्य को बडी मनोहारिता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास रूपान्तरकार की ओर से हुआ है। मनु एक ऋषि की भांति समरसता का सन्देश समस्त सारस्वत निवासियों को देता है। मनु शांत वाणी में कहता है “यह साधना स्थली है प्रजा। यहाँ कोई अपना पराया नहीं। तुम सब मेरे अवयव हो। यहाँ राग द्वेष से मुक्त प्राणों का विहार है। इस समतल भावभूमि पर चारों ओर समरस है। इस भूमि पर आकर प्रत्येक में.... उस विराट में लीन हो जाता है। यह विश्व नीड़ सबकी प्राप्य स्थली है।”[3] समरसता का यह चिन्तन ‘कामायनी रूपक’ में सर्वत्र दिखाई देता है।

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 94
2. वही - पृ.सं. 94
3. वही - पृ.सं. 96

मनु की समस्याएँ आधुनिक है। अपने एकाकी जीवन से लेकर पत्नी, कुटुंब, राज्य, सृष्टि तक के रूप मनु के सम्मुख विद्यमान है। अपनी गलतियों पर पश्चाताप करना उसके व्यक्तित्व का, उसकी महानता का परिचायक है।

श्रद्धा 'कामायनी रूपक' की प्रमुख नारी पात्र है। श्रद्धा ही कामायनी है। नाटक में आदि से अंत तक वह मनु का पथ प्रदर्शन करती है। वह मनु को कर्म में नियोजित करके उसकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने का प्रयास करती है। मनु को उच्च आदर्श की ओर ले जाना उसका लक्ष्य है। अपनी पवित्रता और निष्ठा के कारण अपने लक्ष्य पर वह विजय हासिल करती है। उसके प्रेम में व्यापकत्व अधिक है। पशु-पंछी तक को वह किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। श्रद्धा मनु से कहती है "मुझे तुम्हारा इस तरह निरीह पशुओं-पक्षियों को मारना अच्छा नहीं लगता। ....क्यों की जाये इनकी हत्या जबकि प्रकृति ने भोजन के लिए सुंदर-सुंदर फल दिए हैं। वनस्पतियों को पका कर खाने का जितना आनंद है...।"[1] उसकी यह विस्तृत प्रेम दृष्टि और मानवतावादी विचारधारा ही उसके स्वस्थ, संतुलित और गरिमामय चरित्र की प्रकाशिका है।

सामजस्य एवं समरसता का उदात्त स्वरूप है श्रद्धा। जीवन में वह समन्वय और संतुलन की दृष्टि लेकर आगे बढती है। वह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय का सिद्धान्त मानती है। श्रद्धा इच्छा, कर्म और ज्ञान लोकों का परिदर्शन और उसकी पृथक-पृथक प्रवृत्तियों का अवबोध मनु को कराती है। एक श्रेष्ठ नारी के रूप श्रद्धा में हमेशा पाई जाती है। श्रद्धा को प्रायः मनु की छाया समझा जाती है। लेकिन वह समर्पणमयी होते हुए भी अपने अस्मिता बोध के प्रति अत्यन्त सचेत है। वह मनु की अर्धांगिनी तो है ही, पति से पीड़ित

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 46

एक पत्नी भी है। मनु केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति को महत्व देता है। श्रद्धा को वह केवल एक भोग वस्तु मानता है। "औरत की देह को सदैव नरक द्वार की तरह देखनेवालों को उसकी मांसल देह के अलावा उसका मन, इच्छा, आकांक्षा और मुक्ति के लिए संघर्ष करती एक अदद मानुषी क्यों नज़र नहीं आती? मर्द को उसकी छत्रछाया में रहकर रात-दिन गुलाम की तरह आदेशों का पालन करनेवाली, हां, में (ना में नहीं) गर्दन हिलनेवाली एक मादा चाहिए होती है। हर रात औरत के चाहने या न चाहने की परवाह किए बिना उसे हमबिस्तर बनाकर उसके मांस की गंध को अपने बहशी पंजों, नथुनों में भरनेवाले शोषक मर्द को अंतर्मन में अपने अस्तित्व और अस्मिता को खोने की छटपटाहट लेकर जी रही औरत क्यों नज़र नहीं आती?"[1] हमारे समाज में स्त्री की जो स्थिति है उसके प्रति श्रद्धा का यथार्थ बोध नाटक में उभर आता है। वह मनु के प्रणय-निवेदन को स्वीकार कर उनके प्रति समर्पित भी हो जाती है, लेकिन उसके मन में यह संदेह बना रहता है कि वह उसके समर्पण भाव का निर्वाह भी कर सकेगे? मनु और श्रद्धा के बीच के संवाद इसका प्रमाण है-

"मनु : ....तुम्हारे मन में पहले जैसा आकर्षण युक्त
स्नेह नहीं अनुभव होता।
भावनामयी यह स्फूर्ति नहीं
नव नव स्मित रेखा में विलीन
अनुरोध न तो उल्लास, नहीं
कुसुमोद्‌गमसा कुछ भी नवीन
आती है वाणी में न कभी

1. विमल थोरात - दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर - पृ.सं. 71

वह चाव भरी लीला हिलोर

जिसमें नूतनता नृत्यमयी

इठलाती हो चंचल मरोर।...

मुझे लगता है मेरा अस्तित्व तुम्हारे लिए अतीत की वस्तु बन गया है।

श्रद्धा : यह सोचना अनुचित है प्रिय। ...नारी सर्वथा चंचल मरोर नहीं होती। सर्वथा प्रफुल्ल मुस्कान नहीं.... इधर-उधर तिरती स्पंदित हिरणी की चंचलता भी नहीं.... कभी-कभी नारी पुरुष के प्रेम से भी अधिक गुरुतर और भावमय प्रेम के लिए समर्पित होकर.... शान्त.... एक ठहरे हुए जल सी भी होती है।"[1] अपनी उदात्तता के कारण श्रद्धा नाटक के प्रमुख पात्र के रूप में सामने आयी है। वह अपनी उदात्तता से नायक मनु को अपनी महानता से दबा देती है।

'इड़ा' और एक प्रमुख नारी पात्र है। नाटक में वह बुद्धि के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित है। इड़ा सारस्वत प्रदेश की रानी है। वह बुद्धिवाद के द्वारा मनु को सारस्वत प्रदेश पर शासन करने का संदेश देती है। मनु की सच्ची शुभकांक्षिणी होने के कारण उसने कामांध मनु को समझाया कि आज तक निर्बधित अधिकार किसी ने भी नहीं भोगा है। इड़ा मनु से कहती है "तुम सब कुछ अपने ही दृष्टिबोध से सोच रहे हो। क्या एक प्राणी का दूसरे प्राणी को पा लेना ही सब कुछ पा लेना होता है। मेरी भी अपनी कोई मर्यादा है और तुम अपनी उत्तेजना में उस मर्यादा को भूल गये हो। प्रकृति जैसे आतंकित हो रही है और तुम मन की कोमल भावनाओं को पूर्णता देने में बाहर का सब कुछ भूल हुए बैठे हो।"[2] इड़ा

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 47-48
2. वही - पृ.सं. 75

संपूर्ण सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी मनु के हृदय पर शासन न कर सकी। हृदय की भूख-प्यास को शान्त कर देने की शक्ति उसमें नहीं है।

इड़ा अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुए भी मानवीय गुणों से संपन्न है। निराश और उद्विग्न मनु को उसने आश्रय दिया। नाटक में श्रद्धा इड़ा से कहती है "तुमसे कैसी विरक्ति। यह माना कि तुम जीवन की अंधी दौड़ हो। फिर भी तुम्हारा महत्व है.... तुम न होती तो मनु इस नये राज्य की रचना नहीं कर पाते। मेरे पास था ही क्या.... केवल हृदय। मस्तिष्क तो तुम थी; प्रजा तुम्हारा पास थी... निर्माण के मूल अवयव यहाँ थे.... संभवतः इसी कारण उन्हें यहाँ आना पड़ा।"[1] इड़ा अपने अभाव को नम्रतापूर्वक श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार करने में हिचकती नहीं है। उसे अपनी अपूर्णता, अज्ञानता का बोध होती है। संघर्ष के पश्चात वह ग्लानि तथा पश्चाताप से भर जाती है। मनु और इड़ा के बीच के संघर्ष पर श्रद्धा कहती है "व्यक्ति संघर्ष चाहे या न चाहे। वह प्रकृति के नियम है इड़ा। प्रकृति के नियम।... और फिर तुमने तो उन्हें अवलंबन दिया। उन्हें एकांत जीवन के विकल्प में प्रजा से पूर्ण सृष्टि रचना का अवसर दिया। ....तुम शोक मत करो इड़ा। ....मैं जानती हूँ। भूत और वर्तमान के संयोग पर जब विचार करती हूँ तो लगता है.... मनु.... मैं.... तुम.... और कुमार.... जल प्लावन से सारस्वत प्रदेश की रचनाशीलता तक.... और कुछ नहीं.... प्रकृति ने मानवता के विकास के तंतु जोडे हैं।"[2] वास्तव में श्रद्धा इडा का वास्तविक मूल्यांकन करती है। राजनीति के क्षेत्र में इड़ा की सफलता देखकर श्रद्धा अपनी पुत्र को उसकी छत्रछाया में छोड जाती है। इस प्रकार अपने अंतिम स्वरूप में इड़ा की बुद्धि में श्रद्धा

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 89
2. वही - पृ.सं. 89

का भी आंशिक समावेश हो जाती है। वह सास्वत प्रदेश की निवासियों का नेतृत्व करती है। वह जीवन की सुख और शान्ति के लिए मनु, श्रद्धा के पथ का अनुसरण करती है। श्रद्धा, मनु के निकट पहूँचकर वह स्वयं को धन्य समझती है। उन दोनों को देखकर मन-ही-मन अपने नेत्रों को सौभाग्य को सराहती है। "अब ये युगल, नयी सभ्यता की रचना के बाद आत्मलीन.... अपने प्रकाश से आलोकित कर रहे हैं सृष्टि को। इनकी साध्य मुद्रा से सहस्रों प्राणियों को सुख मिलता है। नये जीवन की आशा खिलती है।"[1] वास्तव में बुद्धि का अवलंब ग्रहण करती हुई भी वह अमानवीय, असहिष्णु तथा निर्मम नहीं है। बुद्धि रूप में वह एक शक्ति है। नारी के रूप में वह करुण, विनम्र तथा क्षमामयी है।

मानव भावी मानवता के प्रतिनिधि है। वह श्रद्धा और मनु के पुत्र है। नाटक में उसका चरित्र अत्यन्त अल्प विकसित हैं। यहाँ तक कि उसका नामाकरण भी नहीं किया गया। बालक की चपलता, सारल्य के साथ उसमें आज्ञाकारिता और ममत्व की भावना है। वह मर-जीकर भी अपनी माँ की आज्ञा का पालन करने की बातें करता है। पिता को पाकर वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसे जल पिलाने के लिए कहता है, क्योंकि वह प्यासे होंगे। श्रद्धा की उदासी उसे अच्छी नहीं लगती। वह कहता है "माँ, मैं तेरे पास हूँ, फिर भी तू दुखी क्यों है?"[2] माँ की वेदना से उसे दुख होता है। श्रद्धा जब उसे इड़ा को सौंपती है तब वह विह्वल हो उठता है और इस प्रकार ममता न तोडने का अनुरोध करता है। किन्तु फिर भी वह उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रतिश्रुत होता है। बढ़ता हुआ बालक प्रतिभा संपन्न है। वह माँ से कहता है "माँ मैं केवल खेलने में ही नहीं लगा रहा। मैंने निकट वाले

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 95
2. वही - पृ.सं. 66

आश्रम में आचार्य के पास बैठकर.... जलप्लावन, देव सृष्टि आदि के विषय में पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया है।"[1] मानव-जीवन की सर्वसंपन्नता कामायनी नाटक का लक्ष्य है। मानवत्व की प्रतिष्ठा के लिए नाटककार ने उसे देवत्व से भी उच्च बना दिया है। वास्तव में मानव नव संस्कृति और नव मानवता का प्रतीक है।

'कामायनी रूपक' में संवाद योजना के वैभव को देखने को मिलता है। पात्रों और उनकी मनःस्थितियों परिस्थितियों के अनुसार संवादों का स्वरूप निर्धारित हुए हैं।

"कौन तुम। संसृति जलनिधि और तरंगों से फेंकी मणि एक
कर रहे निर्जन का चुपचाप, प्रभा की धारा से अभिषेक।"[2]

यह श्रद्धा की प्रथम वाणी है जो मनु को संबोधित करके कही गई है। इसमें आलंकारिकता के साथ-साथ श्रद्धा की चारित्रिक गरिमा तथा बातचीत की कलात्मक शैली के दर्शन भी प्राप्त होते हैं।

'कामायनी' नाटक में देव संस्कृति के भोग विलास को मुख्य रूप से उठाया गया है। अजर-अमर तथा स्वयं को चिरन्तन युवा माननेवाली देव संस्कृति कामधेनु, कल्पवृक्ष, उर्वशी रंभा आदि के जगत में स्वयं को परिपूर्ण मानते हैं। नाटक में देवराज उपेन्द्र और उर्वशी के बीच के संवाद इसका उदाहरण है-

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 68
2. वही - पृ.सं. 25

"उपेन्द्र : इतनी देर कैसे हुई? हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते। हम जिस वस्तु को जब चाहें, जहाँ चाहे वह वहाँ तुरन्त उपलब्ध होनी चाहिए।

उर्वशी : प्रेम विधि विधान से नहीं होती आर्य। प्रेम में की गई प्रतीक्षा भाव को और भी गहरा बना लेती है। और फिर नारी वस्तु नहीं होती।

उपेन्द्र : तुम अपना अस्तित्व भूल रही हो। तुम्हें ज्ञात नहीं कि असुर संग्राम के बाद हम कुछ मधुर क्षणों में डूब जाना चाहते हैं। ....ऐसे में यह प्रतीक्षा। ....उर्वशी।.... आओ। और निकट आओ, देवासुर संग्राम के चोट खाएँ शरीर के घावों पर अपने अधर रख दो।...."[1]

उपेन्द्र का मानना है कि देव सृष्टि का विलय असंभव है। देव सृष्टि अजेय है अनंत है उसका अन्त कभी नहीं तो सकता। लेकिन देव शक्ति से बडी है प्रकृति। प्रकृति की शक्ति सर्वोपरि है। उसका अतिक्रमण कभी भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता।

मनु और इड़ा के बीच होनेवाले संवादों में पूर्ण स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता पात्रगत विशिष्टताएँ आदि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जैसे-

"इड़ा : सारस्वत प्रदेश में मैं अतिथि का स्वागत करती हूँ।

मनु : मैं इस प्रदेश की शासिक महारानी को प्रणाम करता हूँ।

इड़ा : प्रणाम अतिथि।... (विराम)

आपको कोई कष्ट.... ओह यह प्रश्न कैसा? यहाँ इस उजडे हुए प्रदेश में कष्ट के अतिरिक्त और क्या मिलेगा किसी को।

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 21

मनु : नहीं। नहीं। हम प्रकृति की संतान हैं। हम किसी भी दशा में रहने के अभ्यस्त है। और फिर ध्वंस तो नये निर्माण की भूमिका बनाता है।"[1]

संवाद द्वारा अवसरवादिता के संकेत भी कई स्थलों पर मिलता है। यथा 'वही करूँगा जो कहती हो' मनु से किलात-आकुली के संवाद इस प्रसंग में दृष्टव्य है। जो मनु को कुकर्म करने की प्रेरणा देते है। यथा-

"किलात : लो मनु तुम्हारा कर्म यज्ञ पूरा हुआ। अब इस पशु की बलि शेष है।

आकुलि : यह अतिशीघ्र होनी चाहिए।

किलात : हो। यदि तुम्हारी वह साथिन यहाँ आ गई तो वह बलि नहीं हो देगी।"[2]

इस प्रकार संवादों के माध्यम से वक्ता, श्रोतादि के चरित्र पर प्रकाश तो सर्वत्र पड ही जाता है। अनेक स्थलों पर संवाद वस्तु स्थिति का अवबोध कराने में भी सार्थक सिद्ध हुए हैं।

भावानुरूप स्तरों के आरोह-अवरोह को प्रदर्शित करनेवाले संबोधन भी नाटक में कई प्रकार के हैं। 'श्रद्धे', 'प्रेयसी', 'प्रिय', 'प्रियतम', 'कामायनी' आदि घनिष्ठता सूचक संबोधन है। 'वसंत के दूत', 'अतिथि', 'विश्वरानी', 'मधुरमराली', 'सुन्दरी', 'नारी', 'सखें', 'रानी', 'निर्मोही', 'देवि', 'सर्वमंगल' आदि भावात्मक संबोधन हैं। 'तपस्वी', 'अमृत संतान', 'मायावनि' आदि संबोधनों में स्थिति के अनुकूल प्रबोधक भावना तथा व्यंग्य सन्निहित हैं। 'अरे', 'अरी', 'आह', 'ओ', 'रे', 'री' आदि विस्मयबोधक शब्दों के द्वारा अभिनय हेतु स्वर

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 65
2. वही - पृ.सं. 39

परिवर्तन की सूचना दी गई है। ये संबोधन विशेष भावात्मक मनःस्थितियों की सूचना देने में भी सहायक हैं।

'रेडियो नाटक' की सबसे बड़ी विशेषता है ध्वनि प्रभाव। ध्वनि प्रभाव अंग्रेज़ी के 'साऊंट इफेक्ट' का हिन्दी अनुवाद है। संवाद और ध्वनि प्रभाव से ही नाटक की सृष्टि होती है। यह रेडियो नाटक की महत्वपूर्ण तकनीक है। थिएटर में जो भूमिका दृश्य विधा की है वही भूमिका रेडियो नाटक में ध्वनि प्रभाव की है। रेडियो में दृश्य तत्व के अभाव की पूर्ति ध्वनि प्रभाव द्वारा की जाती है। स्काट जानसन के अनुसार - "एक ध्वनि भी क्रमशः अनेक चित्र श्रृंखलाओं की व्यंजना कर सकती है। एक ध्वनि से संबद्ध दूसरी ध्वनि मन में अनेक विचारों को निश्चित रूप से उत्पन्न कर सकती है। एक बिंब के द्वारा दूसरे बिंब की व्यंजना के साथ मन तीव्रता से कार्य करता है।"[1] सार्थक ध्वनि प्रभाव श्रोताओं के मानसपटल पर पूरा दृश्य अंकित कर देता है।

'कामायनी रूपक' मूलतः एक रेडियो नाटक है। इसलिए इसमें ध्वनि प्रभाव का बडे पैमाने में प्रयोग किया है। नाटक के शुरू से लेकर अंत तक इसका प्रयोग किया गया है। यथा - "प्रकृति के विराट अस्तित्व द्योतक संगीत के साथ सागर की थपेड़े खाती 'कुछ दूरवर्ती' उत्ताल तरंगों की ध्वनियाँ। जल प्लावन की पृष्ठभूमि में पत्थर के किनारे से टकराती नौका की ध्वनि। हल्के-हल्के वायु का तरंगायित होना। पक्षियों की चहचहाहट से प्रातः काल का आभास! आकाश में नक्षत्रों की विद्यमानता की परिकल्पित ध्वनियां शांत होकर पार्श्व में चली जाती है।"[2] मंच पर प्रभातकालीन वातावरण प्रकाश व्यवस्था, संगीत

---

1. उषा सकसेना - रेडियो नाटक लेखन - पृ.सं. 26
2. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 15

आदि के द्वारा दिखाया जा सकता है। रेडियो में ध्वनि प्रभाव जैसे चिडियों की चहचहाहट, संगीत आदि के द्वारा प्रभातकालीन वातावरण की सृष्टि की गयी है।

वातावरण की सृष्टि और परिस्थिति से अवगत कराने हेतु ध्वनि प्रभावों का उल्लेख होता है। लकडियाँ चुनते-चुनते उन्हें तोडकर रखने की ध्वनि, धरती खोदने की ध्वनि, स्त्री के सिलसिलाने की ध्वनि, नृत्य की ध्वनि, भवन गिरने की ध्वनि, ऊबड़-खाबड़ जमीन पर चलने के ध्वनि, सागर जल की ध्वनि, शस्त्र फेंकने की ध्वनि, सरस्वती नदी के प्रवाह की ध्वनि, नटराज शिव की नृत्य ध्वनि, कंकण, नूपुर की ध्वनि, युद्ध की ध्वनि आदि अनेक अनगिनत ध्वनि प्रभावों द्वारा नाटक को जीवन्त बनाया गया है। नाटकीय स्थिति को उत्पन्न करने में ध्वनि प्रभावों का विशेष योगदान होता है।

'कामायनी रूपक' में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जीवन की रागात्मक अनुभूतियों की अभिव्यंजना हेतु संगीत के मधुर स्वरों की आवश्यकता होती है। रेडियो नाटक में संगीत का होना अनिवार्य माना है। इसका उपयोग कई रूपों में होता है। स्वतंत्र रूप में नाटकों में वे गीत आते हैं जो पात्रों की मनःस्थिति को व्यक्त करते हैं या वातावरण की सृष्टि करते हैं। 'कामायनी रूपक' में मनु की निराशा भरी जीवन को श्रद्धा के संगीतमय स्वरों से समझ सकते हैं-

"तपस्वी ! क्यों इतने ही क्लांत ?
वेदना का यह कैसा वेग।
हृदय में क्या है नहीं अधीर
लालसा जीवन की निश्शेष।"[1]

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 28

नाटक के संवादों की पृष्ठभूमि के रूप में इसका महत्वपूर्ण उपयोग होता है। ये पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को तीव्रता से व्यक्त करने में समर्थ होता है। हर्ष-विषाद, रागानुराग, जय-पराजय, उल्लास, उदासीनता सभी की अभिव्यंजना की पृष्ठभूमि में इसका उपयोग अत्यन्त प्रभावशाली होता है। मानसिक द्वन्द्व से स्वार्थता से परिपूर्ण मनु की वाणी देखो-

"तुम अपने सुख में सुखी रहो
मुझको दुःख पाने दो स्वतंत्र।
मन की परवशता महा दुःख
मैं यही जपूँगा महामंत्र।
लो चला आज मैं छोड़ यही
संचित संवेदन भार पुंज।
मुझको कांटे ही मिले धन्य
हो सफल तुम्हें ही कुसुम कुंज।"[1]

नाटक के अंत में उल्लास भरी वातावरण को श्रद्धा के स्वरों से समझ सकते हैं-

"संगीत मनोहर उठता
मुरली बजती जीवन की
संकेत कामना बनकर
बतलाती दिशा मिलन की
....
समरस थे जड़ या चेतन

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 53

सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।"[1]

इस प्रकार संगीत वातावरण का निर्माण करता है। भावोद्दीपन में सहायता करता है। संगीत के मोहक स्वर श्रोताओं के मन को छू लेता है और वह पात्रों की भावनाओं में और गहराई से डूब जाता है। कभी-कभी संगीत में कुछ ऐसी तत्व भी है जो मनुष्य को सचेत करते हैं-

"क्या करती हो ठहरो नारी!
संकल्प अश्रु जल से अपने
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने से पहले
नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।
आंसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि पत्र लिखना होगा।"[2]

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 96
2. वही - पृ.सं. 33

इस प्रकार नाटक को सशक्त बनाने के लिए नाटकीयता लाने के लिए संगीत का उपयोग होना अनिवार्य है। जहाँ इसकी आवश्यकता हो वही इसका उपयोग करना चाहिए।

'कामायनी रूपक' नाटक में बीच-बीच में पॉज़ (pause) का प्रयोग किया है। नाटक के कार्य व्यापार में कुछ क्षणों के अन्तराल को पॉज़ या मौन कहता है। क्षणिक पॉज़ के किरदारों से संवादों में स्वाभाविकता आ जाती है। एक उदाहरण-

"मनु : यह भी स्वाभाविक है। ...(पॉज़) जाओ सज्जनो आप अपने स्थलों को लौट जाओ। मैं इस प्रदेश का भ्रमण करके निर्माण के विषय में सोच विचार करता हूँ। (पॉज़) देवी की आज्ञा है।"[1] पॉज़ का प्रयोग दृश्य-परिवर्तन के लिए भी होता है।

रंगमंचीय दृष्टि से कामायनी नाटक के दृश्यों में जटिलता नहीं है। प्रथम तथा दूसरे अंक के सब दृश्यों का स्थान हिमगिरी है। उत्तरार्द्ध के सब दृश्यों का स्थान सारस्वत प्रदेश की है। इसके अंतिम दृश्य की घटनाएँ पुनः हिमशिखर में घटित होता है।

नाटक के उपकरणों में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। संपूर्ण नाटक में संवाद सशक्त शब्दों में पिरोए हुए होते हैं। 'कामायनी' कविता और नाटक के अन्तःसंबन्धों का निरूपण भाषा के अध्ययन से अधिक स्पष्ट हो उठता है। कामायनी काव्य की भाषा उसे काव्य की सर्वोत्कृष्ट बिन्दु तक ले जाती है। भावना उसी के माध्यम से व्यक्त होती है। इसमें भावों के अनुसार भाषा का स्वरूप प्राप्त होता है। डॉ. विनय जी ने जब इसकी नाट्यरूपांतरण किया तब प्रसाद जी की इस भाषा सौष्ठव को बनाए रखने की कोशिश की है। नाटक में ज्यादाधिक काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे-

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं.

"मनु : उषा! तुम्हारा स्वागत है उषा। सूर्य की अभिन्न संगिनी.... मनु के इस नीख मानस को आलोकित करने के लिए.... तुम्हारा आभार उषा! आभार!"[1]

भावों के वहन, उसकी अभिव्यंजना में भाषा सफल होती है। शोक की अभिव्यक्ति अंधकार, कालिमा, उल्का, भीषण रव, गर्जन आदि से हो जाती है। भयानक परिस्थिति के चित्र खुरदुरे शब्दों द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं - "देव बालाओं के चीत्कार की ध्वनि पृथ्वी के भयानक भूकंप का प्रभाव जैसे भवन गिर रहे हों। जल तीव्र गति से उमड़-उमड़ कर बह रहा हो। झंझा का प्रभाव, तीव्र गति से वायु का आलोड़न।"[2] तुमुल रणनाद, ज्वाला, तीक्षण जनसंहार, उत्पाद आदि अनेक शब्द स्थिति की भीषणता का आभास देते हैं। काम, लज्जा आदि का सूक्ष्म अंकन भाषा-कौशल के कारण सरस रूप में प्रस्तुत हुआ है। श्रद्धा के सौंदर्य वर्णन के प्रसंग में शरीर के अधखुले अंग को रूपायित करने के लिए नाटककार ने फूल को प्रतीक रूप में उठाया है, यह फूल साधारण नहीं है-

"नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला रंग
खिल हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग।...."[3]

'बिजली का फूल' कितना सूक्ष्म हेगा, उसमें कितनी तडप और चमक होगी, इसका अनुभव यह प्रतीक भली भाँति संप्रेषित और विकसित करता है। इड़ा के वर्णन भी अनेक प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत हुई है, जैसे-

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 16
2. वही - पृ.सं. 23
3. वही - पृ.सं. 26

"इड़ा की अलके ऐसे बिखरी हुई थी जैसे तर्क जाल हो और उनके शेष अवयव भी जैसे बुद्धि के स्वरूप के साक्षात् तत्व हों।
बिखरी अलके ज्यों तर्क जाल-
यह विश्व मुकुट सा उज्जलतम सदृश या स्पष्ट भाल।"[1]

'कामायनी रूपक' की रचना दृष्टि मानवीय संस्कृति के संचरण विशेषतः समकालीन संकट पर विचार करने को लेकर विकसित होती है। मनु आरंभ से ही जीवन की अर्थवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाता है, और उनके श्रद्धा तथा इड़ा के संबंधों के बीच जीवन के अर्थ की तलाश जारी रहती है। जीवन दृष्टि की यह सार्थकता भाषिक स्तर पर भी अर्थ के गहरे और सूक्ष्म विकास से जुडी हुई है। ओर इस तरह अपने श्रेष्ठ तथा प्रतीकात्मक प्रयोगों से 'कामायनी' नाटक अनुभव ओर भाषा के अद्वैत को प्रमाणित करता है।

नहुष - मैथिलीशरण गुप्त

आधुनिक हिन्दी काव्य के संस्कारक और निर्माता के रूप में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का ऐतिहासिक योगदान अविस्मरणीय है। उसका साहित्य आधुनिक और समकालीन व्यक्ति और समाज के प्रश्नों एवं उसके टकराहट को एक साथ अभिव्यक्त करता है। 'नहुष' गुप्त जी की उत्कर्षकालीन रचना है जिसका आधार महाभारत का नहुषोपाख्यान है। 'नहुष' काव्य की रचना मुंशी अजमेरी की मृत्यु के पश्चात् गुप्तजी ने अपने शोकग्रस्त मन को सांत्वना प्रदान करने के लिए लिखी थी।

'नहुष' में गुप्त जी ने पुरानी कथा को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के नवीन आवरण से सुशोभित कर नये युग में नवीन रूप में प्रतिष्ठित किया है। गुप्त जी ने सारे कथानक को

---

1. डॉ. विनय - कामायनी रूपक - पृ.सं. 64

सात शीर्षकों में विभक्त कर दिया है। 'शची' नामक प्रथम खण्ड में मुख्य रूप से सखी से वार्तालाप करती हुई संत्रस्त इन्द्राणी को चित्रित किया है। इसमें इन्द्राणी अपनी सखी से गत वैभव पर दुःख प्रकट करती है। 'नहुष' खंड में नारद का आगमन, ध्यानस्थ शची के द्वारा नहुष की अवज्ञा और नहुष से उसकी भेंट आदि प्रसंग चित्रित किया है। पूरे खंड में नहुष और नारद के बीच का संवाद चित्रित है, जिससे यह बात ज्ञात होता है कि नहुष इन्द्रपद पाकर भी अपने मानवीय पुरुषार्थ से विरक्त होना नहीं चाहता। नहुष का मातृभूमि प्रेम और लोकहित चिन्तन भी इस खंड की विशेषताएँ हैं।

'उर्वशी' खंड उर्वशी - नहुष संवाद के रूप में चित्रित हैं। यहाँ पर उर्वशी स्वर्ग की वैधानिक राजव्यवस्था का वर्णन करती है। वह नहुष को स्वर्ग भोग के लिए प्रेरित करती है। 'स्वर्ग भोग' में नहुष का स्वर्ग भोग वर्णित है। मानवीय पुरुषार्थ में अटल रहनेवाला नहुष स्वर्ग में पहूँचकर स्वर्ग भोग में इतना रत रहता है कि वह अपने को ही भूल जाता है। इन्द्राणी के बिना वह अपनी इन्द्रपदवी को अधूरा मानता है। 'संदेश' खंड में सुरगुरु के तपोवन में अस्थिर बैठी शची का चित्रण है। नहुष दासी द्वारा शची के पास अपना संदेश पहूँचाता है। संदेश पाकर इन्द्राणी में जो प्रतिक्रिया हुई उसका सुन्दर वर्णन यहाँ हुआ है। नहुष के प्रेम प्रस्ताव पर व्याकुल इन्द्राणी को सखी बृहस्पति के पास ले जाती है। 'मंत्रणा' खंड स्वर्ग परिषद् की मंत्रणा का वर्णन प्रस्तुत करता है जहाँ इन्द्राणी के मत को प्रमुखता दी जाती है। शची बुद्धिपूर्वक उसी सप्तर्षियों को नहुष के यान का वाहक बनाना चाहती है जिन्होंने इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आरोप लगाया। 'पतन' में अपने प्रस्ताव को स्वीकार करनेवाली शची के इच्छानुसार नहुष का ऋषियान से उसके पास जाना वर्णित है। मार्ग में नहुष ऋषिगण को अपमान करता है, पदाघात से ऋषि क्षुभित होते हैं और नहुष को शाप देते हैं। इस प्रकार नहुष का पतन होता है। 'नहुष' काव्य के द्वारा गुप्तजी ने व्यापक उद्देश्य

की सिद्धी की है। मानव निजगुणों की उच्चता के कारण देवत्व प्राप्त करता है पर उसकी दुर्बलताएँ उसे अधोगामी बना देती है।

नहुष का नाट्यरूपान्तरण

प्रसिद्ध निर्देशिका व रूपान्तरकार डॉ. गिरीश रस्तोगी जी ने मैथिलीशरण गुप्त जी के जन्म शताब्दी के अवसर पर उनके काव्य 'नहुष' को उसी नाम से मंचित किया। नहुष नाटक को तैयार करने के लिए, नहुष के चरित्र निर्मिति के लिए गिरीश जी ने महाभारत तथा अन्य कथाओं में उपलब्ध उसकी कथा को आधार बनाया है। नहुष के नाट्यालेख को यह कहना गलत होगा कि यह गुप्तजी के खंड काव्य के स्थान पर कुछ और है। सच तो यह है कि 'नहुष' काव्य के आधार पर रचित यह नाट्यालेख एक मौलिक कृति ही है किन्तु गुप्त जी का व्यक्तित्व इसमें संपूर्ण रूप से अंतर्निहित है। गिरीश रस्तोगी के शब्दों मे "निश्चय ही यहाँ 'नहुष' काव्य का आधार है, पर उस आधार को लेकर एक संपूर्ण मौलिक नाट्यालेख तैयार किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में स्वयं रूपान्तरकार को भी पूरी तरह लेखक या कवि होना चाहिए।"[1] 'नहुष' एक ऐसी चेतावनी देता है कि इतिहास या अपने अतीत के बिना समझे भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता।

'नहुष' नाट्यालेख का आरंभ 'यशोधरा' में गुप्तजी द्वारा दी गयी भूमिका से शुरू होता है। जहाँ एक पथिक लोगों को किस्से-कहानियाँ सुनाते-सुनाते अंत में नहुष की कथा पर आ जाता है। यह पथिक मानो स्वयं गुप्त जी ही है। नहुष के नाट्यालेख में मुख्य रूप से नहुष के व्यक्तित्व, उसके व्यक्तित्व स्खलन, स्खलन के कारण, पतन, पतन के बाद उनका आत्मविश्लेषण आदि को प्रमुख रूप से उठाया गया है।

---

1. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना - पृ.सं. 35

गिरीश जी ने 'नहुष' नाट्यालेख के लिए दो कथागायकों की कल्पना की है। ये कथागायक हमारे भारतीय सूत्रधार का नया रूप है। कथागायक या कथावाचक अतीत, वर्तमान और भविष्य को जोड़नेवाली कड़ी है। ये द्रष्टा, भोक्ता, आलोचक सब हैं। इन सबसे बडा है उसका विदूषक रूप। कथागायक इस पूरे नाटक का सुन्दर आधार बन गया है। जैसे नाटक में कथागायक-1 का कथन है "सुनिए, सुनिए - क्या इस पृथ्वी पर कोई सर्वोत्तम पुरुष है? क्या कोई भी ऐसा सर्वगुण संपन्न पुरुष है जो प्रतापी भी हो, तपस्वी और संयमी भी हो, बुद्धि और विवेक में पंडित भी हो और सहृदय भी!"[1] कथागायकों की प्रतिक्रियाएँ, उनकी हँसी, उनका गाना-रोना सब हमारा ही अनुभव हो जाता है। गिरीश जी के शब्दों में "दो कथागायकों की कल्पना मैंने इस आलेख में केवल एक रंग युक्ति के रूप में पारस्परिक प्रयोग या मात्र कथानक समेटने या 'मोड़' देने के लिए नहीं की। वरन् वे इस रचना की अनिवार्य स्थिति बन गये।"[2] कथागायक की नगाडे पर पूरी रंगशाला और मंच पर की गयी घोषणा के साथ ही नाटक एक तीव्र मोड, तेज़ गति के साथ दर्शकों को अपने में बाँध लेता है। कथागायक द्वारा आरंभ में की गयी घोषणा लेखिका की मौलिक कल्पना ही है, 'नहुष' काव्य में यह नहीं मिलती।

'नहुष' नाटक का प्रमुख पात्र है नहुष। नाट्यालेख में नहुष के व्यक्तित्व के चार पक्ष प्रस्तुत हुए है। इसमें पहला है नहुष का तेजस्वी, योगी, तपस्वी, पराक्रमी रूप। नहुष वह महान व्यक्ति है जिसमें सारे दैवी गुण भी है और पुरुषार्थ भी। देवलोक में इन्द्र पद खाली होने पर ऋषि गण नहुष को उस पद के लिए योग्य मानते हैं। ऋषि का कहना है "हम आपको ही देवराज इन्द्र के पद के लिए सर्वथा उपयुक्त मानते हैं। तीनों लोकों में आप ही

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 27
2. गिरीश रस्तोगी - नाटक तथा रंगपरिकल्पना

सर्वश्रेष्ठ है; सर्वगुण संपन्न है। मनुष्य भी अपने गुणों से देवत्व प्राप्त कर सकता है यह आपको देखकर ही समझा जा सकता है।"[1] नहुष के व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है इन्द्रलोक में देवत्व प्राप्त करने पर उसका मानवीय द्वन्द्व और पृथ्वी तथा अपनी प्रजा को त्यागने का क्षोभ। नहुष सदेह इन्द्रप्रस्थ पाकर भी अपने मानवीय पुरुषार्थ से विरक्त होना नहीं चाहता।

नहुष का मातृभूमि प्रेम और लोकहित भावना उसकी अपनी विशेषताएँ हैं। नाटक में नहुष और ऋषि के बीच का संवाद इसका प्रमाण है-

"नहुष : जिस ब्रह्मा ने यह आकाश, यह स्वर्ग रचा है, उसी ने पृथ्वी की भी रचना की है। उसी ब्रह्मा ने जीव की रचना की है और..... और जीवमात्र को अपना जन्मस्थान ही प्यारा लगता है मुनि।

मुनि : किन्तु तुम भूल रहे हो, यह स्वर्गलोक भी तो तुम्हारा है। तुम इसके स्वामी हो, त्राता हो, बहुत कठोर तप करके कोई इस स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। जिसका कोई छोर नहीं है।"[2]

नहुष अपने आप को बहुत अकेला महसूस करता है। उसे लगता है स्वर्ग की प्रजा इतनी विशिष्ट है कि उसे किसी राज्य की आवश्यकता नहीं है। लेकिन पृथ्वी तो अभागों से भरी पड़ी है।

नहुष के व्यक्तित्व का तीसरा पक्ष है उसका देवलोक के भोग विलास में डूबकर उन्माद एवं अहं से ग्रस्त हो जाना और सप्त-ऋषियों के साथ अन्याय करना। इस दृश्य को नाटक में बहुत ही रोचकता के साथ गिरीश जी ने उठाया है। "अथेन्द्रो अहमिति ज्ञात्वा,

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 24
2. वही - पृ.सं. 37

अहंकार समाविशत, मैं इन्द्र हूँ"[1] इस अहंकार ने उसे जकड़ लिया है। इन्द्राणी शची को देखकर नहुष उस पर आसक्त हो उठता है इसका चित्रण नाटक में बडी प्रभावशाली ढंग से हुआ है। जैसे नहुष का कहना है "यह छिपी, वह छिपी, दामिनी सी कण-कण में जैसे मुझे नयी कान्ति दीखने लगी है.... पर आश्चर्य है मेरी साधना की गति शची तक क्यों न जा सकी। मैं यहाँ क्या भूल रहा।... इन्द्राणी तो उसी की है जो इन्द्र है। जैसे आज मैं हूँ। इन्द्र तो वही रहेगी - इन्द्र चाहे जो हो - तब वह मुझे देख के चली क्यों गयी? नहीं, या तो मैं छल गया हूँ या वही छली गयी है। इतने दिनों तक मैंने सुध क्यों नहीं ली। इन्द्र होकर भी मैं यहाँ ऐसा रहा जैसे घर से भ्रष्ट.... चाहे कितने ही अप्सराएँ मिलें पर उनमें इन्द्राणी कहाँ है।"[2] यहाँ गिरीश जी ने इन्द्राणी को सद्यस्नाता दिखाकर दृश्य को प्रभावोत्पादक बनाया है। नहुष के प्रस्ताव पर शची क्रोधित हो उठती है और कहती है "जिस तरह धनी-मानी लोग तीर्थ-यात्रा करने लगते हैं तो घर-बार, राजकाज अपने किसी भले नौकर को सौंप जाते हैं - वैसे ही तुम्हें भी यह राज्य सौपा गया है। इसे तुम अपना अधिकार मत समझो। अपनी थाती जानो, अपना धर्म पहचानो।"[3] अर्थात किसी पद को पाना आसान है लेकिन उसे संभालना कठिन है। इस संदर्भ में कथागायक का कथन द्रष्टव्य है - "जब भी कोई शासक सत्ता के मद में झूलने लगता है, प्रजा को भूल जाता है और केवल अपने को याद रखता है - इतिहास साक्षी है कि तब वह अपनी महत्वाकांक्षा की बलि तो चढ़ता ही है, राष्ट्र को, राष्ट्रीयता को, संस्कृति को भी ले डूबता है। इसलिए पद को महत्व मत दो, महत्व दो केवल मनुष्यत्व को।"[4] लेकिन नहुष अपनी नरदेह को भूलकर 'अहं ब्रह्मास्मि' बनना चाहता है।

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 41
2. वही - पृ.सं. 36
3. वही - पृ.सं. 47
4. वही - पृ.सं. 49

नहुष द्वारा नयी शिविका में बैठकर ऋषि लोग पर व्यंग्य किया जाता है। इस प्रसंग को नाटक में बहुत ही प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत किया गया है।

"नहुष : चलो जल्दी?..... जल्दी चलो। (ऋषिगण शिविका लेकर मंच पर चलते हैं। नहुष सोन्माद हँसी हँसता है कि इतने में ऋषियों की चाल से नहुष को झटका लगता है)

: यह क्या? कैसे चलते हो झटके खाते हुए? (ऋषि अपने को सँभालते हैं) ठीक ऐसे चलो। (फिर हँसता है कि ऋषि पुनः थककर रुक से जाते हैं। नहुष झुँझलाता है।)

: यह क्या?.... अरे फिर तुम लोग अटक गए। बए इतना ही आता है कि बैठे-बैठे विधियाँ गढ़ो - सूत्र बनाओ। पाखंडी-आगे बढो.... हाँ, ठीक से..... अरे घोंडों की तरह अड़ो मत। कुछ तो बढ़ो.... (चिल्लाकर) बढ़ो।"[1]

नहुष का अहंकार उच्च शिखर पर आ पहूँचा है। अपने अहंकार से वह अगस्त्य मुनि के शाप का पात्र बन जाता है। अगस्त्य शाप की मुद्रा में 'नहुष' से कहता है "भार बहें, बात सुनें, लातें भी सहें क्या हम, तू ही कह क्रूर। मौन अब भी रहें क्या हम समझ ले यह तेरा पैर नहीं था, साँप था जो तुझे, हमें लात मारने के साथ ही डँस गया। पामर, नीच, पतित तू देवराज पद से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर भुजंग की तरह लोटेगा - यह हमारा शाप है। आज से तू इस देवलोक में देवेन्द्र पद का अधिकारी नहीं है। जा!"[2] इस प्रकार नहुष का अहंकार समाप्त हो जाता है। वह सारी दिशाओं में चक्कर लगाते हुए गिर पडता है।

नहुष के व्यक्तित्व का चौथा पक्ष है उसका अपने प्रमाद में शापग्रस्त होकर पृथ्वी पर गिरना। पृथ्वी पर आकर वह स्वगत करता है "स्वर्ग से मेरा पतन हुआ तो क्या हुआ?

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 59
2. वही - पृ.सं. 59

मैं फिर अपनी पृथ्वी की गोद में आ गया - यह.... यह धरती ही तो मेरी है। पतन के विष में भी अमृत छिपा रहता है। ...मैं अपनी ही शक्ति से उठा भी और अपने ही पाप से गिरा भी हूँ.... गिरकर फिर उठ सकता हूँ। मैं नर हूँ, पुरुष हूँ, मनुष्य हूँ। मेरा पौरुष, मेरी शक्ति, मेरा मानव क्या अपने वैशिष्ट्य को नहीं पहचानेगा?"[1] इस प्रकार नहुष अपने आत्मविश्लेषण द्वारा जीवन सत्य को प्राप्त करता है। एक विश्व व्यापी उदात्त, शाश्वत सत्य का संप्रेषण करना अपना उत्तरदायित्व भी मान लेता है। मानव निज गुणों की उच्चता के कारण देवत्व प्राप्त कर सकता है। लेकिन उसकी दर्बलताएँ उसे अधोगामी बना देता है।

नाटक का प्रमुख स्त्री पात्र है शची। वह आधुनिक नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व और आत्मविश्वास की पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाला पात्र है। गरिमा, संघर्ष, संकल्प, स्वाभिमान आदि उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष है। वह देवलोकाधिपति देवेन्द्र का सहधर्मिणी है। वह इन्द्राणी के रूप से मुक्त होकर अपने आपको एक जीवन्त मनुष्य की सजीवता प्रदान करती है। वह अपने पति इन्द्र के वियोग से व्यथित है लेकिन वह कोई विरहिणी नायिका नहीं है। नाटक में वह कहती है "अगर युद्ध संभव होता तो मैं स्वयं उसमें कूद पडती और दिखा देती कि केवल सौन्दर्य, श्रृंगार और आनंद ही मेरा लक्ष्य नहीं है, शक्ति और साहस भी है मुझमें। जो शक्ति से साध्य होगा, शची उसे ही साधेगी।"[2] उसके अनुसार समाज द्वारा बनाए गये स्त्रीत्व के बंधनों से मुक्ति के साथ, मनुष्यत्व की दिशा में कदम बढाना सही अर्थ में स्वतंत्रता है।

शची के अनुसार दुनिया का सबसे निष्ठूर जंतु है मनुष्य। दानव से भी क्रूर है मनुष्य। शची कहती है "पद में सदैव एक मद होता है। मनुष्य दोनों ओर जा सकता है -

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 61
2. वही - पृ.सं. 45

दानवों से मैं हमेशा सावधान रह सकती हूँ पर मानवों से मैं शंकित रहती हूँ।"[1] स्त्री होना एक बलि मृग के समान बन गया है। अनामिका के शब्दों में "इस जगत में स्त्री या बालक के रूप में जीना यानी तकलीफों की गठरी। मनुष्य जगत का ऐसा नियम ही है कि कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्ति से अधिक शक्तिशाली, धनवान या गोरा हो या फिर पुरुष हो तो उसे अपने से निम्न व्यक्ति पर जुल्म करने का हक मिल जाता है।"[2] नाटक में शची अपनी विधि स्वयं निर्णय करती है वह अपना मत देवताओं को सुनाती है - "अगर उस नहुष को मेरे पास आना ही है तो वही ऋषि मुनि जिन्होंने देवपति इन्द्र पर हत्या का कलंक लगाया, मेरा आदेश है कि वही अपने कंधों पर शिविका में उस नर नहुष को बैठाकर लायें और उसे देवराज्ञी का वर बनाकर लाभे - वह शिविका ऐसी बनी होगी जैसी न कभी बनी हो, न देखी हो और न सुनी हो।"[3] यहाँ वास्तव में शची का प्रतिरोध स्वर उभर आया है।

मानव सृष्टि में नारी का आविर्भाव बहुत पुरानी है। यह वह शक्ति है जो जीव लोक में प्राण का वहन करती है और उसका पोषण करती है। अनामिका के शब्दों में "जो दिल से चलकर दिल तक पहूँचे वही दर्द, वही यात्रा है नारी की, वही साहित्य, वही सच्चाई, वही सृजन है। वैसे वह किसी भी रूप में हो चाहे वह माँ हो, सहचरी हो, प्रेयसी हो, पत्नी हो, बेटी हो - किसी भी रूप में हो, है तो वह नारी हो।"[4] लेकिन नारी होने के कारण उसे केवल दर्द ही मिलती है। समाज उसे भोग की वस्तु मानता है। नाटक में शची इस पर अपना विद्रोह प्रकट करते हुए कहती है "मैं तो पतित मन को ही आचरण मानती हूँ। सत्ता

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 45
2. अनामिका - महिला दिवस पर, मधुमती, मार्च 2011, अंक 3, वर्ष 59 - पृ.सं. 10
3. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 53
4. दिनेशनंदिनी डालमिला, संतोष गोयल - स्त्री : एक सफर - पृ.सं. 204

तो समाज की है, वह जो करना चाहे करो। आपको क्या? आप और आपके समाज के लिए तो मैं अकेली हूँ। ....एक स्त्री, एक वस्तु मात्र वह चाहे जिये या मरे। ....धिक्कार है मेरी दृष्टि में मेरी स्मृति में वह विधि, वह विधान, वह नियम ही घृणित नियम है जो हमारी कृति में दोषमात्र देखें।"[1] उसकी ललकार ही नहुष को पतन की चरमसीमा पर पहूँचाती है। 'नहुष' के कथानक के केन्द्र में शची के चरित्र का इतना ही दायित्व है लेकिन नाट्यालेख को द्वन्द्वात्मकता, आधुनिकता, प्रखरता और जटिलता देने में उसके चरित्र का महत्वपूर्ण योगदान है।

नाटक में देवताओं और ऋषियों का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। विशेषकर ऋषियों के पक्ष पर रूपान्तरकार ने अधिक ज़ोर दिया है। आगामी घटनाओं के मोड़ और उसके चरम सीमा के घटित होने में ऋषि ही मुख्य कारण है। वे दमन, विरोध, संघर्ष, विरोध को प्रस्तुत करते हुए अन्त में क्रांति के आधार बनते हैं। उसके शाप की धधकती ज्वाला ही नहुष को पृथ्वी पर साँप की तरह रेंगता हुआ बनाती है। उस अग्नि में जलने के बाद ही नहुष का मानवीय व्यक्तित्व पुनः जन्म लेता है।

नाटक का संवाद बहुत गंभीर है। नहुष काव्य के एक-एक प्रसंगों को रूपान्तरकार ने संवाद योजना के जरिए हू-ब-हू पेश किया है। नाटक में पुरुषार्थ को लेकर नहुष और नारद के बीच का संवाद बहुत ही रोचक है-

"नारद : दुर्लभ नरेन्द्र तुम्हें आज क्या पदार्थ है?
दूँगा मैं बधाई, आहा कैसा पुरुषार्थ है।

नहुष : पुरुषार्थ?

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 53

नारद : क्यों क्या सोचने लगे। स्वर्ग पद पर आकर तुम्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं है, सभी कुछ उपलब्ध है? फिर क्या सोचने लगे?

नहुष : कुछ जिज्ञासा है मेरी। आपने पुरुषार्थ की बात कही। पर मुनि, पुरुष के पुरुषार्थ की क्या यही सीमा है?"[1]

उर्वशी और नहुष के बीच के संवाद में पृथ्वी को लेकर नहुष के मन में जो प्रेम है उसे सटीक रूप से चित्रित किया गया है-

"नहुष : मैं पृथ्वी पर जल वृष्टि का क्यों न दूँ। बादल जल भी बरसायें और रत्न भी और धरती को छाया भी दें।

उर्वशी : ओह मैं समझ गयी - आप चाहते हैं, पृथ्वी पर इतना धन-धान्य हो कि वह देवलोक सा समृद्ध हो जाए। पर आर्य क्या इसी से मनुष्य अमरत्व पा लेंगे। उल्टे वे अपनी मनुष्यता भी गँवा बैठेंगे। जब बिना श्रम और प्रयास के सब कुछ मिल जाएगा तो सब अकर्मण्य हो जायेंगे। वह न कुछ जानेगा, न मानेगा, न बूझेगा। मेरी दृष्टि में स्वर्ग या नरक तो मनुष्य ही बनाता है - एक ही आयु के झोगे से दोनों जन्म लेते हैं।

नहुष : मेरे मन की बात कह दी। सचमुच जैसा मूल्य है, वैसा ही पदार्थ होगा और वह केवल पुरुषार्थ है, पुरुषार्थ। लेकिन मेरे इस देवत्व से; स्वर्ग भोग से मेरी मातृ-भूमि को, मेरी मानवजाति को क्या मिला। मेरे इन्द्र होने से उन्हें क्या मिला।

उर्वशी : देवलोक का गौरव बढ़ा - आप के आदर्श से मानव धन्य हुआ।"[2]

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 24
2. वही - पृ.सं. 40

यहाँ देख सकते हैं कि भूतल को स्वर्ग सदृश्य बनाने की नहुष की इच्छा का उर्वशी विरोध करती है।

संगीत और काव्य नहुष के शक्तिशाली पक्ष है। 'नहुष' नाटक की भूमिका में 'साकेत' की प्रसिद्ध पंक्तियाँ और भारत-भारती के काव्यांशों का प्रयोग किया गया है। जैसे साकेत की पक्तियाँ-

"मंगल भवन, अमंगल हारी।
द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी।।
राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।"[1]

इससे 'नहुष' नाटक का आरंभ संस्कृत नाटकों के पूर्वरंग विधान का वातावरण निर्माण करता है और दर्शकों को सर्वथा भिन्न वातावरण में ले जाता है। इसी प्रकार 'भारत-भारती' की पंक्तियों का प्रयोग भी नाटक में बार-बार हुआ है-

"हम कौन थे, क्या हो गये है
और क्या होंगे अभी
आओ विचारे आज मिलकर
ये समस्याएँ अभी।"[2]

ये पंक्तियाँ इस पूरे आलेख के विविध आरोहों-अवरोहों का आधार बन गयी है। गिरीश रस्तेगी के शब्दों में "नाटक सब प्रकार से इन्हीं पंक्तियों के साथ दर्शक से संवाद

---

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 26
2. वही - पृ.सं. 42

करने की स्थिति में होता है। आगे चलकर यही पंक्तियाँ कभी नहुष के उन्माद, भोग-विलास से जुडती है कभी उसकी भयानक स्थिति को देखकर भय का कारण बनती हैं, कभी क्रोध से जुड जाती हैं, कभी हास्य-व्यंग्य से और कभी अर्थात् अंत में करुण रस की अभिव्यक्ति करती है। पंक्तियाँ वही है पर उनके संदर्भ बदल जाते हैं, रस और लय, टोन, ध्वनि बदल जाती है।"[1] तबला, मृदंग, सितार बाँसुरी का सुन्दर और कल्पनाशील उपयोग नाटक में सशक्त प्रभाव की सृष्टि करता है। गुप्तजी की कविताओं में आदमी के मन को छूनेवाले उस सहज सौन्दर्य का भरपूर एवं सार्थक प्रयोग भी इस नाट्यालेख की अपनी विशिष्टता है।

भाषा पर रूपान्तरकार ने विशेष रूप से ध्यान दिया है। जनसामान्य की भाषा इस नाटक की एक विशेषता है। भाषा पर एक प्रकार की भव्यता और सरलता देख सकते हैं। जैसे ऋषि का कहना है "हम सबका अनुरोध है कि आप हमारा दायित्व संभालें। यह एक पुनीत कर्तव्य होगा। हम आपको लेकर ही जायेंगे।"[2] नाटक में शची के एक-एक शब्दों में प्रतिरोध का भाव झलक उठता है। शची का कहना है "मेरा मत, आज तुम मेरा मत पूछते हो। क्या मैं भी आप सबसे पूछ सकती हूँ कि उसे देवराज क्यों बनाया? क्या तुममें से ऐसा कोई नहीं था जो इस भार को धारण कर लेता?"[3] शची के एक-एक कथन में प्रतिरोध का स्वर गूँज उठता है।

मंच परिकल्पना नाटक का सशक्त पक्ष है। खुले मंच पर यह नाटक संपन्न हुआ है। खुले मंच को रंगशीर्ष और रंगपीठ की तरह दो भागों में बाँटा गया है। सारे दृश्य उसी भागों में आते-जाते है। ऊपर-नीचे के मंच ही देवलोक और पृथ्वी की कल्पना को साकार

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 15
2. वही - पृ.सं. 34
3. वही - पृ.सं. 57

करते थे। कभी-कभी पूरा मंच ही किसी दृश्य का अभिन्न हिस्सा बन गया है। ऋषियों का सुन्दर सुसज्जित शिविका लेकर आना, शिविका में नहुष को बैठाकर ले जाना, एक-एक करके ऋषियों का नहुष के रथ में जुड़ना, नहुष का अगस्त्य ऋषि को लात मारना और फिर शापग्रस्त होकर साँप बनकर पृथ्वी पर गिरकर लोटना आदि नाटक के सबसे रोमांचकारी दृश्य थे। बिना किसी विशेष उपकरण के ये सभी दृश्य क्रियाओं - मुद्राओं तथा कल्पना से अभिनीत किये गये हैं। अपनी प्रस्तुति से सभी दृश्य पूर्णतः संप्रेषण में समर्थ रहे हैं।

नाटक में ध्वनि संयोजन का खूब प्रयोग भी हुआ है। नगाडा बजने का स्वर, शंख नाद, घंटों की ध्वनि आदि नाटक को प्रभावशाली बना दिया है। इसमें सबसे प्रमुख है नेपथ्य से उभरे आकाशवाणी का स्वर-

"आतंक से पाया हुआ भी
मान कोई मान है।
खिंच जाये जिस पर मन स्वयं,
सच्चा वही बलवान है।
देखो किसी के मेटने से
सत्य मिट सकता नहीं
धन घेर ले पर सूर्य का
अस्तित्व मिट सकता नहीं।"[1]

इस ध्वनि के साथ ही नहुष का अशांत चित्त शांत होता है।

1. गिरीश रस्तोगी - नहुष - पृ.सं. 62

देखो साँप : तक्षक नाग - प्रेमशंकर रघुवंशी

प्रेमशंकर रघुवंशी समकालीन हिन्दी कविता का प्रमुख हस्ताक्षर है। वे एक जनवादी साहित्यकार हैं। मेहनतकशों की वेदना और मर्म को वे बेहतर समझते हैं। उसकी कविताओं का कच्चा माल इसी वर्ग की दैनिक ज़िन्दगी से जुडा हुआ है। 'देखो साँप : तक्षक नाग' प्रेमशंकर रघुवंशी जी की लंबी कविता है। लंबी कविता की एक अलग माँग है। लंबी कविता न तो खंडकाव्य है और न ही कोई इतिवृत्तात्मक वर्णन। लंबी कविता अपने गठन में एक पूरे परिवेश की कविता है। इसमें आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के प्रति गहन क्षोभ को अभिव्यक्ति देने की गजब की क्षमता है। लंबी कविता की सारी भावभूमि 'देखो साँप : तक्षक नाग' में पाई जाती है। "कवि प्रेमशंकर रघुवंशी की यह लंबी कविता 'देखो साँप : तक्षक नाग' अपने रूप विधान और कथ्य में भारतेन्दु की लोक शैली परंपरा को आगे बढानेवाली कविता है। इस कविता की खूबी यह है कि इसको पढ़ने के बाद पाठक उदासीन नहीं रह सकता इसे कुछ न कुछ कहने के लिए यह कविता मजबूर करती है।"[1] प्रेमशंकर रघुवंशी की यह लंबी कविता उनके कवि व्यक्तित्व को बहुत ऊँचाई तक ले जाती है।

प्रेमशंकर रघुवंशी ने अपनी इस लंबी कविता में मदारी के मुँह से हमारे वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक, शैक्षिक क्षेत्रों और संस्थाओं में व्याप्त अमानवीयता, भ्रष्टाचार, पाखंड आदि पर कारगर टिप्पणियाँ की हैं। कवि ने सपेरे की आवाज़ और उसके लहज़े को बडे विश्वसनीय ढंग से पकड़ा है। समाज का कोई भी तबका ऐसा नहीं है जो इसका पात्र न हो। भगवान का इस्तेमाल करके गरीबों की पीठ छीलनेवाला आस्तिक वर्ग, पूँजीपति वर्ग, सरकारी अस्पताल का लापरवाह डाक्टर वर्ग, अवसरवादी राजनीति,

---

1. डॉ. प्रभाकर क्षोत्रीय - देखो साँप : तक्षक नाग, परिशिष्ट - पृ.सं. 58

धर्मस्थलों के जहरीली नाग, तांत्रिकों और ज्योतिषियों के पीछे घूमनेवाले नेता और बुद्धिजीवि, सूने दिमाग के विधायक या संसदवर्ग, अपराधी पुलिस वर्ग, तथा राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री का सत्तानुराग सभी को सपेरा बात-बात में बेनकाब करते हैं। कविता का कथ्य किसी एक समस्या पर आधृत न होकर अनेकानेक समस्याओं को समाहित करनेवाला है।

तक्षक नाग का पौराणिक मिथक इस कविता के केन्द्र में है लेकिन यह एक मिथकीय रचना नहीं है। इसमें तक्षक नाग के पौराणिक मिथक को मौजूदा सवालों और चुनौतियों के बीच रखकर प्रस्तुत किया गया है। एक दूसरा मिथक शेषनाग का है, जिसे सर्वथा नवीन और यथार्थवादी आयाम पर प्रस्तुत किया गया है। यह स्वाभाविक है कि मदारी की अनुभव सीमा में हमारे परिवेश और परिस्थितियाँ आती हैं लेकिन कवि ने बडी कुशलता के साथ इसको समेट किया है।

देखो साँप : तक्षक नाग - नाट्यरूपान्तर

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी द्वारा 'बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार' से पुरस्कृत प्रेमशंकर रघुवंशी की कविता 'देखो साँप : तक्षक नाग' को रंगकर्मी जितेन्द्र रघुवंशी ने उसी नाम से नाट्यरूपान्तरित किया है। जितेन्द्र रघुवंशी का नाटक 'देखो साँप : तक्षक नाग' एक नुक्कड़ नाटक है। कविता के समान यह नाटक भी राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त विसंगतियों को, सर्वहारा की व्यथा कथा को एक साथ अभिव्यक्त करता है। नाटक गीतात्मक शैली को लेकर आगे बढ़ता है। नाटक की शुरुआत में सपेरा द्वारा बीन बजाकर लोगों में कौतूहल का जादू फँसाकर तरह-तरह के साँप दिखाता हुआ भीड़ को इकट्ठा करने का प्रयास हुआ है।

नाटक में एक-एक समस्या का बहुत कम शब्दों में उठाया है। सबसे पहले सपेरा भगवान का परिचय कराता है। ईश्वर या भगवान मानव के संपूर्ण विकास के कारक है। लेकिन आज मानव अपने स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति के लिए ईश्वर का नाम जाप करता है। भगवान के नाम पर लोग आपस में लड़ाई करते हैं, खून करते हैं। भगवान का इस्तेमाल करके गरीबों की पीठ छीलनेवाले लोग आज बहुत है। नाटक में सपेरा का कहना है-

"लोग तो
भगवान का इस्तेमाल
दुधारू तलवार की तरह करते हैं
गरीबों की नंगी पीठों पर।"[1]

शायद राजगढ़ में मजमा इकट्ठा करके तमाशा दिखानेवाला मदारी बदनसीब है। वह किसी न किसी अत्याचारी तानाशाह के गुलाम बनकर या तस्करियों - सटोरियों के एजेंट होकर - बंदूकों, पिस्तौलों की ताकत से नव कुबेर बननेवाला दौलतबंद भी नहीं होना चाहता। सपेरा का कहना है "क्योंकि नंबर दो की औलादें। खरीद लेती है राजपाट।"[2] पूँजीवाद में अमीरी और नैतिकता परस्पर दुश्मन है। मदारी तमाशबीनों को तरह-तरह के 'साँप' दिखाता है। वह बयान देता है कि साँप हर जगह है - "ये साँप पाया जाता है। गुजरात के इलाके में। यूँ तो साँप। हरेक इलाकों में पाए जाते हैं। यू.पी., कश्मीर, नागालैंड से मद्रास तक। और मंदिर-मस्जिद। चरच-गुरुद्वारों की पोलो में भी। जहाँ पोथी-पत्ते सुनते हुए थे। दिन दूने। रात चौगुने। जगरीलें होते जाते हैं।"[3] कुछ आस्तीनों के साँप है, कुछ मलूकदासी

---

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 14
2. वही - पृ.सं. 15
3. वही - पृ.सं. 18

साँप है जो कुर्सियों पर पसरे है। हमारे पूँजीवादी समाज में कारखानों जैसे साँप है जो मज़दूरों की कतारें चूस लेते हैं।

आगे चलकर नाटककार एक-एक साँप का परिचय देता है। इसमें सबसे पहले आता है तक्षक नाग जिसकी जोडी नहीं मिल पाई। वह तक्षक नाग से जुडी परिक्षित देवता के पौराणिक मिथक द्वारा उसके देह के रूप रंग का रहस्य खोलता है। फिर आता है दडियल साप। दडियल साँप प्रतीक है झूठे कपटी सन्यासी वर्गों का, धर्म गुरुओं का। ऐसे साँपों को मंदिर-मस्जिद, चरच, गुरुद्वार की पोलों में सब कहीं देख सकते हैं। दडियल साँप जो है विश्वगुरु बनने की ऐंठ में इनसानियत की चलती-फिरती जिन्दगी को डस लेता है।

भारतीय समाज में जन-जीवन जटिल से जटिलतर बन गया है। जनता नेताओं के शोषण चक्र में पिसकर कराह कर रही हैं। शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठानेवालों को कुचल दिया जाता है। 'पीन साँप' के समान नेता लोग जनता के साँसों तक पीते हैं। अर्थात् पीन साँप एक ऐसा साँप है उसका खुराक है साँस। जब कोई सो रहा होता तो ये उसके पास आता है और कुंडली मारके उसकी आखिरी साँस तक पीता रहता है। सपेरा का कहना है - "आजकल पीन साँपो की/भरमार है भाई/जो जगह-जगह/षडयंत्र में लगे/पीते रहते दुनिया भर में/लोगों की साँस/और पसरते जाते हैं/अमरबेल की तरह/हर जगह।"[1] जो एक बार सत्ता में आ जाता हैं वह सत्ता में चिपकता रहता है दूसरे के लिए अपनी कुर्सी खाली नहीं करता। यहाँ तक कि बूढे होकर भी वह जिए जाया करता है। लोकतंत्र देश की महानता के नाम पर केवल दिखावे की चीज़ बन गया है।

---

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 28

आगे सपेरा की दृष्टि चिकित्सा क्षेत्र पर पडती है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र व्यापारिक दृष्टि को अपनानेवाला है। चिकित्सा क्षेत्र आज दुनिया के सबसे बडा काला धन व भ्रष्टाचार का खजाना है। आज हम पैसा देकर तथाकथित स्वास्थ्य खरीद सकते हैं। "जिस आदमी के लिए चिकित्सा शास्त्र के सारे अनुसंधानों के खटकरम किए जा रहे हैं, वह दिनोंदिन बौना होता जा रहा है। और यह बौना स्पेशलिस्टों, सुपर-स्पेशलिस्टों के हाथों एक जिन्स, एक आब्जेक्ट, एक चीज़ की तरह होता जा रहा है - एक कुर्सी की तरह, जिसका हत्था टूट गया है और रिपेयर के लिए स्पेशलिस्ट की दूकान में लाई गई है। एक बावनाहीन कुर्सी।"[1] आज चिकित्सा क्षेत्र चिकित्सा के नाम पर गरीब लोगों को गिद्ध के समान नोंच-नोंचकर खाता है। सपेरा कहता है "आपके शहर में/मोफत का शफाखाना है/उधर मिलती है फिरी की दवा/कर लेना इलाज/वहाँ के अस्पतालवाले कफन तक नोंच डालेंगे तुम्हारा/ये सच्च तजुरबा है हमारा।"[2] आदमी के कफन तक बेचनेवाला है आज का अस्पताल।

भ्रष्टाचार का और एक प्रमुख क्षेत्र है विश्वविद्यालय। विश्वविद्यालय जैसे बडे-बडे शिक्षण संस्थाओं में पैसा, जातिवाद, भाई-भतीजावाद का इतना बोलबाला है कि योग्य, परिश्रमी, ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को अपना भविष्य अंधकारमय प्रतीत होता है। पैसे के बल पर आज विश्वविद्यालय से नकली डिग्रियाँ भी प्राप्त कर सकते है। नाटक में फकीरा कहता है "एक दो सबूत नहीं/ये सैकडों चिट्टियाँ/सैकडों परमाण पत्र/आपके लिए देखने को मिलेंगे/ये कोई/छुरे चाकू दिखाकर/यूनिवर्सिटियों से कबाडी/नकलचियों की डिग्रियाँ नहीं।"[3] यह स्थिति हमारे समकालीन संदर्भ में सौ प्रतिशत सत्य स्थापित होता है।

---

1. प्रभाकर क्षोत्रीय - इक्कीसवीं सदी का भविष्य - पृ.सं. 48
2. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 16
3. वही - पृ.सं. 35

संसदीय व्यवस्था पर भी सपेरा व्यंग्य करता है। संसदीय व्यवस्था भी आज भ्रष्टाचारियों के हाथों में है। संसद और विधान सभाओं में भ्रष्ट तथा दुराचारी नेताओं की संख्या बढ़ती चली जा रही है। वहाँ नितांत अयोग्य, अक्षम व दुर्बल मानसिकता वाले व्यक्ति पहूँच रहा हैं जो देश के पूँजीपति वर्गों के हाथों का खिलौना मात्र बन गया है। नाटक में सपेरा का कहना है-

"आप मेरे बाप के नौकर नहीं
जो कि घंटों खडे हो।
तो लो! साँप पर नज़र डाले।
बडे हुनर से
पकड़ा है इन्हें
धरती जीते बिखरे बिना।
संसद या विधान सभा में पहूँचे
मेम्बरों जैसा काम नहीं है ये।"[1]

संसद या विधान सभा के सदस्य कुछ ऐसे दिख रहे हैं कि वे अपने दायित्व से बच लेना चाहते हैं। किसी भी समस्या का निवारण करना उसका काम नहीं है। वे सब काले धन के पीछे भाग रहे हैं, जो जितने अधिक ऊँचे पद पर बैठा है, वह उतना ही अधिक भ्रष्टाचार में लिप्त है।

नाटक अपने अंतिम छोरों पर आते-आते और अधिक मज़ेदार हो जाता है। वहाँ एक लड़का संपेरे से दो मुँहवाले साँप को दिखाने को कहता है। उनके अनुसार दो मुँह साँप

---

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 21

कुछ ऐसा होता है कि जिसका एक मुँह छे महीने तक खुल रहता है, फिर वह मुँह बंद हो जाता है और दूसरा मुँह छे महीने के लिए खुला रहता है। इस पर सपेरा का जो कथन है वह बहुत ही विचारणीय है। सपेरा का कहना है-

"भाई जान
किसी भी साँप के
दो मुँह नहीं होते।
वो तो - आदमी के होते हैं सिरीमान!
अरे मियाँ, छोड़ो!
अब तो रावण से भी
बडे-बडे मिल जाएँगे,
जिनके जाने कितने-कितने
गुप्त मुँह होते हैं।
नेताओं के तो और भी मुँह होते हैं।
लेकिन साँप के-
दो मुँह नहीं होते।"[1]

यह तो सच है कि किसी भी साँप के दो मुँह नहीं होते हैं। शेषनाग के हज़ारों-हज़ारों फन ज़रूर है लेकिन वे फन हैं फन। दो मुँहवाले केवल मनुष्य होते हैं। दशमुख रावण से भी ज्यादा मुँहवाले लोगों को आज पा सकते हैं। बडे-बडे नेताओं में अनेक गुप्त मुँह छिपे रहते हैं। बाहर से वे लोग बहुत सादा लग रहे हैं लेकिन भीतर से खतरनाक। उन लोगों की करनी और कथनी में अंतर है। एक ओर वे लोगों को झूठे वादें देते हैं और दूसरी ओर

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 47

अपनी सुख-सुविधा का ख्याल रहते हुए काले धन के पीछे भाग रहे हैं। उस काले धन को स्विज़ बैंक में डेपोसिट करने में व्यस्त है। इधर जनता बेहाल पड गई हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आज हमारी धरती गुडे-लीडरों, रिश्वतियों, भ्रष्टाचारियों, खून-खराबे करनेवालों के ऊपर टिकी है। लेकिन वास्तव में यह है कि हमारी धरती हम जैसे शेष के औलादों और मेहनतकशों के ऊपर टिकी है। पत्थर तोड़ते खदाना की सुरंगों में घुसे, वजन उठाते लोगों की नीली पड गई देहों के ऊपर टिकी है। दिन-रात काम करते-करते पसीना बहानेवालों के ऊपर टिकी है हमारी धरती। जहरीली गैसों में मशक्कत करते-करते हम सर्वहारियों के ऊपर टिकी है हमारी धरती। सब कुछ मिटने के बाद केवल हम ही तो शेष रहेंगे इस धरती में। सपेरा का कहना है-

“सब कुछ मिटने के बाद
हम ही तो रहेंगे शेष।
हम तो हैं शेषनाग,
जिनके तने उठे फन जैसे
बँधी मुट्ठियों वाले हाथ
जाने कहाँ-कहाँ से
उठाए-संहाले हैं ज़मीन को?
तभी तो टस से मस
नहीं हुई आज तक।
अगर हम बिफर गए तो
खुदा की कसम,
एक भी साबुत नहीं बचेगा।”[1]

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 52

फिर एक बात और दुहराना चाहता हूँ कि आज भी धरती का भार शेषनाग के उठे फनों पर है। शेषनाग तो अवतार है ताकत के, शक्ति के, तेज के, ओज के। तभी तो धरती का भार उनके उठे फनों पर है। अब तो कुछ ऐसा लगता है सागर मंथन फिर होगा। उस सागर मंथन में कुबेर लोग थुथनी की तरफ होंगे। जो धन के नशे में धुत्त होकर मदमस्त होकर जुलुम करते रहते हैं। फिर भी सपेरा के मन में उस सागर मंथन को लेकर एक आशावादी नज़रिया देख सकते हैं।

इस प्रकार संपूर्ण नाटक में सपेरा और उसकी भाषा वास्तव में जनतंत्र का तमाशा दिखाती है। धरती इस नाटक की जान है। नाटक का केन्द्रीय पात्र तो सपेरा ही है। सपेरा के एकालाप से नाटक गतिशील बन गया है। 'देखो साँप : तक्षक नाग' मूलतः एक नुक्कड़ नाटक है। नाट्य प्रस्तुति का यह रूप जनता से सीधा संवाद स्थापित करने में अधिक सक्षम है। कलाकार विभिन्न संकेतों के माध्यम से इसकी सूचना देते हैं, जिसे दर्शक आसानी से समझ जाते हैं जैसे नाटक में सपेरा करते हैं। नुक्कड़ नाटक होने के नाते इस नाटक में बहुत कम ही पात्र होते हैं - सपेरा, फकीरा, लड़का, तक्षक नाग, शेषनाग और तरह-तरह के अन्य साँप आदि नाटक को पूर्णता प्रदान करता है। वास्तव में रूपान्तरकार ने इस नाटक का शिल्प सपेरों द्वारा प्रस्तुत की जानेवाली कमेंट्री से विकसित किया है। इसमें नायक-प्रतिनायक की अवधारणा से अलग आधुनिक समाज व्यवस्था के प्रति गहन क्षोभ को अभिव्यक्ति देने की क्षमता है।

पूरे नाटक में संबोधन और उद्बोधन है। दर्शक मंडली को 'सिरीमान' कहकर पुकारा जाता है। भाषा की मौलिकता और ठेठेपन से यथार्थ का बयान इस नाटक की सबसे बडी विशेषता है। शब्द सीधे जाकर आदमी से प्रश्न करते हैं - "बोलो जिन्दा हो या मर

गये?"[1] थोडी देर सभी अस्त-व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। फिर आदमी अपने ही बचाव में खुद को तैयार करने लगता है। अर्थात जनभाषा में समाज की बुराइयों और विषमताओं को तीखे ढंग से मुहावरों के ज़रिए दर्शक तक पहूँचा देने का यह एक सफल प्रयोग है।

निष्कर्ष

भारतीय काव्यशास्त्र में कविता और रंगमंच को आरंभ से ही अलग रखकर देखा परखा गया है। दोनों की प्रकृति और परख के तत्वों को भी अलग-अलग तय किये गये हैं। लेकिन अगर नाटक और कविता को साथ-साथ रखकर देखें तो कविता में बहुत कुछ ऐसा है जो अपनी दृश्यात्मकता में नाटक के समकक्ष प्रतीत होता है। कविता को रंगमंच के साथ जोडना कविता का नाट्यात्मक आयोजन नहीं है बल्कि कविता के प्रभामंडल को उसकी संवेदना को सुरक्षित रखते हुए उसकी भव्यता और समग्रता को उद्‌घाटित करना है। जब कविता को चित्रकला के माध्यम से देखना संभव है तो काव्य को रंगमंच की दृष्टि से भी पढा, देखा और समझा जा सकता है। जिन कविताओं का अर्थ स्वयं रचनाकार के पाठ द्वारा सामने नहीं आए या कम आए वह इस तरह की प्रक्रिया में अपने पूरे अर्थों में सुना और देखा जा सकता है। इस प्रकार यह अभिनव प्रयास काव्य के नए प्रतिमान और अछूते आयामों को उद्‌घाटन करने का कारक तत्व बन गया है। हिन्दी रंगमंच पर पिछले कुछ सालों से प्रतिष्ठित कवियों की कविताओं को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। रूपान्तरकार ने इसमें नये शिल्प और नई शैली का अनुवर्तन करते हुए आगे की ओर बढ़ रहा है।

❖❖❖

---

1. जितेन्द्र रघुवंशी - देखो साँप : तक्षक नाग - पृ.सं. 19

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। साहित्य मनुष्य के अंतःकरण और बाह्य दोनों को शुद्ध करते हुए उसमें सामंजस्य स्थापित करता है। मानव की हृदयगत अभिव्यक्ति के सबसे सशक्त एवं प्रभावपूर्ण साहित्य रूपों में नाटक सर्वाधिक प्रभावशाली विधा है। साहित्य की अन्य विधाओं कहानी, उपन्यास, कविता की अपेक्षा नाटक सर्वाधिक प्रभावोत्पादक है। इसका कारण यह है कि अन्य विधाओं में उल्लिखित कथ्य कंठ तथा कानों तक सीमित रहता है जबकि नाटक में दृश्य आँखों से भी अभिन्न संबंध स्थापित कर लेता है। इस प्रकार नाटक को सर्वकला समन्वित साहित्य विधा माना गया है। समसामयिक परिवेश और प्रक्रिया के अनुरूप नाटक अपनी विकास-यात्रा के दौरान अनेक रूप धारण करता आ रहा है।

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य रचना और रंगमंच के क्षेत्र में विकास की ओर अग्रसर है। समकालीन विषयों के साथ दर्शक को संवाद करने के माहौल की सृष्टि मंच करता है। समकालीन लेखक मंच की इस शक्ति को पहचानते हुए उसका फायदा उठाने का महत्वपूर्ण प्रयास करते रहते हैं। इसके कारण इसमें नवीन प्रयोगों का उपक्रम शुरू हुआ। कथ्य और शिल्प के क्षेत्र में ये प्रयोग नाटक को ज़रूर नवोन्मेष प्रदान करते हैं। ऐसा एक नवीन नाट्य प्रयोग है नाट्यरूपान्तर। नाट्यरूपान्तर उतना ही प्राचीन है जितना कि साहित्य। लेकिन उसका वास्तविक पहचान समकालीन संदर्भ में शुरू हुई है। नाट्यरूपान्तर साहित्य की सभी विधाओं को आम जनता तक पहूँचाने का एक बेहतरीन तरीका है जो

साहित्य के उद्देश्य को तीव्रतर रूप प्रदान करता है, संप्रेषणीयता को दोहरा आयाम देता है। रूपान्तरकार मूल कृति को मंचीयता के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करके, शब्दों के स्थान पर रंगभाषा का उपयोग करके मंच पर प्रस्तुत करते हैं। समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में कहानी, उपन्यास तथा कविताओं का नाट्यरूपान्तर लिखे जा रहे हैं। इसके ज़रिए चर्चित एवं गंभीर रचनाओं को जनसामान्य से परिचित कराने का मौका नाटककार को प्राप्त होता है। नाट्यरूपान्तरण प्रणाली उपन्यास, कहानी, कविता आदि में छिपे नाटकीय तत्व को पकड़कर उसमें दृश्यत्व की परिकल्पना कर देती है।

'कहानी का रंगमंच' समकालीन हिन्दी रंगमंच की नूतन प्रवृत्ति है। इसके दौरान नाट्य साहित्य में ऐसी रचनाएँ सुलभ हो जाती है जो सचमुच जीवन की गहरी समझ की, अनुभूति की और आज के यथार्थ की विडंबनाओं को घेरा करती है। प्रेमचन्द, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, स्वयंप्रकाश, उदयप्रकाश, मोहनराकेश जैसे कहानिकारों ने कई स्तरों पर जीवन की विडंबनाओं, संघर्षों और आम आदमी की दुर्दशा आदि को अपनी कहानियों में उजागर किया है। कहानी के रंगमंच के दौरान इन कहानियों के अनुभव क्षेत्र को नाटक के रूप में दर्शकों तक लाया जाता है। यह बहुत बडा काम है कि इतने अच्छे, श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण सर्जनात्मक साहित्य को रंगमंच से जोडा गया है। अलग-अलग कथ्य की, शैली की और अलग-अलग सामाजिक परिवेश की कहानियों को इस तरह रंगमंच पर दर्शकों के सम्मुख लाया जा सकता है। थोडे से लोगों तथा कम साधनों से कहानी की कथावस्तु को मंच पर प्रस्तुत कर सकते हैं। मंचीय स्वरूप पाकर कहानी के सूक्ष्म किन्तु महत्वपूर्ण पक्ष मुखर हो जाते हैं जो कदाचित् कहानी पढ़े जाने पर अनुभूत नहीं हो पाते। अतः मंच पर प्रस्तुत होने पर कहानी और ज्यादा संप्रेषणीय तथा प्रभावशाली बन जाती है। दृश्य-रूप में प्रस्तुत होने पर कहानी, कहानी और नाटक के रूढ़ अर्थों को पार करते हुए एक विशिष्ट

विधा बन जाती है। कहानी के रंगमंच की यह सादगी एक बहुत बडी खूबी है। इस दृष्टि से श्रेष्ठ कहानियों का प्रस्तुतीकरण बहुत सार्थक है।

उपन्यास मंच के लिए अधिक चुनौतीपूर्ण विधा है। अर्थात् उपन्यास रंगमंचादि के बंधनों से मुक्त साहित्य रूप है। उपन्यास का आकार, पात्रों की अधिकता, विभिन्न विषय और स्थितियों को नाटक में ज्यों का त्यों लाना संभव नहीं है। वहाँ चिन्तन-मंथन की लंबी प्रक्रिया रहती है। वास्तव में उपन्यास के नाट्यरूपान्तर की समस्या साहित्य को सर्वथा भिन्न एक कला माध्यम रंगमंच पर प्रस्तुत करने की समस्या से संबंध रखती है। रूपान्तरकार इसमें रंगशिल्प और दृश्या सज्जा की दृष्टि से पुनःसृजन की शर्त पर उपन्यास से नवसाक्षात्कार करता है, साथ ही उपन्यास के संपूर्ण कथ्य को एक नयी व्याख्या भी दे देता है। उपन्यास कहीं किसी बिन्दु पर कमज़ोर लग रहा है तो उसे नाटक में सशक्त भी बना सकते हैं, यहाँ रूपान्तरकार की मौलिक दृष्टि ही प्रमुख है। कहानी की अपेक्षा उपन्यास का फलक बडा होता है इसलिए उसमें बहुत कुछ संक्षिप्त करना पडता है। रूपांतरकार को इस पर भी ध्यान रखना पडता है कि उपन्यास को काट-छाँट करते वक्त उसके महत्वपूर्ण स्थल नाट्यप्रस्तुति में छूट न जायें। उपन्यास की मूल प्रवृत्ति वर्णनात्मकता है। वर्णनात्मकता के बिना लेखक उपन्यास लिख ही नहीं पाता। जबकि नाटक में यथासंभव वर्णनात्मकता से बचना अनिवार्य हो जाता है। उपन्यास के लंबे-लंबे वर्णनात्मक स्थल नाटक में आकर अत्यंत सूक्ष्म और सांकेतिक बन जाते हैं। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के महान उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में यह बात साफ नज़र आती है। इसके अतिरिक्त नाटक में उपन्यास के वर्णनात्मक अंशों को अधिकांशतः कोष्ठकों के अंदर रंग-संकेतों के रूप में दिया जाता है। इस प्रकार उपन्यास का रंगमंच नाटक और उपन्यास के विधागत ढाँचे को स्पर्श करते हुए किन्तु उससे भी आगे निकलती हुई सर्वथा भिन्न एवं विशिष्ट विधा बन जाती है।

नाटक में काव्य का प्रयोग किसी न किसी रूप में हमेशा होता रहता है। दरअसल नाटक भी काफी कुछ कविता के ही व्याकरण में बँधा रहता है। कहा जाता है कि एक कवि ही अच्छा नाटककार हो सकता है। कविता रंगभाषा का, अभिनय का, रंगकर्म का विस्तार करती है। रंगमंच भी कविता को अनेक अर्थ, दृश्य-रूप और सघन अभिव्यक्ति देते हुए उसे एक बडे दर्शक समूह तक पहूँचाता है। इस प्रकार कविता के रंगमंच में जटिल भाववेगों और अमूर्त मनःस्थितियों को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। कविता का रंगमंच सैकडों दर्शकों को कविता से कई अर्थ स्तरों से जुडने की स्वतंत्रता देता है। वह कविता को एकतरफा दृष्टि का शिकार होने से बचाते हुए दर्शकों की कल्पना शक्ति के सहारे उसे दृश्यात्मक रूप लेने अथवा पैदा करने की पूरी छूट देता है। जिन कविताओं का अर्थ स्वयं रचनाकार के पाठ द्वारा सामने नहीं आए या कम आए वे इस तरह की प्रक्रिया में अपने पूरे अर्थों में सुने और देखे जा सकते हैं। कविता के मंचन के लिए निर्देशक और अभिनेता दोनों में कविता के भाव, उसमें निहित सौन्दर्य, बिंब, संगीत, भाषा की लय को पकडने की, उच्चारण की पूरी संवेदनशीलता भी अनिवार्य है। सुलझे हुए निर्देशन और अनुभवी अभिनय तथा कविता की सही समझ का उपयोग होने से निश्चय ही कविता के नाटकीय मंचन के माध्यम से उसकी संप्रेषणीयता को विस्तार दिया जा सकता है।

नाट्यरूपान्तरण की सफलता का कुशल आधार अभिनय ही है। एक ही अभिनेता द्वारा सूत्रधार, वाचक, चरित्र और लेखक की भूमिका को निभाता है। कहानी, उपन्यास या कविता के विवरणात्मक अंश को एक नाटकीय एवं रंगमंचीय अनुभव के रूप में अभिनेता तब्दील कर देता है। नाटक के अंशों में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। नाट्यरूपान्तर की भाषा सामान्य और बोलचाल की भाषा के अनुरूप होती है। उसमें अभिनय और अर्थ के स्तरों की विविधता के कारण नाट्यधर्मी विशेषताएँ भी आ जाती है।

नाट्य-रूपान्तर की भाषा बहुत ही सरल है क्योंकि उसका लक्ष्य जनसामान्य को मंचेतर विधाओं को और भी संप्रेष्य बनाना है। किंतु भाषा सरल होते हुए भी उसमें जटिलता और ज्यादा रचनात्मकता भी पाई जाती है। वैसे तो कहानी, उपन्यास जैसे मंचेतर विधाओं में लंबा सा विस्तार और बडे-बडे वाक्यों का प्रयोग होता रहता है। इसके नाट्य-रूपान्तर में रूपान्तरकार इस विस्तार को एक शब्द में या कम से कम शब्दों में प्रस्तुत करता है। इसमें बहुत ज्यादा कथन पद्धति से भी बचने की ज़रूरत नहीं होती है बहुत पुनरावृत्ति की भी ज़रूरत नहीं होती। कभी-कभी थोडा कहकर उसे छोड देता है और उससे भी बहुत कुछ जोड भी देता है। नाट्य भाषा की क्षमता ही इसमें पहचानी जा सकती है। इसमें मानव मन की सूक्ष्म जटिल मनस्थितियों को संप्रेषण देने के लिए भाषा की नवीन शक्तियों का संधान भी किया गया है। आज के संकुल जीवन को संप्रेषण देने के लिए सही भाषा की जो तलाश नाट्यरूपान्तर पद्धति में उजागर हुई है वह अन्य समकालीन नाटककार को भी प्रभावित करती है।

रंगशिल्प के स्तर पर भी ये प्रयोग हिन्दी नाटक को नये आयाम देते हैं। आज के वैज्ञानिक युग के नवीनतम रंगमंचीय साधनों, ध्वनि संयोजन, प्रकाश व्यवस्था, पार्श्व संगीत, नृत्य, संगीत, वाद्य यंत्रों का पूरा का पूरा उपयोग नाट्यरूपान्तरण में हो रहा है। नाटकेतर विधाओं की संप्रेषणीयता सशक्त प्रकाश योजना के ज़रिए भी सफल निकली है। पात्रों की मनःस्थिति, कहानी के मूड या वातावरण को उभारने के लिए, अथवा स्थान और समय की दूरी को दिखाने के लिए प्रकाश की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रकाश के समान ध्वनि का सुन्दर प्रयोग भी नाट्यरूपान्तर की विशेषता है। प्रेमचंद की कहानियों के नाट्यरूपान्तर में ध्वनि का सशक्त प्रयोग किया गया है। कभी पार्श्व ध्वनि के रूप में, तो कभी दो पात्र के बीच की संवादहीनता को रेखांकित करने के लिए इसका प्रयोग होता रहता है। कहानी, उपन्यास

आदि की प्रस्तुति में संगीत मूलकृति के मूड के अनुसार उपयोग किया जाता है। मूल रचना की संवेदना, घटनाओं और स्थितियों के अनुरूप संगीत सृजित किया जा सकता है।

नाटक की संरचना में काल, स्थान और कार्य की अन्विति सबसे महत्वपूर्ण हैं। यही नाटक को अन्य विधाओं से भिन्न बनाता है। यदि एक भौगोलिक इकाई, समय और कार्य की सीमाओं में पात्र और घटनाएँ क्रियाशील होती है तो इससे नाटक के किसी मंच पर प्रस्तुत करने में सुविधा रहती है। इसलिए नाट्यरूपान्तरकार को इसकी गहरी समझ होना अनिवार्य है। नाटक में संघर्ष आदि से अंत तक मौजूद रहता है। रूपांतर करते समय इसको भी बनाए रखना बेहद कठिन एवं ज़रूरी काम है। इस दृष्टि से नाट्यरूपान्तर एक जटिल एवं मौलिक रचना प्रक्रिया है जो गंभीर दायित्व, चिंतन एवं कल्पना का परिणाम है। जीवंत चरित्र, प्रभावशाली घटनाएँ, चुस्त एवं गंभीर संवाद तथा बिंबमयी भाषा इसके मेरुदण्ड है। सबसे बडी बात यह है कि रूपांतरण को आसान और दूसरे दर्जे का रचना कर्म मानकर अपनाना नहीं चाहिए। क्योंकि मूल रचना के भाव को बिना क्षति पहूँचाते हुए उसे मंच पर खडा करना एक मुश्किल कार्य है। उसमें मौलिकता एक अनिवार्य तत्व है। इसलिए रूपांतर करते समय रूपांतरकार को कथाकार के कथ्य को, उसकी मूल संवेदना को आरंभ से अंत तक सुरक्षित रखना है। रंगमंच की शर्तें, निरंतरता, आवश्यकता, संप्रेषणीयता आदि को ध्यान में रखकर रूपांतरण करना पडता है। तभी इन नाट्यरूपांतरों का मंचन हमारे रंगमंच को समृद्ध एवं विकासवान बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

नाटक के विकास में नाट्यरूपांतर की पद्धति नये दरवाजों पर दस्तक देती है। उसका भविष्य विकासवान है। महत्वपूर्ण क्षणों के चयन और उसकी पुनर्व्यवस्था द्वारा

उपलब्ध जीवनानुभव का सघनीकरण नाट्यरूपान्तर की विशेषता है। इससे प्रयोगों का एक नया संभावनापूर्ण क्षेत्र बनता है। अपनी इस महत्ता के कारण नाट्यरूपांतर हिन्दी रंगमंच पर ताज़ा जीवन अनुभूतियों के निरंतर प्रवाह के लिए नहर काट रहे हैं। समाज की गंभीर समस्याओं को अभिव्यक्ति देनेवाली यह कला उस औषधि गोली के समान है जो बाहर से तो मिठास भरी होती है लेकिन अंदर रोग के इलाज के लिए कडवाहट भरी औषधि।

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. लोक पक्ष का सशक्त दस्तावेज़ - 'बकरी' - अनुशीलन (शोध पत्रिका) जुलाई 2014
2. कहानी का रंगमंच और भीष्म साहनी ('झुटपुटा', 'झूमर' तथा 'दावत' के विशेष संदर्भ में - अनुशीलन (शोध पत्रिका) जुलाई 2015

प्रपत्र प्रस्तुति

1. गिरीश रस्तोगी के नाट्यरूपान्तरों में नारी चेतना - श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी, मार्च 2014
2. कहानी का रंगमंच - भीष्म साहनी के विशेष संदर्भ में - श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी, मार्च 2015

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रन्थ

1. अमिताभ श्रीवास्तव — बाणभट्ट की आत्मकथा
   राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली
   प्र.सं. 2007

2. अमिताभ श्रीवास्तव, एम.के. रैना — कभी न छोडें खेत
   राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
   दूसरा सं. 2008

3. अमृतलाल नागर — सुहाग के नूपुर
   राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
   सं. 2013

4. उदयप्रकाश — और अंत में प्रार्थना
   राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
   प्र.सं. 1998

5. कल्पना साहनी (सं) — संपूर्ण नाटक : भीष्म साहनी
   राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
   प्र.सं. 2011

6. चित्रा मुद्गल — सदगति तथा अन्य नाटक
   राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट
   दिल्ली
   सं. 2011

7. चित्रा मुद्‌गल — बूढ़ी काकी तथा अन्य नाटक
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट
दिल्ली
सं. 2010

8. चित्रा मुद्‌गल — पंच परमेश्वर तथा अन्य नाटक
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट
दिल्ली
सं. 2010

9. डॉ. गिरीश रस्तोगी — तीन नाट्यरूपान्तर
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र.सं. 2008

10. डॉ. गिरीश रस्तोगी — रंगनाथ की वापसी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 1992

11. डॉ. गिरीश रस्तोगी — नहुष
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्र.सं. 1998

12. जगदीशचन्द्र — कभी न छोडें खेत
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरा सं. 2008

13. जयशंकर प्रसाद — कामायनी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 2010

14. जितेन्द्र रघुवंशी — देखो साँप : तक्षक नाग
मेघा बुक्स
नवीन शाहदरा, कानपुर
प्र.सं. 2009

15. प्रतिभा अग्रवाल — मैला आँचल
साहित्य निधि प्रकाशन, कोलकत्ता
प्र.सं. 2013

16. प्रतिभा अग्रवाल — गोदान
साहित्य निधि प्रकाशन, कोलकत्ता
प्र.सं. 2012

17. प्रभा खेतान — छिन्नमस्ता
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2010

18. प्रेमचन्द — गोदान
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरा सं. 2012

19. प्रेमचन्द — मानसरोवर - भाग 2
भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली
प्र.सं. 1992

20. प्रेमचन्द — मानसरोवर - भाग 7
भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली
प्र.सं. 1997

21. प्रेमचन्द — प्रेमचन्द की संपूर्ण कहानियाँ खंड-1
सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद
द्वितीय सं. 2008

22. प्रेमशंकर रघुवंशी — देखे साँप : तक्षक नाग
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1992

23. फणीश्वरनाथ रेणु — मैला आँचल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 2012

24. भीष्म साहनी — डायन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

25. भीष्म साहनी — पाली
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1989

26. भीष्म साहनी — निशाचर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1983

27. भीष्म साहनी — भटकती राख
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1999

28. भीष्म साहनी — शोभा यात्रा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1981

29. मन्नू भंडारी — महाभोज
राधाकृष्ण प्रकाशन
सं. 2013

30. मन्नू भंडारी — महाभोज (नाट्यरूपान्तर)
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
तृतीय सं. 1992

31. मीराकान्त — पुनरपि दिव्या
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

32. मैथिलीशरण गुप्त — श्री मैथिलीशरण गुप्त साहित्य
साहित्य निधि प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2004

33. यशपाल — दिव्या
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
सं. 2006

34. राजेन्द्र कानूनगो — चार एकांकी
प्रतिध्वनि, कोलकत्ता
प्र.सं. 2002

35. डॉ. विनय — कामायनी रूपक
ग्रन्थ भारती, दिल्ली
प्र.सं. 1997

36. विष्णु प्रभाकर — होरी
राजपाल एण्ड सन्ज
कश्मीरी गेट, दिल्ली

37. डॉ. शैलकुमारी — सुहाग के नूपुर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
छठां सं. 2013

38. स्वदेश दीपक — बाल भगवान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1986

39. स्वदेश दीपक — नाटक बाल भगवान (नाट्यरूपान्तर)
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1989

40. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी — बाणभट्ट की आत्मकथा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
बारहवाँ सं. 2013

आलोचनात्मक ग्रंथ

1. अजित पुष्कल, हरिश्चन्द्र अग्रवाल (सं) — नाटक के सौ बरस, शिल्पायन, नई दिल्ली, सं. 2004

2. आशीष त्रिपाठी — समकालीन हिन्दी नाटक : संवेदना और रंगशिल्प, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2007

3. ओमप्रकाश शर्मा — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच, अतुल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994

4. डॉ. आर. शशिधरन — समकालीन रंग नाटक, जवाहर पुस्तकालय, सदर बाज़ार, मथुरा, प्र.सं. 2008

5. इन्द्रनाथ मदान — हिन्दी नाटक और रंगमंच : पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, प्र.सं. 1975

6. कमालिनी मेहता — नाटक और यथार्थवाद, नागरी प्रचारिणी सभा, प्र.सं. 2011

7.	करण सिंह ऊटवाल	कहानी का रंगमंच और नाट्यरूपान्तरण जवाहर पुस्तकालय, मथुरा प्र.सं. 2008
8.	डॉ. कृष्ण पटेल	कथाकार भीष्म साहनी चिन्तन प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2009
9.	डॉ. कैलशचन्द्र शर्मा	भारतीय रंगमंच शास्त्र एवं आधुनिक रंगमंच जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 2009
10.	गोविन्द चातक	आधुनिक हिन्दी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1997
11.	गोविन्द चातक	नाटक की साहित्यिक संरचना तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1994
12.	गोविन्द चातक	हिन्दी नाटक इतिहास के सोपान तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
13.	गिरीश रस्तोगी	नाटक तथा रंगपरिकल्पना विश्वविद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1992

14. गिरीश रस्तोगी — रंगभाषा
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
प्र.सं. 1999

15. गिरीश रस्तोगी — बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 1994

16. डॉ. गिरिजी सिंह — हिन्दी नाटकों का शिल्प विधि
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1970

17. जयदेव तनेजा — आधुनिक भारतीय रंगलोक
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 2006

18. जयदेव तनेजा — आधुनिक रंग परिदृस्य
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1992

19. जयदेव तनेजा — समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2002

20. जयदेव तनेजा — हिन्दी रंगकर्म दशा एवं दिशा
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1994

21. जयदेव तनेजा — आज के हिन्दी रंग नाटक
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

22. जयदेव तनेजा — हिन्दी नाटक आज कल
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

23. जयदेव तनेजा — रंगकर्म और मीडिया
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2002

24. जे.बी. प्रिस्टले — नाटककार की कला
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्र.सं. 1984

25. देवेन्द्रराज अंकुर — पढ़ते सुनते देखते
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

26. देवेन्द्रराज अंकुर — रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2006

27. देवेन्द्रराज अंकुर — रंग कोलाज़
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

28. देवेन्द्रराज अंकुर, महेश आनंद	रंगमंच के सिद्धान्त राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2000
29. डॉ. नगेन्द्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास मयूर पेपरपैक्स, दिल्ली सं. 2007
30. नरेन्द्र मोहन	आज की राजनीति और भ्रष्टाचार राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली प्र.सं. 1997
31. नरेन्द्र मोहन	धर्म और सांप्रदायिकता प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 1996
32. नेमिचन्द्र जैन	रंगदर्शन राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2011
33. डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	समकालीन हिन्दी नाटक : दशा और दिशा किताबघर प्रकासन, नई दिल्ली सं. 2009
34. प्रेमचन्द	कुछ विचार सरस्वती प्रेस, बनारस सं. 1961

35. प्रभाकर क्षोत्रिय — नाटक की साहित्यिक संरचना
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1994

36. प्रभाकर क्षोत्रिय — इक्कीसवीं सदी का भविष्य
किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरा सं. 2006

37. डॉ. बी. बालचन्द्र — साठोत्तरी हिन्दी नाटक : परंपरा और प्रयोग
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर
प्र.सं. 2003

38. डॉ. बच्चन सिंह — हिन्दी नाटक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
सं. 1997

39. भरतमुनि — नाट्यशास्त्र
चौखंभा विद्या भवन, कानपुर
सं. 1968

40. भोलानाथ व्यास — धनंजय दशरूपक
चौखंभा विद्या भवन, कानपुर
सं. 1981

41. महेश आनंद — कहानी का रंगमंच
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
सं. 1997

42.	महादेवी वर्मा	श्रृंखला की कडियाँ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 2001
43.	निर्मल वर्मा	तीन एकान्त राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 1995
44.	मदन मोहन भारद्वाज	भारतीय नाट्यपरंपरा और रंगभूमि नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली सं. 2001
45.	रामविलास शर्मा	परंपरा का मूल्यांकन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 1981
46.	रश्मि मल्होत्रा, दिनेशनंदिनी डालमिया	नये आयामों को तलाशती नारी नवचेतन प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय सं. 2003
47.	रमेश राजहंस	नाट्य प्रस्तुति एक परिचय राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 1997
48.	डॉ. लीना बी.एल.	मिथकीय नाटक और रंगमंच जवाहर पुस्तकालय सं. 2012

49. डॉ. विकल गौतम — हिन्दी नाटक : रंगशिल्प दर्शन
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2000

50. शिवकुमार मिश्र — हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ
अशोक प्रकाशन
बीसवाँ सं. 2011

51. डॉ. शान्ति मालिक — भारतेन्दु के नाटकों का शिल्पविधि का विकास
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
सं. 1996

52. सत्यवती त्रिपाठी — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता
राजकमल प्रकाशन
सं. 1994

53. सुमन कृष्णकान्त (सं) — इक्कीसवीं सदी की ओर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
सं. 2001

54. सिद्धनाथ कुमार — नाटकालोचन के सिद्धान्त
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2004

55. हरीश नवल — हिन्दी नाटक : तीन दशक
अनंग प्रकाशन
प्र.सं. 2004

56. ऋषिकेश सुलभ	रंगमंच का जनतंत्र राजकमल प्रकाशन प्र.सं. 2009
57. विमल थोरात	दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 2011

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

1. Aristotle	On the art of poetry The Belknap Press Harward University Press Cambridge Published 1864
2. Discourse	Sara Mills Routledev, London First Published 1997

मलयालम ग्रंथ

1. डॉ. राजा वार्यर	नाटकम् : अन्वेषणम् और अपग्रथनं स्टेट इन्स्टीट्यूट आफ लान्वेज़स केरला प्र.सं. 2012
2. के. दामोदरन	भारतीय चिन्ता करन्ट बुक्स, त्रिशूर दूसरा सं. 1984

3. एस.बी. मनोज — आख्यानम, सान्निध्यम, सौन्दर्यम
विद्यार्थी पब्लिकेशन
कोषिक्कोड
पहला सं. 2013

पत्र-पत्रिकाएँ

1. नटरंग - संपादक : नेमिचन्द्र जैन - अंक 46 - वर्ष नवंबर 1986
2. नटरंग - संपादक : नेमिचन्द्र जैन - अंक 65 - वर्ष जुलाई 1995
3. नटरंग - संपादक : नेमिचन्द्र जैन - अंक 63 - वर्ष जून 1996
4. नटरंग - संपादक : नेमिचन्द्र जैन - अंक 50 - वर्ष मई 1999
5. नटरंग - संपादक : रश्मि वाजपेयी, अशोक वाजपेयी - अंक 68 - वर्ष जून 2014
6. रंगप्रसंग - संपादक : प्रयाग शुक्ल - अंक 41 - वर्ष जुलाई 2013
7. रंगप्रसंग - संपादक : प्रयाग शुक्ल - अंक 32 - वर्ष अक्तूबर 2007
8. पल प्रतिपल - संपादक : देश निर्मोही - वर्ष मार्च-जून 2001
9. सामयिक सरस्वती - संपादक : महेश भारद्वाज - वर्ष जून 2002
10. समकालीन भारतीय साहित्य - संपादक : प्रभाकर क्षोत्रीय - अंक 42 - वर्ष मार्च-अप्रैल 2012
11. हंस - संपादक : राजेन्द्र यादव - अंक 12 - वर्ष जुलाई 2012
12. हंस - संपादक : राजेन्द्र यादव - अंक 12 वर्ष नवंबर 2006
13. हंस - संपादक : राजेन्द्र यादव - अंक 12 - वर्ष अक्तूबर 2010
14. गगनांचल - संपादक : अजयकुमार गुप्ता - अंक 4 - वर्ष दिसंबर 2006
15. गगनांचल - संपादक : अजयकुमार गुप्ता - अंक 1 - वर्ष जनवरी 2009

कोश ग्रन्थ

1. डॉ. गोविन्द चातक — आधुनिक हिन्दी शब्द कोश
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1986
2. कालिका प्रसाद (सं) — बृहत हिन्दी कोश
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वारणासी
सं. 1992
3. महादेव शास्त्री जोशी — भारतीय सांस्कृतिक कोश खंड-1
भारतीय सांस्कृतिक कोश मंडल, पूणे
सं. 1962

❖❖❖